नीलसरस्वतीतन्त्रम्

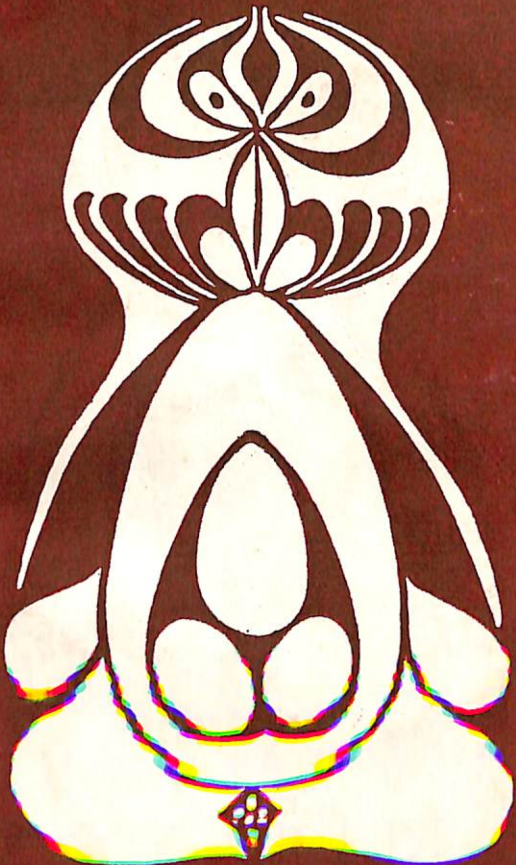

एस० एन० खण्डेलवाल

[illegible]खम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

नीलसरस्वतीतन्त्रम्

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

२४५

* * *

पार्वती-भैरवसंवादात्मकं

नीलसरस्वतीतन्त्रम्

हिन्दीटीकोपेतम्

टीकाकार

एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादक

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-आयुर्वेद-ज्यौतिष-आचार्य

एम. ए., पी-एच्. डी., डी. एस-सी. ए-वाइ.

[redacted]

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९९

मूल्य : ७५-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

245

NĪLASARASVATĪTANTRAM

With

Hindi Commentary

By

S. N. Khandelwal

Edited by

Dr. Brahmananda Tripathi

Sahityacharya, Ayurvedacharya

M. A., Ph. D., D. Sc. A.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI 221001

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001
Telephone : 333431

First Edition
1999

Also can be had of
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 320404

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

निवेदन

नीलसरस्वती देवी द्वितीया महाविद्या तारादेवी का ही रूप-विशेष हैं। एकजटा, उग्रतारा, महोग्रतारा, नीला, नीरसरस्वती आदि उन द्वितीया महाविद्या तारा के ही स्वरूपान्तर हैं। अन्तःगुप्तसाधन क्रम में जैसे सुषुम्ना ही वज्रा-चित्रा तथा ब्रह्मनाड़ी प्रभृति भेदमुख्या हो जाती है, उसी प्रकार बाह्यगुप्तसाधन क्रम में महाविद्या तारा ही आधार एवं साधन भेद से नीलसरस्वती हो जाती हैं। जो स्थूलतः तारा हैं, वे ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टिकोण का अवलम्बन लेने पर नीलसरस्वती हो जाती हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्मातिसूक्ष्म में क्रमशः जाने पर शक्ति की केन्द्रगत स्थिति में अभिवृद्धि होती जाती है। अर्थात् अब शक्ति बहिःप्रक्षिप्त न होकर अपने केन्द्र में, अपने आप में ही अन्तर्भूत होती रहती है। शक्ति का यह रूप उसके प्रभाव को क्रमशः अधिक प्रभावशाली करता जाता है। अतः सुविज्ञजन कहते हैं कि यद्यपि नीलसरस्वती तो महाविद्या तारा का ही रूप-विशेष है, तथापि नीलसरस्वती में शक्ति का उत्कर्ष सर्वतोमुखी हो जाता है। जो साधन-मार्ग के पथिक हैं तथा जिन्हें परम्परागत क्रम से तन्त्रज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है, वे इस तथ्य से सम्यक्तया परिचित हैं।

यह तन्त्र विष्णुक्रान्ता क्रम के चौंसठ तन्त्रों में अन्यतम है। शास्त्रों का कथन है कि चन्द्रबीज (स) का उच्चारण करके आद्य (त) को वामनेत्र (ई) तथा इन्दु (ं) से भूषित कर उसे वह्नि (र) से संयुक्त करना चाहिए। इस प्रकार दुर्लभ 'स्त्रीं' मन्त्र का गठन होता है। यह एकाक्षरी महाविद्या है। इसी प्रकार ईशान (ह) को वामकर्ण (ऊ) तथा बिन्दु (ँ) संयुक्त करने से 'हूँ' का गठन होता है। यह महाविद्या तारा का श्रेष्ठ मन्त्र है। अब शिव (ह) को वह्नि (र) तथा वामनेत्र (ई) एवं इन्दु (ं) से भूषित करने से 'ह्रीं' मन्त्र का प्राकट्य होता है। इसमें अस्त्रमन्त्र (फट्) का योग करे। इस प्रकार 'ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्' मन्त्र प्रकट होता है, जो प्रणव लगने पर 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्' रूप से उग्रतारा का श्रेष्ठ मन्त्र हो जाता है। अर्थात् एकाक्षरी महाविद्या का यह प्रक्षेपण जो उसके अपने ही केन्द्र में हो रहा है, अब उग्रतारा रूपी महास्पन्दनात्मक सूक्ष्म विमर्श का उन्मेष कराता है।

इस मन्त्र से प्रणव हटा लेने पर एकजटा की अर्चना होती है। एकजटा का यह मन्त्र महामुक्ति प्रदान करता है। यह एक रहस्यमय तथा साधक-समाज के लिए अत्यन्त उपादेय मन्त्र है। इस मन्त्र को प्रणव तथा अस्त्ररहित करने से महानीलसरस्वती का सिद्धमन्त्र (ह्रीं स्त्रीं हूँ) उपस्थित हो जाता है।

इसमें प्रणव तथा अस्त्र अन्तर्लीन है। इस सम्बन्ध में इससे अधिक कहना तान्त्रिक दृष्टिकोण से उचित नहीं है।

यद्यपि नीलसरस्वतीतन्त्रोक्त उपासना आणवोपाय के ही अन्तर्गत परिलक्षित होती है, तथापि इस उपासना-क्रम में गतिशील हो जाने पर यह प्रतीत होने लगता है कि अपने उत्कर्ष के साथ-साथ यह आणवोपायमुख्या होते हुए भी वीराचार की स्थिति में साधक को अपनी प्रवहमान धारा से शाक्तोपाय की स्थिति तक उठा देती है। कुलचक्रपूजन के मर्मज्ञ इस तथ्य को जानते हैं कि बाह्य भैरवी (कुलयुवती) को आधार बनाकर जो साधना होती है, जब उसका समापन होता है और वीराचार के चरमोत्कर्ष में जब साधक को भैरवावस्था की प्राप्ति के साथ-साथ अन्तःभैरवी के साथ सामरस्य की स्थिति की प्राप्ति होती है, तब आनन्दभैरवरूप साधक अपनी सिद्धावस्था की सम्प्राप्ति के साथ-साथ बाह्यभैरवी का विसर्जन कर देता है। यही है दिव्याचार; इसे हम शाम्भवोपाय की अवस्था भी कह सकते हैं। सिद्धगण का कथन है कि चैतन्यमहाप्रभु को गुण्डीचा मन्दिर में इसी प्रकार की आनन्दानुभूति हुई थी। यही है चरम आनन्द। शाक्तमार्गी साधक कौशलयुक्त साधना द्वारा इसे कुलचक्र में प्राप्त करता है। कुलचक्र में अर-नेमि प्रभृति रहस्य का उद्घाटन केवल सद्गुरु की कृपा से ही सम्भव है।

इस महासाधन का अनुष्ठान करते समय साधक को यह स्मरण रखना चाहिए कि इस महासाधन में जप की प्रधानता है, परन्तु जप के पूर्व कुल्लुका, सेतु, महासेतु एवं मुखशोधन मन्त्र का भी जप आवश्यक है। देवता भेद से कुल्लुका, सेतु, महासेतु तथा मुखशोधन मन्त्रों में भी भिन्नता आ जाती है। इसे गुरुपरम्परा से जान लेना चाहिए। मस्तक में कुल्लुका, हृदय में सेतु तथा कण्ठ में महासेतु मन्त्र का जप करके तब भगवती का जप करना उचित होता है।

जप मात्र ही अभ्यारोह रूप है। जिस साधक का जप द्वारा अभ्यारोह नहीं होता उसके ऋतच्छन्दः, सत्यच्छन्दः तथा मधुच्छन्दः में भ्रंश अथवा च्युति अवश्य होती है। यह च्युति है वक्रता अथवा विषमता के कारण। इस वक्रता एवं विषमता का कारण है—साधक में स्वार्थ-भावना तथा अनृत-भावना का होना। यह वक्रता एवं विषमता महाकौल गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण के बिना दूरीभूत नहीं हो सकती, यह निश्चित है। इस वक्रता एवं विषमता के ही कारण महाचीनाचार क्रम के साधन में व्याज एवं विघ्न का आविर्भाव होता है। अतएव महाकौल आनन्दभैरवावस्था को प्राप्त गुरु की शरण लेकर ही इस साधन-क्रम का अनुष्ठान करना विहित है, अन्यथा सर्वनाश निश्चित है। इस साधन-क्रम में विघ्न प्रकार-त्रय से अनुभव में आते हैं। प्रथम विघ्न है—

ओघ=साधारण समष्टि विघ्न; गण=दलबद्धरूप विघ्न का आक्रमण; व्यूह=व्यूहबद्धरूप से आभ्यन्तरीण विघ्न। व्यूहजनित विघ्न उन्नतावस्था में अन्तराकाश में आते हैं। इसी प्रकार दैशिक, कालिक तथा छान्दस विघ्न-समूह भी महाचीनाचार-साधना में साधक को आक्रान्त करने लगते हैं। यन्त्र के द्वारा दैशिक विघ्न, मन्त्र द्वारा कालिक विघ्न तथा तन्त्र द्वारा छान्दस विघ्नों का विनाश होता है, परन्तु इन तीनों (यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र) की अभिज्ञता आनन्द भैरवावस्था-प्राप्त महाकौलगुरु के अतिरिक्त कौन दे सकेगा ? इस स्थिति में केवल पुस्तक पढ़कर इसमें अंकित साधना में तत्पर हो जाना उचित नहीं है—यह स्मरण रखना होगा।

ओघविघ्न दृढ़निश्चय से पराभूत होते हैं। मन्त्र तथा उपासना क्रम पर अटूट श्रद्धा ही दृढ़निश्चय का बीज है। ओघ विघ्न का तात्पर्य है—मन में ऊहापोह। अर्थात् उपासना-फल प्राप्त होगा अथवा नहीं, उपलब्धि होगी अथवा नहीं इत्यादि। इस प्रकार के ऊहापोह से साधना काल में व्यक्ति साध्यमन्त्र तथा विधिविधान के प्रति एकतानता से च्युत हो जाता है। श्रद्धा से ही इसका समाधान प्राप्त हो सकना सम्भव है।

गणविघ्न स्थिति में दलबद्ध रूप से ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय जनित विपर्यय घटित होने लगते हैं। तान्त्रिक दृष्टिकोण से इसके कारक हैं—गण-समूह; यह संस्कारजनित है और संस्कारजनित मध्याकर्षण के कारण ऊर्ध्वाकर्षण के स्थान पर अवरोह की स्थिति आ जाती है। फल है—अभ्यारोह से च्युति; इसका समाधान है जप। साध्यमन्त्र तथा मन्त्रदेवता के प्रति अटूट निष्ठा रखने से और साधना काल में अन्तर्जगत् में प्रतिबिम्बित हो रहे विभिन्न अनुभव तथा दृश्यसमूह के प्रति अनासक्ति तथा निःस्पृह भाव रखने से उन दृश्यसमूह से आबद्ध होकर मन में क्रोधादि विकार होने पर भी केवल मन्त्रगति में ही निरुद्ध रहने से इस विघ्न का शमन होता है। इसमें कृतकार्य न होने पर तत्काल शिवरूप गुरु का आपादमस्तक अनुलोम एवं विलोम क्रम से ध्यान करना चाहिए। अर्थात् पूरक श्वास लेते हुए गुरु के चरण से प्रारम्भ करके उनके शिखादेश-पर्यन्त का क्रमशः ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् कुंभक करते हुए गुरु के सम्पूर्ण अस्तित्व का एक साथ ध्यान करना चाहिए। इसके अनन्तर गुरु के शिखाप्रदेश से लेकर प्रत्येक स्थान का चिन्तन करते हुए उनके चरणप्रदेश-पर्यन्त का रेचक श्वास काल में ध्यान करके चरणों तक आते-आते उनके पादांगुष्ठ-द्वय में मानस प्रणाम करते हुए आत्मसमर्पण से तत्काल गणविघ्न दूर हो जाते हैं। यह अत्यन्त गोपनीय तांत्रिक विधान है।

व्यूहविघ्न का आक्रमण कौलसाधना तथा वीराचार की अत्यन्त उन्नत स्थिति में होता है। इसके कारक हैं—विभिन्न दैविक स्तर अथवा देवता। जब साधक प्राप्तव्य (सिद्धि) अथवा भगवती के सन्निकट होने को होता है, उससे

तनिक पूर्व ही इनका आक्रमण होता है। कभी-कभी ये विघ्न साधक की परीक्षा के लिए होते हैं। इस विघ्न का शमन होता है—साधक की धारणा से। साधक को धारणा करनी चाहिए कि वह देवीरूप ही है। देवी की आभा से उसका अस्तित्व सर्वत्र परिव्याप्त है। 'मैं ही देवीरूप हूँ' इस भावना की दृढ़ता से यह विघ्न शान्त हो जाता है। जो साधक व्यूहविघ्न के आक्रमण से विचलित एवं पराभूत हो जाते हैं वे उन्मत्त, पिशाचवत् आचरण करने लगते हैं। भूतशुद्धि केवल बाह्यतः ही नहीं, अपितु अन्तरतम में भी होना आवश्यक है। जो देह में देवीस्वरूपत्व का न्यास करने में समर्थ हो जाते हैं, उनकी ही यथार्थ भूतशुद्धि हो सकती है। वे इस प्रकार के व्यूहविघ्नों से अनायास उत्तीर्ण हो जाते हैं। कवच का रहस्य है—स्वदेहन्यास।

नीलसरस्वतीतन्त्रोक्त साधना में 'गति' पर विशेष ध्यान देते रहना चाहिए। गतिरूपता ही सिद्धि-प्रदात्री है। युक्तसाधना (चक्रसाधना जिसमें लता अर्थात् कुलयुवती मुख्य हैं) का लक्ष्य है—साधक को युगनद्ध स्थिति का साक्षात्कार कराना। यह लौकिक तथा प्रच्छन्न दृष्टि वालों के लिए अश्लीलता से युक्त प्रतीत होती है। मुख्यतः लोग इसे हेय मानते आये हैं, परन्तु यह उनकी एकांगी दृष्टि तथा अज्ञान का ही द्योतक है। यहाँ इस प्रसंग पर विशेष विचार करना अप्रासंगिक है। अखण्डवाहिता तथा प्रशान्तवाहिता की प्राप्ति के लिए एक सावलील भाव होना आवश्यक है। साधक को जब तक लता (कुलयुवती को शक्तिरूपेण वरण करने) के साथ साधना की विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा परम तथा शुद्ध अधिष्ठान प्राप्त नहीं हो जाता, तभी तक गति का संवेग (Momentum) रहता है। कामस्पन्द के अति सन्निकट ही वह शुद्ध अधिष्ठान अन्तर्निहित (छिपा) है। यह अन्य किसी प्रकार के भी साधन-मार्ग में इतना सन्निकट नहीं है। 'विज्ञानभैरव' ग्रंथ में महाभैरव इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। उस शुद्ध अधिष्ठान की प्राप्ति के साथ ही वह सावलील भाव अनायास ही प्राप्त हो जाता है और तब काम ही प्रेम है। अब पूर्ण तथा शून्य एक ही बिन्दु पर साक्षात्कृत होने लगते हैं। शुद्ध अधिष्ठान की प्राप्ति के साथ-साथ ही कुलयुवती के साथ सम्पादित हो रही साधना में साधक का देह-बोध लुप्त हो जाता है। परन्तु यह अज्ञान अथवा मूर्च्छाजनित बोधलुप्तता नहीं है, प्रत्युत यह यथार्थ प्रबोध है। अर्थात् अशुद्ध स्व का विलीनीकरण एक सम्यक् शून्य की सृष्टि करता है। यही है सावलीलता। अब कुलयुवती की बाह्यतः आवश्यकता नहीं रह जाती है। साधक इस परम क्षण में आनन्दाप्लुतता में विभोर होकर जाड्य (देहादि संस्कार) से रहित होकर स्पन्द-समुद्र में निमज्जित हो उठता है। यही है—भैरवावस्था। परन्तु यह आनन्द-भैरवावस्था नहीं है।

इस बिन्दु पर अनेक साधक पुनः मध्याकर्षण में पड़ जाते हैं। आनन्द-

समाधि से व्युत्थित हो जाने पर सम्मुखीन कुलयुवती (लता) को देखकर उन्हें उसके प्रति सांसारिक आकर्षण होने लगता है। वे सोचते हैं कि इसी के कारण इस आनन्दसमाधि की सम्प्राप्ति हो सकी है, अतः वे उसके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। फलतः उन्हें अनेक शारीरिक व्याधि तथा संकट में पड़ते देखा जाता है। इस सम्बन्ध में सिद्धजन यह कहते हैं कि इस सावलील भावरूप आनन्दसमाधि का भी मातृरूप में विसर्जन करना होगा। आनन्दसमाधि आयत्त हो जाने के अनन्तर अब लता (कुलयुवती) की मातृवत् अर्चना करके उसका विसर्जन करना ही सावलील भाव का भी समर्पण कहा गया है। रामकृष्ण परमहंसदेव द्वारा अपनी पत्नी शारदामणि का मातृभाव से पूजन इसी रहस्य का द्योतक है। अब लता (कुलभैरवी) बाहर न रहकर साधक में ही सुप्रतिष्ठ हो जाती है। साधक भावजगत् (चिदाकाश) में जब चाहे उसका बहिःप्रक्षेपण करके उसके साथ रहस्य-साधना में लीन हो जाता है। यही है दिव्याचार। इस तन्त्र का उद्देश्य है—साधक की कामवृत्ति का पश्वाचार से उन्नयन करते-करते दिव्याचार तक का उत्कर्ष प्रदान करना। साधारणतः हममें कामादि वृत्तियाँ प्रायः इद्ध (Excited) होती रहती हैं, उन्हें श्रेयस् की ओर अत्यन्त त्वरितरूपेण गतिशील बनाने के लिए तन्त्रमार्ग एक अत्यन्त वैज्ञानिक तथा सफलतम मार्ग के रूप में उपदिष्ट है। तन्त्र मात्र को महाशक्ति का हृदय कहा गया है। यह कथन इसकी निःसन्दिग्ध सफलता देने वाली स्थिति का द्योतक है। यह 'संकर' को 'शंकर' बनाने की क्षमता रखने वाला साधनमार्ग है। परन्तु इस मार्ग में अत्यन्त सावधानी भी अपेक्षित है।

इस निवेदन के प्रारम्भ में यह प्रतिपादित किया गया है नीलसरस्वती महाशक्ति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप हैं। इस तन्त्र के ३२वें पटल में श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—'हे देवी ! मैं सुषुम्ना-मध्यगता शिवा को, देवी पार्वती को तथा महानीलसरस्वती को प्रणाम करके दुर्लभ उग्रतारा के विषय में कहता हूँ; यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सुषुम्नान्तर्गत चित्रा का वर्णन है। चित्रा का सूक्ष्म रूप है वज्रा और सर्वान्त में सुषुम्ना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप ब्रह्मनाड़ी का उल्लेख है। इस प्रकार सुषुम्ना की जो सर्वतोभावेन सूक्ष्मता ब्रह्मनाड़ी रूप से अनुभूत होती है, वही महाशक्ति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप नीलसरस्वती है। सुषुम्ना शून्यस्वरूपा है। वह नाड़ी न होकर रश्मिरूपा है। शून्य में उसका प्रकाशन जितना ही सूक्ष्मतर होता जाता है, अर्थात् शून्य में जितनी ही अधिक अन्तर्लीनता की अभिवृद्धि होती जाती है वह अनन्त के सामरस्य मे उतनी ही ओतप्रोत होती जाती है। नियम यह है कि अनन्त में प्रकाश-प्रक्षेपण करने पर प्रकाश की रेखा ऋजु नहीं रह जाती, वह वृत्ताकार हो जाती है। जब वह वृत्ताकार होता है तब बाहरी वृत्तरेखा पर उसकी प्रगाढ़ता उतनी अधिक नहीं रह जाती। उस वृत्त के केन्द्र में जितना ही अधिक अवगाहन किया जायेगा,

केन्द्र के जितना ही सन्निकट होने का सौभाग्य प्राप्त होगा, प्रकाश की गाढ़ता उतनी ही अधिक उपलब्ध होने लगेगी। अतः उपलब्धि यह होती है कि सुषुम्ना रश्मि की अनन्त केन्द्र में जो घनीभूतता है, उसका जो संकेन्द्रण है, वही है—नीलसरस्वती अथवा ब्रह्मनाड़ी। अनन्त केन्द्र में जाने पर भी वहाँ गति का अवसान नहीं होता। पहले जो गति वर्त्तुल थी अब वह केन्द्र-प्राप्ति के साथ-साथ अपने आपमें अपनी अनन्त गति के रूप में सरल रेखा जैसी सीधी चलने लगती है। अर्थात् जो प्रकाशरेखा अनन्त में प्रक्षिप्त होने पर वृत्ताकार हो गयी थी, वह केन्द्र-प्राप्ति के साथ ही साथ ऋजु तथा सुषम हो गई है। इस केन्द्र में गति का कोई अन्त अथवा अवसान ही परिलक्षित नहीं होता, क्योंकि यह केन्द्र ही महाशक्ति का हृदय है और वह है—बिन्दु-प्रवेश। इस बिन्दु-प्रवेश के अनन्तर नाभि-प्रवेश तथा सर्वान्त में योनि-प्रवेश का सौभाग्य कतिपय महा-साधक प्राप्त करते हैं। केन्द्र-प्रवेश है—भगवती नीलसरस्वती की आराधना। नाभि-प्रवेश है—भगवती उग्रतारा की आराधना। क्योंकि हृदय-प्रवेश के अनन्तर चिदाकाश से भी परे शुद्धमहाव्योम में जिस तत्त्व का साक्षात्कार होता है, उसे वैदिक धारा में सूर्यमण्डल भेद तथा महाचीनाचार की अतिगुप्तसाधना में नाभिप्रवेश की संज्ञा दी जाती है। योनिप्रवेश के सम्बन्ध में मात्र इतना ही संकेत दिया जा सकता है कि गीता में भी भगवान् कृष्ण ने इस महान् साधन-तत्त्व को इंगित किया है। वे कहते हैं कि महद्ब्रह्मरूप योनि में मैं गर्भ-स्थापन करता हूँ। यौगिक दृष्टिकोण से इस तत्त्व में जो महान् रहस्य निहित है, तान्त्रिक दृष्टिकोण से भी वह उतना ही रहस्यपूर्ण है। महाकौलगुरु की कृपा के बिना इस तत्त्व का प्रकाशन हो ही नहीं सकता।

इस तन्त्र के महाचीनक्रम में शवसाधना का भी उल्लेख प्राप्त होता है। तन्त्रोक्त बाह्य शव का उपयोग वीराचारी तथा अन्य प्राथमिक स्थिति के ही साधक करते हैं। अपनी देह को शववत् बनाकर उस पर तैजस् देह में अहंता स्थापित करके आसीन होना ही दिव्याचारियों की शवसाधना है। त्वक्-मांस-अस्थि-मज्जा प्रभृति पदार्थ बाह्य श्मशान में उपलब्ध होते हैं, वे ही देहरूपी महाश्मशान में भी उसी प्रकार विद्यमान हैं। जैसे शव श्मशान की भयानक रात्रि में भीतिग्रस्त करता रहता है, उसी प्रकार संसाररूपी महानिशा में हमारा देह पड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में दिव्याचारी साधक महाभैरव की अर्चना अपने ही देह में यथार्थ शवभावना करते हुए सम्पादित करते हैं।

जो मध्यम तथा निम्न श्रेणी के साधक हैं, वे विधानोक्त बाह्य शव के द्वारा शवसाधना सम्पादित करते हैं। इनकी अर्चना द्वारा बाह्यशव में आत्म-देव महाभैरव का उन्मेष नहीं होता। इन्हें विभिन्न स्तरीय देवी-देवता का ही उन्मेष कराने में सफलता मिल पाती है। लक्ष्य सुदृढ़ न होने पर प्रायः ऐसी शवसाधनाओं में देवी-देवताओं के आविर्भाव के स्थान पर पिशाच श्रेणी की

प्रेतात्माओं का आगमन हो जाता है। वे साधक से नरबलि आदि गर्हित बलि (आज के सामाजिक दृष्टिकोण से गर्हित) की माँग कर बैठते हैं। सिद्धि के लिए व्यामोहित साधक देवी-देवता तथा पिशाच के आविर्भाव का अन्तर समझने में असमर्थ हो जाता है। इस श्रेणी की गर्हित जीवात्मा बलि प्राप्त करके साधक को जो वर देती है, वह सफल नहीं होता और साधक बहुधा प्रवंचित हो जाता है। इन गर्हित जीवात्माओं में वह शक्ति ही नहीं होती। अन्य प्रेतवर्ग की तुलना में पिशाच श्रेणी की जीवात्माएँ शव में यथाशीघ्र प्रवेश प्राप्त कर लेती हैं। जब यक्ष-गन्धर्व श्रेणी की जीवात्माएँ उन्मिषित होती हैं, तभी शवसाधना द्वारा साधक को कुछ लाभ होता है। यदि भाग्य एवं गुरुकृपा का संयोग होने पर उच्चस्तरीय अजान देवताओं का आगमन शव में होता है तब कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाता। कर्मज देवताओं, गणनायकों की शक्ति सीमित ही होती है। बिठूर के श्मशान एवं तारापीठ के श्मशान प्रभृति स्थलों में यह साधना क्षिप्रता से सफल होती है।

इस महातन्त्र की एक प्रति महामहोपाध्याय शिवकल्प-तांत्रिक **स्व० रामेश्वर झा** महाराज के यहाँ देखने तथा अध्ययन करने को मिली थी। अन्य प्रति **डॉ० रमेश परमहंस,** तन्त्र फाउण्डेशन, नई दिल्ली के संग्रह में देखने को मिली। इनके आधार पर ही अनुवाद का उपक्रम सम्भव हो सका है। कुछ प्रकीर्ण पत्र बंगलिपि में भी प्राप्त हुए थे। उनसे भी मूलपाठ संयोजित करने में सहायता मिली। विद्वान् **डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी** ने मूलपाठ का सम्पादन कर इस प्रकाशन कार्य को यथाशक्य दोषरहित करने का स्तुत्य प्रयास करते हुए भगवती नीलसरस्वती की वाङ्मयी अर्चना की है।

अनन्त चतुर्दशी,
१९९३ ई०
लंका, वाराणसी

विनीत
एस० एन० खण्डेलवाल

विषयानुक्रम

पटलः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
प्रथमः	विद्याकथनम्	१
द्वितीयः	स्नान-सन्ध्याविवरणम्	४
तृतीयः	स्नानादिनिर्णयः	७
चतुर्थः	भूतशुद्ध्यादिकम्	१०
पञ्चमः	नित्यपूजानिर्णयः	१३
षष्ठः	मुखशोधनं जपसमर्पणञ्च	३१
सप्तमः	काम्यबलिः नीलसरस्वतीस्तोत्रञ्च	३३
अष्टमः	आत्मसमर्पणादिकम्	३६
नवमः	मद्यपानविधिः	३९
दशमः	दीक्षाप्रकरणम्	४१
एकादशः	पुरश्चरणप्रकरणम्	४६
द्वादशः	काम्यानुष्ठाननिर्णयः	६६
त्रयोदशः	महाचीनप्रकरणम्	७९
चतुर्दशः	सिद्धिमन्त्रः	८६
षोडशः	शवसाधनपद्धतिः पुरश्चरणविधिश्च	१००
सप्तदशः	मन्त्रक्रमः	११९
अष्टादशः	शिवशक्त्योरभेदकथनम्	१२३
एकोनविंशः	सर्वतन्त्रसाधारणविधिः	१३०
विंशः	योनिमुद्रादिप्रशंसा	१३४
एकविंशः	पार्वतीश्वर-संवादः	१४३
द्वाविंशः	अभेदोपासनाकथनम्	१५०

॥ क्लीं ॥

पार्वती-भैरवसंवादात्मकं

नीलसरस्वतीतन्त्रम्

हिन्दीटीकोपेतम्

प्रथमः पटलः

(विद्याकथनम्)

श्री देव्युवाच—

भगवन् ! देवदेवेश पञ्चक्रतुविधायक ।
सर्वज्ञ भक्तिसुलभ शरणागतवत्सल ॥ १ ॥
कुलेश ! परमेशान ! करुणामयवारिधे ।
केनोपायेन देवेश ! मुच्यते भवबन्धनात् ।
तन्मे वद महादेव ! यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ २ ॥

*** श्रीमत् तारादेवी को प्रणाम ***

(विद्याकथन)

देवी कहती हैं—हे भगवन् ! आप पञ्चभूतात्मक, सृष्टिविधायक, सर्वज्ञ तथा शरणागतवत्सल हैं । आपको भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है ।

हे महादेव ! कुलेश ! परमईशान ! आप दया के सिन्धु हैं । हे देवेश ! यदि आपकी मेरे प्रति करुणा है, तब वह उपाय कहिये, जिसके अनुष्ठान से भवबन्धन छूट जाता है ॥ १–२ ॥

श्रीभैरव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः ॥ ३ ॥
सर्वविद्याप्रधाना तु कथितेह्यं सुरेश्वरी ।
अतिगुह्यतरं ह्येतज्ज्ञानात्मकं सनातनम् ॥ ४ ॥

भैरव कहते हैं—हे देवी ! तुमने मुझसे जो जिज्ञासा प्रकट की है, उसका उत्तर सुनो । उसके श्रवणमात्र से ही व्यक्ति संसार से मुक्त हो जाते हैं । हे

सुरेश्वरी ! वह विद्या समस्त विद्याओं में प्रधाना है, अतिगुह्या तथा सनातनी है ॥ ३-४ ॥

अतीव च सुगोप्यञ्च कथितुं नैव शक्यते ।
अतीवासीत् प्रिया यस्मात् तस्मात्तत्कथयामि ते ॥ ५ ॥
रूपाणि बहुसङ्ख्यानि प्रकृतेः सन्ति भाविनी ।
तेषां मध्ये प्रधानं तु नीलरूपं मनोहरम् ॥ ६ ॥

यह अतीव गोप्या विद्या है। इस वाणी से अतीत विद्या का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, अतः इसका उपदेश करता हूँ।

हे भाविनी ! प्रकृति के अनेक रूप हैं, वह अनेकसंख्यक भी है। इन सभी में नीलरूप अत्यन्त मनोहर तथा प्रधान है ॥ ५-६ ॥

विशेषतः कलियुगे नराणां भुक्तिमुक्तिदम् ।
नीलतन्त्रं महातन्त्रं सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ ७ ॥
तस्य उपासकाश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
चन्द्रसूर्याश्च वरुणः कुबेरोऽग्निस्तथापरः ॥ ८ ॥
दुर्वासाश्च वशिष्ठश्च दत्तात्रेयो बृहस्पतिः ।
बहुना किमिहोक्तेन सर्वे देवा उपासकाः ॥ ९ ॥

कलियुग में विशेषतः इस नीलरूपा महाविद्या ही मानव-समूह को भुक्ति तथा मुक्ति देने वाली है। यह तन्त्र एक महातन्त्र है। यह सर्वोत्तम तन्त्र से भी श्रेष्ठतम तन्त्र है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, अग्नि प्रभृति देवगण और दुर्वासा, वशिष्ठ, दत्तात्रेय, बृहस्पति प्रभृति ऋषिगण भी इसके उपासक हैं। अथवा अधिक क्या कहा जाये; एक प्रकार से समस्त देवगण ही इस महाविद्या की उपासना करते हैं ॥ ७-९ ॥

प्रातःकृत्यं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ! ।
उत्थाय चोत्तरे यामे चिन्तयेदुग्रतारिणीम् ॥ १० ॥
मूलादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं विषतन्तुस्वरूपिणीम् ।
मूलमन्त्रमयीं साक्षादमृतानन्दरूपिणीम् ॥ ११ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ।
तडित्कोटिसमप्रख्यां कालानलशिखोपरि ॥ १२ ॥

हे कमलानने ! अब इस विद्या की उपासना के लिए प्रातःकृत्य का उपदेश करता हूँ। सुनो ! ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर सर्वप्रथम मृणालतन्तु के समान, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक परिव्याप्ता देवी उग्रतारिणी का चिन्तन करे। ये मूलमन्त्रस्वरूपिणी तथा साक्षात् अमृतानन्दरूपिणी परमाशक्ति हैं।

ये देवी आद्याशक्ति कोटि सूर्य समप्रभा तथा कोटि चन्द्र के समान स्निग्धा तथा सुशीतला हैं। ये कोटि विद्युत् के समान कान्तिसम्पन्ना तथा कालानलशिखा से भी उज्ज्वला हैं ॥ १०-१२ ॥

तत्प्रभापटलव्याप्तपाटलीकृतदेहवान् ॥ १३ ॥
सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभम्,
वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम् ।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणम्,
स्मरेच्छिरसि हंसगं तद्विधानपूर्वकं गुरुम् ॥ १४ ॥
ततो मानसगन्धाद्यैरर्चयेत् स्वस्वमुद्रया ॥ १५ ॥

उनकी पाटल (पाटल=श्वेतवर्ण के साथ किंचित् रक्तवर्ण की आभायुक्त) प्रभा से सब कुछ परिव्याप्त है। साधक भी अपनी देह को इसी पाटल प्रभा से आच्छन्न समझे। तत्पश्चात् सहस्रदल कमल में चन्द्रकिरण के समान सुशीतला, वराभय कराम्बुजा, विमल गन्धयुक्त पुष्पाम्बरधारिणी, प्रसन्नवदनेक्षणा, सकल देवतारूपिणी शिवा का ध्यान करे। इसके अनन्तर सहस्रार में गुरुरूपी परमशिव का स्मरण करे। मानस पूजा की पद्धति के अनुसार गन्धपुष्पादि द्वारा तथा शास्त्रोक्त मुद्रा के द्वारा इन परमशिवा की अर्चना करे ॥ १३-१५ ॥

कनिष्ठा पृथिवीतत्त्वं तद्योगाद् गन्धयोजनम् ।
अङ्गुष्ठो गगनं तत्त्वं तेनैव पुष्पयोजनम् ॥ १६ ॥

कनिष्ठांगुलि पृथ्वीतत्त्व है, इसके द्वारा देवीदेह में गन्धार्पण करे। अंगुष्ठ आकाशतत्त्व है, इसके द्वारा मानसपूजा में पुष्पार्पण करे ॥ १६ ॥

तर्जनी वायुतत्त्वं स्याद् धूपं तेनैव योजयेत् ।
तेजस्तत्त्वं मध्यमा स्याद् दीपं तेनैव योजयेत् ॥ १७ ॥
अनामा जलतत्त्वं स्याद् तेनैव योजयेद् गुरुम् ।
ततः स्तुत्वा वाग्भवञ्च जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ १८ ॥

तर्जनी वायुतत्त्व है; उससे मानसपूजा में धूप प्रदान करना चाहिए। मध्यमा तेजस् तत्त्व है; उससे दीपदान होता है। अनामिका जलतत्त्व है; उसके द्वारा मानसपूजन में गुरुरूपी परमशिव को योजित करे। तत्पश्चात् देवी का स्तवन करने के पश्चात् १०८ बार वाग्भव बीज 'ऐं' का जप करे ॥ १७-१८ ॥

जपं समर्प्य भक्त्या च प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥ १९ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये हरपार्वतीसंवादे प्रथमः पटलः ॥

इसके अनन्तर देवी के हाथों में जप समर्पण करते हुए दण्डवत् होकर देवी को प्रणाम करे।

जो अखण्ड मण्डलाकार हैं; जो इस चराचर विश्व में परिव्याप्त हैं, जिन्होंने उस परमपद का दर्शन कराया है; उन श्रीगुरु को नमस्कार है ॥ १९-२० ॥

॥ प्रथम पटल समाप्त ॥

द्वितीयः पटलः

(स्नान-सन्ध्याविवरणम्)

अथ वक्ष्ये स्नानजालं समस्तपुरुषार्थदम् ।
मृत्कुशानपि सङ्गृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः ॥ १ ॥
तस्मिन्निमज्य पयसि सङ्कल्पञ्च समाचरेत् ।
इष्टदेव्याः पूजनार्थं कुर्यात् स्नानं जलाशये ॥ २ ॥

(स्नान-अर्घ्य-अङ्गदेवता-पूजा-तिलक-मन्त्र गायत्री तथा तर्पण विवरण)

अब पुरुषार्थप्रद स्नान और उसकी आनुषङ्गिक प्रक्रियाओं का वर्णन करता हूँ। एक मिट्टी का पात्र ग्रहण करके जलाशय के पास जाये। देह को जल में निमज्जित करके विधानोक्त संकल्प-वाक्य के द्वारा इष्ट देवी के पूजार्थ जलाशय में (उस मृत्तिकापात्र के जल को भर-भर कर) स्नान करे ॥१-२॥

गृहीत्वा चोड्पुष्पञ्च कुलपुष्पं कुलोदकम् ।
प्रस्थं ग्राह्य ताम्रपात्रे सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ३ ॥

एक ताम्रपात्र में जवापुष्प, कुलपुष्प (स्त्री का रज), कुलोदक रखकर उसके द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे ॥ ३ ॥

मूलास्ते उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै ।
शिवचैतन्यमय्यै श्रीनीलसरस्वत्यै स्वाहा इति
चास्य मनुः स्मृतः ॥ ४ ॥

प्रथमतः मूलमन्त्र (नीलसरस्वती का मन्त्र) उच्चारण करे, तत्पश्चात् "ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै शिवचैतन्यै श्रीनीलसरस्वत्यै स्वाहा" मन्त्र का उच्चारण करे। यह अर्घ्य-निवेदन मन्त्र है ॥ ४ ॥

सूर्यायाघ्र्यां प्रदायैव पूजास्थानं समाविशेत् ।
गणेश बटुकं क्षेत्रपालांश्च योगिनीं तथा ॥ ५ ॥

सूर्य को अर्घ्य देकर पूजास्थान में प्रवेश करना चाहिए। वहाँ गणेश, बटुकभैरव, क्षेत्रपाल तथा योगिनी समूह का पूजन करे ॥ ५ ॥

पूजयित्वा गृहं गत्वा ब्राह्मणं पूजयेत्ततः ।
तिलकं रक्तगन्धेन गोपीचन्दनकेन च ॥ ६ ॥
देव्यस्त्रं विलिखेद् भाले ताराबीजं ततो हृदि ।
शक्तिमध्यगतां कुर्यात्तिलकं शाक्तरूपकम् ॥ ७ ॥

अब अपने घर जाकर ब्राह्मणों का पूजन करे। साधक को रक्तवर्ण का गन्धद्रव्य तथा गोपीचन्दन तिलक उपयोग में लाना चाहिए।

साधक ललाट पर 'ह्लीं फट्' मन्त्र लिखे। हृदय पर ताराबीज 'क्रं' लिखे। अपनी शक्ति को शाक्तरूपी तिलक लगायें।

आचमेदात्मतत्त्वाद्यैः प्रणवाद्यैर्द्विठान्तकैः ।
मन्त्रैस्त्रिधा तथा वक्त्रे नासाक्षिश्रोत्रनाभिहृत् ॥ ८ ॥
स्वमस्तकशिखांशेषु स्पृशेन्मन्त्रैस्तु साधकः ।
आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा आसने वाग्भवः मतम् ॥ ९ ॥

प्रथमतः मूलमन्त्र द्वारा आचमन करे, तत्पश्चात् पहले प्रणव का तदनन्तर मूलमन्त्र एवं ठः ठः का उच्चारण करे। मुख-नासिका-चक्षु-कर्ण-नाभि-हृदय-मस्तक तथा शिखा स्थान का (उक्त प्रणव एवं ठः ठः के मध्य मूलमन्त्र का जप करते हुए) स्पर्श करे। तदनन्तर आचमन करके 'ऐं' बीज का उच्चारण करते हुए आसनासीन हो जाये ॥ ८-९ ॥

अघमर्षणकं तत्र कूर्चबीजेन पार्वती ।
त्रिकोणं शूलबीजेन सावित्रीशतकं जपन् ॥ १० ॥

हे पार्वती ! कूर्चबीज (हूं) का उच्चारण करते हुए पापों का नाश करे। अब 'ॐ ऐं फट्' मन्त्र का १०० बार जाप करे। (त्रिकोण=ऐं, शूलबीज =फट्, सावित्री=ॐ) ॥ १० ॥

तत्रस्था प्रजपेद्देवीं गायत्रीं शृणु पार्वती ।
तारायै विद्महे प्रोक्त्वा महोग्रायै च धीमहि ॥ ११ ॥
तन्नो देवीति शब्दान्ते धियो यो नः प्रचोदयात् ।
गायत्र्यैषा समाख्याता सर्वपापनिकृन्तनी ॥ १२ ॥

अब आसन पर ही देवी गायत्री जपे। हे पार्वती ! अब देवी गायत्री का श्रवण करो।

'तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवि धियो यो नः प्रचोदयात्'— यही सर्वपापनाशक देवी गायत्री है ॥ ११-१२ ॥

वामपादं ततः कुर्यात् पादे च परमेश्वरी ।
उपस्थाय पुनर्हंस ऊर्ध्वबाहुस्त्रिधा जपेत् ॥ १३ ॥

ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षं सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोसनृ सद्वर-सदृत-सद्व्योम-सदजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदिति ॥ १४ ॥

अब वाम पैर पर खड़े होकर आसन से हटे । बाहुद्वय को ऊपर उठाकर तीन बार उपर्युक्त मन्त्र 'ॐ हंसः···बृहदिति' का जप करे ॥ १३-१४ ॥

तीर्थोदकं तिलफलकं क्षीराक्षतसमन्वितम् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ॥ १५ ॥

अब उत्तराभिमुखी होकर तीर्थजल मिश्रित दुग्ध, तिल तथा आतप तण्डुल द्वारा देवी का तर्पण करे ॥ १४ ॥

मूलान्ते तारिणीं प्रोक्त्वा तर्पयाम्यनलप्रियाम् ।
स्वर्णपात्रेण रौप्येण ताम्रपात्रेण वा पुनः ॥ १६ ॥
ऋजुकुशत्रयेणैव सन्तर्प्य भक्तितः सुधीः ।
गायत्रीं प्रजपेद्धीमान् अघमर्षणमेव च ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये हर-पार्वतीसंवादे स्नान-तर्पणादि-विवरणं नाम द्वितीयः पटलः ॥

मूलमन्त्र का उच्चारण करके तत्पश्चात् 'तारिणीं तर्पयामि स्वाहा' का उच्चारण करे । यह है देवीतर्पण मन्त्र ।

स्वर्ण, रौप्य अथवा ताम्रपात्र में ऋजु (सीधे) कुशत्रय द्वारा सुधी साधक भक्तिपूर्वक देवी का तर्पण करके सर्वपापनाशक देवी गायत्री का जप करे ॥ १६-१७ ॥

॥ द्वितीय पटल समाप्त ॥

तृतीयः पटलः

(स्नानादिनिर्णयम्)

शिव उवाच—

अथोच्यते महेशानि ! पूजास्थानं सुशोभनम् ।
एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ॥ १ ॥
तत्रस्थः साधयेद् योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ।
उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वापि साधकः ॥ २ ॥
देवागारे च शून्ये च यत्र वा तारिणी शिला ।
तत्र यत्नेन गन्तव्यं जप्तव्यं सिद्धिकाङ्क्षिणा ॥ ३ ॥

(पूजास्थान, आसन, रक्षामन्त्र, काय, वाक् पुष्पशोधन)

शिव कहते हैं—हे महेशानी ! मैं अब सुशोभन पूजास्थान का वर्णन कर रहा हूँ । उन सभी स्थानों में योगीगण त्रिभुवनेश्वरी आद्याशक्ति का पूजन कर सकते हैं ।

एकलिंग मंदिर में, श्मशान, शून्यगृह, चौराहा, अरण्य, पर्वत, निर्जन स्थान, शून्य देवमन्दिर अथवा जहाँ पर मंगलदायिनी देवी की शिलामूर्ति हो, वहाँ पर सिद्धिकामी साधक यत्नपूर्वक मन्त्रजप करे ॥ १-३ ॥

एतदन्यतमस्थानं तत्र पीठं विचिन्तयेत् ।
श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ॥ ४ ॥
तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ।
नानालङ्कारभूषाढ्यं मणिदिव्यैश्च भूषितम् ॥ ५ ॥

इन सभी स्थान की पीठरूप से चिन्ता करे । पीठस्थान में श्मशान की तथा श्मशान में कल्पद्रुम की तथा इस कल्पवृक्षमूल में नाना प्रकार की दिव्य मणियों से युक्त मणिपीठ की और नाना अलंकार की शोभा से शोभित देवीपीठ की चिन्तना करे ॥ ४-५ ॥

शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ।
चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभूषितम् ॥ ६ ॥
तन्मध्ये भावयेद्देवीं यथोक्तध्यानयोगतः ।
इति पीठं विचिन्त्याथ जलादिशोधनं प्रिये ॥ ७ ॥

इस कल्पवृक्ष के चारों ओर शवमुण्ड, चिता के अङ्गार, मनुष्य की अस्थि आदि समाच्छन्न है और नरमांसास्थि भोजन से तृप्त शिवाओं का समूह इस कल्पवृक्ष के चारों ओर विचरण कर रहा है । इस प्रकार का चिन्तन करते हुए

ध्यानयोग में कल्पवृक्ष के मूल में वेदी के उपर समासीन देवी का ध्यान करे। हे प्रिये ! यही देवी का पीठध्यान है। अब जलादि शोधन-विधि कहता हूँ।६-७।

तारे वज्रोदके हूँ फट् स्वाहा पादविशुद्धये।
तारं लज्जा चास्त्रबीजं स्वाहा चाचमने मनूः ॥ ८ ॥
प्रणवं मणिधरीति वज्रिणी सर्वपदं ततः।
वशङ्करी ततो हूँ फट् स्वाहेति बन्धयेत् शिखाम् ॥ ९ ॥

पादप्रक्षालनार्थ 'ॐ वज्रोदके हूँ फट्' मन्त्र द्वारा जलशोधन करते हुए इसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए पैरों को धो ले। 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से जल का शोधन तथा आचमन करे। 'ॐ मणिधरि वज्रिणी सर्वपदं वशङ्करि हूँ फट् स्वाहा'—मन्त्र के द्वारा शिखा को बाँधे ॥ ८-९ ॥

प्रणवं रक्ष युग्मञ्च वर्मयुग्मं ततोऽपि फट्।
वह्निजायावधिर्मन्त्रो भूमिशोधन ईरितः ॥ १० ॥
विघ्नानुत्सारयेन्मन्त्री नाराचमुद्रयाक्षतैः।
प्रणवं सर्वविघ्नांश्च उत्सारय कवचाय फट् ॥ ११ ॥
स्वाहा च मनूना देवि, विघ्नानुत्सारयेत्ततः।

'ॐ रक्ष-रक्ष-हुं हुं फट् स्वाहा'—इस मन्त्र से भूमि-शोधन करे। 'ॐ सर्वविघ्नांश्च उत्सारय उत्सारय हूँ फट् स्वाहा'—यह मन्त्र पढ़ते हुए आतप-तण्डुल द्वारा नाराचमुद्रा का प्रदर्शन करते हुए समस्त विघ्नों को दूर करे ॥ १०-११ ॥

मृद्वचूडकमासीने अन्येषु कोमलेषु वा ॥ १२ ॥

मृदु आसन, अचूड़क आसन अथवा कोमल आसन पर वीराचार के लिए उपवेशन करने से उत्तमा सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

वीराचारे सुखासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।
सङ्ग्रामे पतितं वापि व्यापादितमचूडकम् ॥ १३ ॥

वीराचार में सुखासीन होकर उत्तमा सिद्धि प्राप्त करे। संग्राम में मृत अथवा निहत व्यक्ति को अचूड़क कहते हैं (इसी पर बैठना अचूड़क आसन है) ॥१३॥

षण्मासे निःसृतं प्राप्य चितायाञ्च तदन्तिके।
दशमासादर्वाग् षण्मासात् परः गर्भच्युतो बालको मृदुः ॥ १४ ॥

छः मास के गर्भनिःसृत बालक के शव को चिता पर लेटी अवस्था में से लाकर अथवा चिता के निकट से प्राप्त करने पर उसे अथवा १० मास से पहले अथवा ६ मास के पश्चात् वाले गर्भच्युत बालक के शव को मृदु कहते हैं ॥ १४ ॥

अचूडकोऽकृतचूडाकरणः जननात् पञ्चवर्षाभ्यन्तरे अचूडकः।
उपनयनसमयादर्वाक् चूडाकरणात् परम् ॥ १५ ॥

जिसका चूड़ाकरण कर्म नहीं हुआ है, उस बालक का शव अचूड़क है।

पाँच वर्ष के पहले वाले सभी बालक के शवों को अचूड़क कहते हैं। चूड़ाकरण कार्य निष्पन्न होने के पश्चात् से लेकर उपनयन कर्म सम्पन्न होने के पहले तक की आयुवाले मृतक बालक के शव को भी अचूड़क (कोमलासन) कहते हैं ॥ १५ ॥

एषामभावे देवेशि ! विशरे कुशबटुके वा।
कृष्णसार द्वीपिचर्म अथवा कम्वलं तथा ॥ १६ ॥
पीतं सश्वेतरक्तञ्च आसनाय प्रकल्पयेत्।
तारो मणिधरीत्यन्ते वज्रिणीति पदं लिखेत् ॥ १७ ॥
महाप्रतिसरे रक्षयुग्मं हूँ फट् तथैव च।
स्वाहेति वस्त्रप्रान्ते च रक्षाग्रन्थि समाचरेत् ॥ १८ ॥

(उक्त विधान के अनुसार अचूड़क, मृदु अथवा कोमल आसन रूपी शवासन पर बैठकर साधन कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए।)

हे देवेशी ! इन सभी आसनों के अभाव में विशर (तीक्ष्ण नोंक वाले तृण) निर्मित, कुशनिर्मित आसन, कृष्णसार मृग की छाल, हस्तिचर्म, कम्बल अथवा कोई पीतवर्ण या श्वेतवर्ण में हल्की रक्तिम आभावाले किसी आसन का साधना में उपयोग करे। तदनन्तर 'ॐ मणिधरि वज्रिणी महाप्रतिसरे रक्ष-रक्ष हूँ फट् स्वाहा'—इस मन्त्र के द्वारा आत्मरक्षार्थ वस्त्र में गाँठ लगाये ॥ १६-१८ ॥

तारोऽनन्तः सर्गयुक्तः हूँ फट् स्वाहेति मन्त्रितः।
व्यापकं कायवाक् चैव शोधनं तदनन्तरम् ॥ १९ ॥
प्रणवं हृतपुष्पे तु पदं राजार्हते तथा।
सताय सम्यगुच्चार्यं समुद्धारञ्च तारयुक् ॥ २० ॥

'ॐ लं अः हूँ फट् स्वाहा' इस मंत्र के द्वारा व्यापक न्यास सम्पन्न करे। तदनन्तर—'ॐ नमः पुष्पकेतु राजार्हते सताय ॐ' इस मन्त्र के द्वारा काय तथा वाक् का शोधन करे।

ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे।
पुष्पचयावकीर्णे हूँ फट् स्वाहा च समुद्धरेत् ॥ २१ ॥
प्रतिशुद्धमनेनैव पुष्पं देव्याः समर्चने ॥ २२ ॥

इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये हर-पार्वतीसंवादे पूजा-स्थानासनादिनिर्णयं नाम तृतीयः पटलः ॥

'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे, पुष्पचयावकीर्णे हूँ फट् स्वाहा' इसे मन्त्र द्वारा देवी की अर्चना के लिए पुष्प-शुद्धि करे ॥ २१-२२ ॥

॥ तृतीय पटल समाप्त ॥

चतुर्थः पटलः

(भूतशुद्ध्यादिकम्)

शङ्कर उवाच—

यन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि समस्तपुरुषार्थदम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सद्यः खेचरतां व्रजेत् ॥ १ ॥

(नीलसरस्वती यंत्र, भूतशुद्धि, षट्-कर्म प्रयोग में नीलसरस्वती-ध्यान, पीठशक्ति, देवीगण का विवेचन)

शंकर कहते हैं—जिनके ज्ञानमात्र से साधक सद्यः आकाश-गमन की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं, अब मैं नीलसरस्वती के उस समस्त पुरुषार्थप्रद यन्त्रराज का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

स्वर्णादिपात्रे रक्तचन्दनगोरोचनाकुङ्कुमवज्रपुष्पादि-
लिप्ते तत कुलरसने पीठं निर्माय पठेत् ॥
ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् द्वयमेव च ।
मन्त्रेणानेन विधिवद् यन्त्रराजं लिखेत् प्रिये ॥ २ ॥

स्वर्णादि के पात्र में रक्तचन्दन, गोरोचन, कुंकुम, वज्रपुष्प प्रलिप्त करे, उस प्रलिप्त स्थान में कुलरस के द्वारा पीठ-निर्माण करने के लिए 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् स्वाहा' (मतान्तर से 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् फट्') इस मंत्र का उच्चारण करते हुए यथाविधि नीलसरस्वती का यन्त्र अंकित करे ॥ २ ॥

व्योमेन्द्वौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत् केशरं,
वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्ठितम् ।
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्दिक्कोणसंशोभितम्,
यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥ ३ ॥

व्योम (ह), इन्दु-सकार (स), औकार, रसार्ण (:) के संयोग से प्रेत बीज बनाकर हसौः कर्णिका में लिखे । पद्म के केशर दो-दो वर्ण द्वारा भूषित होते हैं । पद्म के आठ पत्र भी आठ वर्णों के द्वारा अंकित किये जाते हैं । यह पद्म भूगृह (भूपुर) के द्वारा वेष्ठित होता है । तारापति चन्द्र तथा जलवर्ण समूह के द्वारा विलसित अष्टकोण से युक्त सर्वार्थसिद्धिदायक नीलसरस्वती का श्रेष्ठ यन्त्र कहा गया ॥ ३ ॥

एवं यन्त्रं समालिख्य पूजाधारे निधापयेत् ।
पीठशक्तिः ततो देव्याः लक्ष्म्याद्याः शक्तिरीरिताः ॥ ४ ॥
लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च ।
कीर्तिः शान्तिश्च पुष्टिश्च तुष्टिरित्यष्टशक्तयः ॥ ५ ॥
देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः ॥ ६ ॥
एवं पीठं सम्पूज्य मध्ये प्रेतासनं तद्बीजेन पूजयेत् ।
तन्मध्ये पूजयेद्देव्या वाहनं शवमेव च ॥ ७ ॥

यह यन्त्र लिखकर पूजागृह में स्थापित करे। तत्पश्चात् लक्ष्मी प्रभृति अष्टशक्ति की, देवी शक्ति की पीठशक्तिरूपेण पूजा करे।

लक्ष्मी-सरस्वती-रति-प्रीति-कीर्ति-शान्ति-पुष्टि को देवी नीलसरस्वती की पीठशक्ति कहा गया है।

तदनन्तर चक्र में वाहन तथा शव के साथ (अन्यमतानुसार—शववाहन के साथ) देवी का पूजन करे ॥ ४-७ ॥

भूतशुद्धिं ततो वक्ष्ये शृणुष्वावहितानघे ।
अपानमूर्ध्वगं कृत्वा देव्या तत्त्वे प्रपूज्य च ॥ ८ ॥
हंसमन्त्रेण चाधारात् शक्तिं कुण्डलिनीं पराम् ।
क्रमाच्चक्राणि निर्भेद्य जीवात्मानं ततोऽम्बुजात् ॥ ९ ॥
सहस्रारे ततो नीत्वा परब्रह्मणि योजयेत् ।
इन्द्रियाणि दशैकञ्च महाभूतानि सद्गुणाः ॥ १० ॥
बुद्ध्यहङ्कारचित्तानि तत्त्वानि प्रकृतेर्विदुः ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि वीरभावेन योजयेत् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् क्रमशः षट्चक्र का भेद करते हुए जीवात्मा को सहस्रार में ले जाकर परमशिव के साथ युक्त करे। दश इन्द्रिय, पञ्चमहाभूत, उनके गुणसमूह, बुद्धि, अहंकार, चित्त तथा चौबीस तत्त्व को प्रकृति के गुण कहा जाता है। इन चौबीस तत्त्वों का योजन आत्मतत्त्व से करे ॥ ८-११ ॥

ततः शून्ये शरीरे च कुक्षौ वामे विचिन्तयेत् ।
सर्वपापात्मकं कृष्णं पुरुषं पिङ्गमूर्द्धजम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर लिङ्ग के उर्ध्व भाग में वामकुक्षिस्थ शून्य में सर्वपापात्मक कृष्णवर्ण पापपुरुष का चिन्तन करे ॥ १२ ॥

सह तेन दहेन्मन्त्री मायाबीजेन वह्निना ।
वधुबीजोत्थवातेन तद्भस्मोत्सारणं चरेत् ॥ १३ ॥

मायाबीज (ह्रीं) तथा वह्निबीज (रं) द्वारा इस पापपुरुष को दग्ध करे। तदनन्तर वधुबीज (स्त्रीं) द्वारा उत्थित वायु से इस दग्ध पापपुरुष की भस्म को भी उड़ा दे ॥ १३ ॥

कूर्चबीजोत्थपीयूषं विश्वेभ्यः प्लावयेत्ततः ।
निर्मलं देवतारूपं उत्पन्नं भावयेद्वपुः ॥ १४ ॥

अब कूर्च(ह्रूं)बीजोत्थित अमृतप्लावन के द्वारा समग्र देह (देहरूपी विश्व) को प्लावित करे। इसके पश्चात् बुद्धिमान् साधक इस अमृतप्लावन के द्वारा सुनिर्मल देवदेह प्राप्त करता है। अर्थात् देह में देवता का स्वरूपत्व आ गया है, यह चिन्तना करे ॥ १४ ॥

भूतशुद्धि विधायेत्थं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् ।
निर्लिप्तं निर्गुणं शुद्धमात्मानं तारिणीमयम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार भूतशुद्धि करके इस विश्व की (देह की) शून्यमयी चिन्तना करे। अब अपनी आत्मा में निर्लिप्त निर्गुण तथा शुद्ध तारिणीमय रूप का चिन्तन करना चाहिए ॥ १५ ॥

अन्तरीक्षे ततो ध्यायेत् आकाराद्रक्तपङ्कजम् ।
भूयस्तस्योपरि ध्यायेत् टङ्कारे श्वेतपङ्कजम् ॥ १६ ॥
पुनस्तस्योपरि ध्यायेत् हूँकारं नीलसन्निभम् ।
ततो हूँकारबीजेन कर्णिकां बीजभूषिताम् ।
कूर्चं परिगतां ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर अन्तरिक्ष में (पूर्वोक्त महाशून्य में) 'आ' से उत्पन्न रक्तपंकज और 'टं' से उत्पन्न श्वेत कमल तथा इस श्वेत कमल के ऊपर नीलवर्ण हूँ बीज का चिन्तन करे। इस हूँ बीज के द्वारा कर्णिका शोभित है और इसी बीज में साधक अपनी आत्मा की तारिणीमय स्थिति का चिन्तन करे ॥ १७ ॥

यथा—

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ॥ १८ ॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ॥ १९ ॥
खड्गकर्त्रीसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपोलोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥ २० ॥
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलाभूषणभूषिताम् ॥ २१ ॥

तारिणी, नीलसरस्वती, प्रत्यालीढ़पदा, घोरा, मुण्डमाला-विभूषिता, खर्वा, लम्बोदरी, भीमा, व्याघ्रचर्मावृत कटि, नवयौवना, पद्ममुद्राविभूषिता, चतुर्भुजा, लोलजिह्वा, महाभीमा, वरप्रदा, दक्षिणहस्त में खड्गयुता, वामहस्त में उत्पल धारण करने वाली, पिंगलवर्णा, उग्रा, एकजटा का इस प्रकार से नानाभूषण-भूषिता रूप में ध्यान करे ॥ १८–२१ ॥

बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।
ज्वलच्चितामध्यमस्थां घोरदंष्ट्रा करालिनीम् ॥ २२ ॥
सुवेशां स्मेरवदनां अलङ्कारविभूषिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरि स्थिताम् ॥ २३ ॥

वे देवी अरुणोदयकालीन सूर्य के समान मण्डलाकारा और त्रिनयन-भूषिता, जलती चिता के बीच स्थिता, घोर-दंष्ट्रा, करालिनी, सुवेशा, स्मेर-वदना, नानालंकारभूषिता और श्वेत पद्म पर आसीन हैं ॥ २२–२३ ॥

वश्यादौ च रक्तवर्णामाकृष्टे पीतरूपिणीम् ।
मारणोच्चाटने धूम्रां कृष्णां तत्तदपेक्षणाम् ॥ २४ ॥

देवी का वशीकरण कार्य में रक्तवर्णा, आकर्षण में पीतवर्णा, उच्चाटन में धूम्रवर्णा और मारण में कृष्णवर्णा रूप से ध्यान करना चाहिए ॥ २४ ॥

एवम्भूतं स्वमात्मानं ध्यायेच्च तारिणीमयम्
अक्षोभ्यो देवीमूर्द्धन्यास्त्रैशूलज्ञाङ्गरूपधृक् ॥ २५ ॥
एवम्भूतं स्वमात्मानं ध्यायेच्च भूतशुद्धये ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे भूतशुद्ध्यादिकं नाम चतुर्थः पटलः ॥

इस प्रकार विभिन्न कार्य के लिए अपनी आत्मा की तारिणीमयी भावना करना चाहिए। भूतशुद्धि के लिए क्षोभरहित होकर देवी के मस्तक में त्रिशूलधारी, विश्वगुरु महादेव के समान अपनी आत्मा का ध्यान करे ॥ २५–२६ ॥

चतुर्थ पटल समाप्त ।

पञ्चमः पटलः

(नित्यपूजा-निर्णयः)

शङ्कर उवाच—

पूजाविधिं ततो वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने ! ।
गणेशं क्षेत्रपालञ्च योगिनीं वटुकं तथा ॥ १ ॥
पूजयित्वा गृहं गत्वा ततः पूजां समाचरेत् ।
ततः षोडशवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित् ॥ २ ॥
युवतीं मदनोन्मत्तां सुवेशां चारुहासिनीम् ।
सदा रतौ साभिलाषां सिन्दूराङ्कितभालिकाम् ॥ ३ ॥

साधकप्रेमसम्पन्नां वामे संस्थापयेद्बुधः ।
तस्याश्च भूतशुद्धयादीन् कृत्वा च मातृकां न्यसेत् ।। ४ ।।

(पूजाविधि, ताराषोड़ा, षोडश उपचार, योनिमुद्रा, बीजमुद्रा, दैत्यधूमिनी मुद्रा, तत्त्वमुद्रा, लेलिहानमुद्रा, गुरुक्रमकथन, देवगुरुकथन, नीलसरस्वती परिवार-वर्णन, नैवेद्य, अर्चना, बलिविधि, जपलक्षण, मन्त्रध्यान, अंगदेवतापूजा, ध्यान, कुल्लुका, सेतु, महासेतु, निर्वाण)

शंकर कहते हैं—हे कमलानने ! अब पूजन-विधि कहता हूँ । सुनो—प्रथमतः गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनीगण तथा बटुक-पूजन करे; तब घर जाकर नीलसरस्वती का पूजन करे ।

मन्त्रविद् साधक पूजा के प्रारम्भ में साधक के प्रति प्रेमसम्पन्ना, ललाट में सिन्दूर लगाये हुए, सर्वदा रतिकामना-परायणा, चारुहासिनी, सुवेशा, मदनोन्मत्ता, षोडशवर्षीया युवती को लाकर पूजास्थान में अपने वामपार्श्व में स्थापित करे ।

इस युवती की भूतशुद्धि प्रभृति सम्पन्न करके उसके अंगों में मातृकान्यास करे ।। १–४ ।।

ततश्च कारणं दिव्यं समानीय घटे स्थितम् ।
वेष्ठितं रक्तवस्त्रेण रक्तमाल्येन भूषितम् ।। ५ ।।
वामभागे महेशानि मण्डलं चतुरस्रकम् ।
लौहवर्णन्तु कलशं तत्रैव स्थापयेदथ ।। ६ ।।

हे महेशानी ! तत्पश्चात् रक्तवस्त्र से आवेष्ठित तथा रक्तमालाभूषित घट में दिव्य कारण (मद) लाकर इस कृष्णवर्ण मद्यकलश को चतुष्कोण पूजा-मण्डल के वामभाग में स्थापित करे ।। ५–६ ।।

विमले कारणे देवी तत्राधारं प्रपूज्य च ।
कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलमर्यादाभूषितम् ।। ७ ।।
पात्रस्याग्नीशासुरवायव्यमध्ये च दिक्षु च ।
षडङ्गानि च विन्यस्य मूलमन्त्रं ततो जपेत् ।। ८ ।।

तदनन्तर कुलपुष्प, कुलद्रव्य तथा कुलमर्यादाभूषित, विमल मद्य से पूर्ण कलश का पूजन करे ।

मद्यकलश के पूर्व तथा पश्चिम की ओर षडंगन्यास करके मूलमन्त्र का जप करे ।। ७–८ ।।

ततश्च प्रोक्षयेद्देवी पूजाद्रव्याणि मन्त्रवित् ।
प्राणायामं ततः कुर्यात् क्रोधबीजेन पार्वती ।। ९ ।।

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहतीश्छन्द ईरितम् ।
नीला सरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ।। १० ।।

हे देवि ! तदनन्तर मन्त्रविद् साधक पूजाद्रव्यादि का प्रोक्षण करे ! हे पार्वती ! तत्पश्चात् 'हूँ' का उच्चारण कर प्राणायाम करना चाहिए । त्रिभुवन के इस गुप्त मन्त्र के ऋषि हैं—अक्षोभ्य; छन्द है—बृहती और इसकी देवता हैं—नीलसरस्वती ।। ९–१० ।।

हूँ बीजं मन्त्रशक्तिश्च चतुर्वर्गफलप्रदा ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कुर्यादत्रैव केवलम् ।। ११ ।।

चतुर्वर्गफलप्रदा 'हूँ बीज' इस मन्त्र की शक्ति है । यहाँ की साधना में हूँ बीज द्वारा केवल अङ्गन्यास तथा करन्यास करना चाहिए ।। ११ ।।

अत्रोक्तमाचरेदत्र नान्यत् सञ्चरयेद्बुधः ।
यथा काली तथा नीला तत्क्रमान्मातृकां न्यसेत् ।। १२ ।।

तन्त्रोक्त वामाचार-विधान से देवी की अर्चना करे । बुद्धिमान् साधक कभी भी इसके विपरीत न करे । जो काली हैं, वे ही नीलसरस्वती हैं । अतएव कालीपूजा के ही अनुसार अङ्गन्यास करे ।। १२ ।।

मातृकान्यास-विधि—मातृकान्यास के ऋषि—ब्रह्मा, छन्द—गायत्री, देवता—मातृका सरस्वती देवी है । इसका बीज है व्यञ्जन वर्ण और स्वरवर्ण इसकी शक्ति है । इसका कीलक है विसर्ग । इस प्रकार से ऋषिन्यास करने के उपरान्त करन्यास तथा हृदयादि अंगन्यास करे ।

प्रथम करन्यास की विधि अंकित की जा रही है—

अं कं खं गं घं ङं आं : अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
इं चं छं जं झं ञं ईं : तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं : मध्यमाभ्यां वषट् ।
एं तं थं दं धं नं ऐं : अनामिकाभ्यां हुं ।
ओं पं फं बं भं मं औं : कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।
अं यं रं लं वं षं सं हं क्षं अः : करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

अब अंगन्यास-विधि कही जाती है—

अं कं खं गं घं ङं आं : हृदयाय नमः ।
इं चं छं जं झं ञं ईं : शिरसे स्वाहा ।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं : शिखायै वषट् ।
एं तं थं दं धं नं ऐं : कवचाय हुम् ।
ओं पं फं बं भं मं औं : नेत्रत्रयाय वौषट् ।
अं यं रं लं वं षं सं हं क्षं अः : करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत् ।
अखण्डवाग्रूपिणी देवी शिरसि वह्निवल्लभा ।। १३ ।।
ब्रह्मवाग्रूपिणीत्युक्त्वा शिखायै वषडित्यपि ।
विष्णुवाग्रूपिणीत्युक्त्वा कवचाय हुमुच्चरेत् ।। १४ ।।
रुद्रवाग्रूपिणीत्युक्त्वा नेत्रत्रयाय वौषडित्यपि ।
सर्ववाग्रूपिणीत्युक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत् ।। १५ ।।
षड्दीर्घयुतमायया बीजान्ते च नियोजयेत् ।
षड्दीर्घेणाद्यवर्णेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।। १६ ।।

अब षडंगन्यास कहते हैं—

ह्रां अखिलवाग्रूपिणी हृदयाय नमः ।
ह्रीं अखण्डवाग्रूपिणी शिरसे स्वाहा ।
ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिणी शिखायै वषट् ।
ह्रं विष्णुवाग्रूपिणी कवचाय हुम् ।
ह्रौं रुद्रवाग्रूपिणी नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ह्रः सर्ववाग्रूपिणी अस्त्राय फट् ।

उक्त मन्त्रवाक्य-समूह के साथ षड्शीर्ष युक्त मायाबीज अर्थात् प्रत्येक में यथाक्रमेण ह्रा, ह्रीं, ह्रूं, ह्रं, ह्रौं ह्रः का योग कर देना चाहिए ।

तदनन्तर मातृका सरस्वती का ध्यान करना चाहिए । मातृका सरस्वती का मुख, बाहु, पाद, कटि तथा वक्षःस्थल ५० वर्णों में विभक्त है । उनका ललाट उज्ज्वल तथा शशिकला से युक्त है । पयोधरयुगल स्थूल तथा उन्नत है । चारों बाहु में तत्त्वमुद्रा, अक्षमाला, अमृतपूर्ण कलश और विद्या सुशोभित है । मैं उन शुक्लवर्णा त्रिनयना वाग्देवी का आश्रय लेता हूँ । इस प्रकार ध्यान के पश्चात् षट्चक्र में मातृकान्यास करे ।। १३-१६ ।।

आज्ञाचक्र में—ह तथा क्ष का न्यास करे ।

विशुद्धचक्र में—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः का न्यास करे ।

अनाहतचक्र में—क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ का न्यास करे ।

मणिपुरचक्र में—ड ढ ण त थ द ध न प फ का न्यास करे ।

स्वाधिष्ठानचक्र में—ब भ म य र ल का न्यास करे ।

मूलाधारचक्र में—व श ष स का न्यास करे ।

इस प्रकार से आभ्यन्तर में मातृकान्यास करके देह के बहिर्भाग—ललाट, मुख, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासाद्वय, गण्डद्वय, ओष्ठ, अधर, उर्ध्व दन्तपंक्ति, मस्तक, मुखविवर, बाहुद्वय की सन्धि तथा अग्रभाग, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, नाभि, उदर, हृदय, स्कन्धद्वय, ककुद, हृदय से दक्षिण बाहु, हृदय से बाम बाहु, हृदय

से दक्षिण पैर, हृदय से वाम पैर, हृदय से जठर, हृदय से मुख—इन सभी स्थानों पर मातृकान्यास करना चाहिए। यह महानिर्वाणतन्त्र सम्मत है।]

देव्युवाच—

कुलेश ! परमेशान ! करुणामयवारिधे।
ताराषोढा ब्रूहि देव ! यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ १७ ॥

देवी कहती हैं—हे परमेशान ! हे कृपासिन्धु ! यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है, तब हे देव ! आप ताराषोढ़ा रहस्य कहें ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच—

साधु पृष्टोऽस्मि देवेशि ! कथयामि वरानने !।
विद्यया पुटितां कृत्वा षड्धा च मातृकां न्यसेत् ॥ १८ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवेशी ! हे वरानने ! तुमने हमसे अच्छा प्रश्न पूछा है। मैं उत्तर देता हूँ। नील सरस्वती मन्त्र को पुटित करके ६ बार मातृकान्यास करना चाहिए ॥ १८ ॥

क्रमात् क्रमाद्वरारोहे ताराषोढा प्रकीर्तिता।
यस्त्वैवं कुरुते मन्त्री स तु तारा न संशयः ॥ १९ ॥
तस्य लोके गुरुर्नास्ति स गुरुः सर्वयोगिनाम्।
मूलमुच्चार्य देवेशि ! न्यासश्च व्यापकत्रयम् ॥ २० ॥

हे वरारोहे ! इसे ही ताराषोढ़ा कहते हैं। जो व्यक्ति इसे सम्पन्न करता है, वह व्यक्ति स्वयं तारा है।

पृथ्वी में उस व्यक्ति का कोई गुरु नहीं है। वह व्यक्ति स्वयं ही समस्त योगीगण का गुरु है। हे देवेशी ! मूल मन्त्र उच्चारण करके तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ १९-२० ॥

शिरादिपादपर्यन्तं पादादिशिरसस्तथा।
ततो ध्यायेच्च देवेशि ! पूर्वोक्तविधिना पुनः ॥ २१ ॥

मस्तक से पैरों तक और पैरों से शिर-पर्यन्त न्यास करना ही व्यापक न्यास है। हे देवेशी ! तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि के अनुसार पुनः ध्यान करे ॥ २१ ॥

दूर्वाक्षत-रक्तपुष्पादि-मिलित-दिनकर-किरणारुण-कुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयान्मूलमन्त्रं तेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यरूपां तां षट्चक्रभेदक्रमेण शिरोऽवस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतं परमशिवं प्रापयित्वा क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य तदमृत-

लोलीभूतानन्दमयी श्रुवन् नासाग्रपुटमानीय कल्पितमूर्त्या समावाहयेत् ॥ २२ ॥

अब दूर्वा, रक्ततण्डुल, रक्तपुष्पादि मिलित दिनकर की किरणों के समान अरुण कुसुमांजलि के साथ मातृकायन्त्र का ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर हृदय से शुद्धज्ञानचैतन्यरूप तेजोमय मूलमन्त्र को षट्चक्र भेदन क्रम से शिरःस्थ सहस्रदलकमल-कर्णिका के अन्दर स्थित परमशिव से योजित करे।

इस संयोग क्रिया द्वारा उत्पन्न अमृत में विश्राम करे। इस अमृत के द्रवीभूत होने पर आनन्द-स्रोत प्रवाहित होता है। उसे नासापुटों में लाकर कल्पित मूर्ति का उसमें आवाहन करे ॥ २२ ॥

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ॥ २३ ॥

नीलसरस्वति देवि इहावह इत्यञ्जलिना स्थापनम्। इह तिष्ठस्व एवाधोमुख इह सन्निधेहि इत्यावाह्याङ्गुष्ठाभ्यां इह सन्निरुद्धस्व अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण ॥ २४ ॥

अब 'देवेशि भक्तिसुलभे·········इहावह' मन्त्र द्वारा देवी का आवाहन करे। तब 'इह तिष्ठस्व' द्वारा देवी को अपनी ओर अभिमुख करे। अब वृद्धाङ्गुष्ठ के द्वारा 'इह सन्निरुद्धस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूजाग्रहणार्थ देवी से निवेदन करे ॥ २३-२४ ॥

[आवाहन, संस्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन तथा सम्मुखीकरण कार्य विभिन्न मुद्राओं द्वारा किया जाता है। इन्हें क्रमशः आवाहनी, संस्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी तथा सम्मुखीकरणी मुद्रा कहते हैं।

ऊर्ध्वमुखी हथेली द्वारा अञ्जलि बाँधकर दोनों हाथों की अनामिका से उन-उन हाथों के अँगूठे का स्पर्श करते हुए अँगुली को ऊपर से नीचे लाना आवाहनी मुद्रा है।

इसी मुद्रा में हथेली को अधोमुखी करना संस्थापनी मुद्रा है।

दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर मिलाना और अँगूठों को उपर करना सन्निधापनी मुद्रा है।

इस सन्निधापनी मुद्रा में दोनों अँगूठों को मुट्ठी में अन्दर कर लेना ही सन्निरोधिनी मुद्रा कही जाती है।

इसी मुद्रा में मुट्ठी को उलटा (चित) करना सम्मुखीकरणी है।]

आत्मवद् देव्याः षडङ्गानि विन्यस्यावगुण्ठनसम्बन्धनअमृतीकरणपरमीकरणानि कृत्वा—

'ॐ आं ह्रीं क्रों स्वाहा'—इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य, मूलविद्यान्ते—'ॐ श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहा' इत्यनेन पाद्यादिभिः षोडशोपचारैरर्चयेत् ॥ २५ ॥

साधक जिस प्रकार षडङ्गन्यास सम्पन्न कर चुका है उसी प्रकार देवी का षडङ्गन्यास करे। तदनन्तर अवगुण्ठन मुद्रा का वेधन करके अमृतीकरण करे। इसके पश्चात्—

'ॐ आं ह्रीं क्रों स्वाहा'—मन्त्र के द्वारा देवी की प्राणप्रतिष्ठा करे। तदनन्तर मूलमन्त्र का उच्चारण करे ॥ २५ ॥

'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ'—इत्यादि मूलेनाग्निप्रियान्तेन सतारेण जपेत् पुनः ॥ २६ ॥

तदनन्तर 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ' मन्त्र का उच्चारण करके तदनन्तर मूलमन्त्र के आगे प्रणव तथा अन्त में स्वाहा लगाकर पुनः उस मूलमन्त्र का जप करे ॥ २६ ॥

उपचारी मनुः प्रोक्तः षोडशैस्तं समर्चयेत्।
सर्वमन्त्रमयीं कृत्वा देवतायै निवेदयेत् ॥ २७ ॥

इस मन्त्र द्वारा षोडशोपचार को अभिमन्त्रित करे तथा उसे सर्वमन्त्रमय करके देवता को निवेदित करे और षोडशोपचार से देवी की अर्चना करे ॥२७॥

अभावाद् वज्रपुष्पस्य स्मरणात् सकलं प्रिये !।
इदानीं शृणु देवेशि ! उपचारांश्च षोडश ॥ २८ ॥

हे प्रिये ! यदि वज्रपुष्प का अभाव है, तब इसका स्मरण करने से भी पूजन हो जाता है। हे देवि ! अब यह श्रवण करो कि षोडशोपचार में क्या-क्या लगता है ॥ २८ ॥

पाद्यार्घ्याचमनस्नानवसनाभरणानि च।
गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्याचमनं प्रिये ! ॥ २९ ॥
ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारान् वरानने ! ॥ ३० ॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, स्तोत्र, तर्पण तथा नमस्कार ही षोडशोपचार है। हे प्रिये ! हे वरानने ! अर्चनाकाल में इन सब का प्रयोग करके देवीपूजन करे ॥ २९-३० ॥

पुष्पञ्च त्रिविधं देवि ! शृणुष्वावहितेऽनघे !।
पुष्पश्रेष्ठं रक्तकोकं वन्धूकं शतपत्रकम् ॥ ३१ ॥

हे देवि ! हे अनघे ! अब त्रिविध पुष्प का वर्णन सुनो । रक्तकोकनद, शतपत्र तथा वन्धूकपुष्प श्रेष्ठ पुष्प है ॥ ३१ ॥

अर्चयेन्नियतं देवी कालिकारूपिणी स्वयम् ।
वकमन्दारवज्राणि करवीराणि सुव्रते ! ॥ ३२ ॥

हे सुव्रते ! कालिकारूपिणी नीलसरस्वती का प्रतिदिन इन समस्त पुष्प, वक, मन्दार, वज्र और रक्तकरवीर पुष्प द्वारा पूजन करे ॥ ३२ ॥

मल्लिकाद्वितयं जातिक्षौमपुष्पं जयन्तिका ।
बिल्वपुष्पं कुरुवकं मणिपुष्पञ्च केशरम् ॥ ३३ ॥
वासन्तीद्वितयञ्चैव काशपुष्पं मरुवकम् ।
यूथी-शेफालिका-चूतपुष्पजातीयसम्भवैः ॥ ३४ ॥
सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेत् प्रिये ! ।
बिल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीदलवर्जितैः ॥ ३५ ॥
ओड्रपुष्पैर्विशेषेण बीजपुष्पेण मिश्रितम् ।
शुक्लं रक्तं पद्मपुष्पं भक्तियुक्तेन सुन्दरि ॥ ३६ ॥
न च दद्याच्च देवेशि ! कथं सिद्ध्यति भूतले ।
शेफालिका तु कल्हारं शरत्काले प्रशस्यते ॥ ३७ ॥

मल्लिका, जातीपुष्प, अतसीपुष्प, हरिद्रापुष्प, बिल्वपुष्प, कुरुवक, मणिपुष्प तथा वकुलपुष्प द्वारा पूजन करे ।

वासन्ती (नवमल्लिका), काशपुष्प, मरुवक, यूथी, शेफालिका, आम्रपुष्प, सुगन्धयुक्त पुष्प तथा सफेद और लाल रंग वाले मिश्रित पुष्प से पूजन करे । हे प्रिये ! इन पुष्पों के द्वारा देवी की अर्चना करे । बिल्व तथा मरुवकादि के द्वारा पूजन करे । तुलसी के पत्तों से कदापि पूजन न करे ।

हे सुन्दरी ! वज्रकुसुम मिश्रित रक्तजवा पूजार्थ विशेष प्रशस्त है । विशुद्ध रक्तकोकनद (रक्तवर्ण कमल) अतिशय प्रशस्त है । हे देवेशी ! भक्तिपूर्वक इन उत्कृष्ट पुष्पों द्वारा पूजन किये बिना इस पृथ्वी पर सिद्धि नहीं प्राप्त होती । शरत्काल में पूजा के लिए शेफालिका तथा श्वेतकमल विशेष रूप से उपयोगी हैं ॥ ३३-३७ ॥

अन्यत्र न स्पृशेद्देवि ! प्रायश्चित्ती च पूजनात् ।
श्रृणु देवि वरारोहे ! नैवेद्यं यन्मनोहरम् ॥ ३८ ॥

शरत्काल में बिना शेफालिका और श्वेतपद्म से पूजन करना उचित नहीं है; अन्य समय में इन पुष्पों का स्पर्श भी पूजार्थ न करे ! हे वरारोहे ! अब उत्तम मनोहर नैवेद्य बतलाता हूँ, सुनो ॥ ३८ ॥

दधि क्षीरं शुभं चान्नं पायसं शर्करान्वितम् ।
पायसं क्षौद्रमत्स्यञ्च नारिकेलसमोदकम् ॥ ३९ ॥
शशकं मेषमांसञ्च आर्द्रकं सहशर्करम् ।
रम्भाफलं लड्डूकञ्च भर्ज्जितान्नञ्च पिष्टकम् ॥ ४० ॥
शालमत्स्यञ्च पाठीनं शकुलं चिङ्गडं तथा ।
मद्गुरं चेलिषं दद्यान्मांसं माहिषमेव च ॥ ४१ ॥
पक्षिमांसं तथा डिम्बं नानाद्रव्यमनोहरम् ।
कृष्णच्छागं महामांसं गोधिकां हरिणं तथा ॥ ४२ ॥
जलजं मत्स्यमांसञ्च शल्कलीमांसमेव च ।
नानाव्यञ्जनदुग्धानि पिष्ठकानि मधूनि च ।
एवं क्रमेण देवेशि ! गन्धाद्यैरर्चयेत् शिवाम् ॥ ४३ ॥

दधि, दुग्ध, उत्कृष्ट अन्न, चीनी युक्त पायस, मधु, मांस, नारियल, नारिकेल जल, आर्द्रक, शर्करायुक्त शशक मांस, मेष मांस, कदलीफल, लड्डू, भुना अन्न, पिष्टक, विभिन्न मत्स्य-मांस, महिष का मांस, पक्षी का मांस, पक्षी का अण्डा, मनोहर खाद्य द्रव्य, कृष्णवर्ण छाग का मांस, नरमांस, गोधिकामांस, हरिणमांस, जलज मत्स्य का मांस, शल्कली का मांस तथा नाना प्रकार के व्यञ्जनों का देवी को नैवेद्य प्रदान करे। हे देवेशी ! गन्धादि द्वारा शिवा का अर्चन करे ॥ ३९-४३ ॥

ततश्च दर्शयेद्देवी मुद्रां त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
योनिश्च भूतिनी चैव बीजाख्या दैत्यधूमिनी ॥ ४४ ॥
लेलिहानेति सङ्गुप्ताः पञ्चमुद्राः प्रकीर्तिताः ।
योनिर्मायारमेन्दुः वधुः कूर्च्चं क्रमात् प्रिये ! ॥ ४५ ॥
बीजन्यासलक्षणानि क्रमेण कथयाम्यहम् ।
परिवृत्तकरौ स्पृष्टौ तर्ज्जन्याङ्गुष्ठयुग्मकम् ॥ ४६ ॥
मध्यमोर्द्धे कनिष्ठे तु तयोरङ्गुष्ठयुग्मकम् ।
एषा ब्रह्मस्वरूपा हि योनिमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ४७ ॥
अधोमुखीमिमां कृत्वा दर्शयद्बीजमुच्चरन् ।
अस्यास्तु मध्यमाङ्गुल्यौ निपात्य स्पृष्टतस्तयोः ॥ ४८ ॥
संस्थाप्याङ्गुष्ठके मुद्रां भूतिनी सा प्रकीर्तिता ।
एषा मुद्रा महामुद्रा तारायाः प्रीतिवर्द्धिनी ॥ ४९ ॥

हे देवी ! इसके पश्चात् त्रैलोक्यमंगलदायिनी योनिमुद्रा, भूतिनीमुद्रा, बीजमुद्रा, दैत्यधूमिनी मुद्रा और लेलिहाना मुद्रा का प्रदर्शन प्रशस्त है। मायाबीज (ह्रीं), रमाबीज (श्रीं), इन्दुबीज (द्रां), वधुबीज (स्त्रीं) तथा

कूर्च्चबीज (हूँ) द्वारा क्रमशः इन मुद्राओं का न्यास करे। इसे ब्रह्मस्वरूपा योनिमुद्रा कहते हैं। क्रमशः सभी मुद्राओं का उपदेश करता हूँ। बीज का उच्चारण करके योनिमुद्रा का अधोमुख प्रदर्शन करे। योनिमुद्रा बन्धन करके दोनों मध्यम अंगुलियों को वक्र करते हुए उसके अग्रभाग में अंगुष्ठद्वय को संयुक्त करे। इसे भूतिनी मुद्रा कहते हैं। यह तारादेवी की प्रीति को बढ़ाने वाली है ॥ ४४-४९ ॥

परिवृत्य करौ स्पृष्टौ अङ्गुष्ठतर्जनीद्वयम्।
अर्द्धचन्द्राकृतिश्चायं युगपत् कारयेत् बुधः ॥ ५० ॥
अधः कनिष्ठिकाङ्गुष्ठे च मध्येषु विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥ ५१ ॥

दाहिने हाथ को बाँयीं ओर और बाँयें हाथ को दाहिनी ओर स्थापन करके दोनों हथेलियों को परस्पर मिलाये। तदनन्तर दोनों अंगुष्ठों तथा तर्जनीद्वय को परस्पर संयुक्त करे जिससे अर्धचन्द्राकृति बने। उसके निम्न भाग में वामहस्त की मध्यमा द्वारा वामहस्त की कनिष्ठिका को और दक्षिणहस्त की मध्यमा द्वारा मध्य में कनिष्ठा को बद्ध करके सबसे नीचे दोनों अनामिकाओं को वक्र भाव से स्थापित करे। हे भद्रे ! यह वीरमुद्रा है, जो ज्ञानदायिनी है ॥ ५०-५१ ॥

परिवृत्य करस्तद्वत् कनिष्ठाङ्गुष्ठमध्यमे।
अनामिकायुगं चाधस्तर्जनीयुगलं तथा ॥ ५२ ॥
अन्योन्यं निबिडं बद्ध्वा अङ्गुष्ठानामिके ततः।
ताराप्रियेति मुद्रेयं कथिता दैत्यधूमिनी ॥ ५३ ॥

बाँयें हाथ को दाहिनी ओर और दाहिने हाथ को बाँयीं ओर रखे और हथेली के निचले भाग को परस्पर संयुक्त करके दोनों कनिष्ठा द्वारा दोनों मध्यमा का आकर्षण करे। अधो भाग में अनामिकाद्वय तथा तर्जनीद्वय को परस्पर दृढ़ता से बद्ध करे। इस अनामिकाद्वय को अंगुष्ठों के अग्रभाग से योजित करे। यह दैत्यधूमिनी मुद्रा है जो तारा देवी को प्रिय है ॥ ५२-५३ ॥

अस्यास्तु बन्धनान्मन्त्री बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्।
वक्त्रं विस्तारितं कृत्वाप्यधोजिह्वाश्च चालयेत् ॥ ५४ ॥

इस मुद्रा-बन्धन द्वारा साधक निश्चित रूप से बन्धन मुक्त हो जाता है। विस्तृतरूप से मुख को खोलकर जिह्वा को अन्दर चालित करे ॥ ५४ ॥

पार्श्वस्थमुष्टियुगला लेलिहानेति कीर्तिता।
पूर्ववत् पूजयेद्देवी मुक्तमार्गेण सुन्दरि ! ॥ ५५ ॥

जिह्वा को नीचे ले जाय और देह के पार्श्वद्वय में स्थापित करे। यह लेलिहान मुद्रा है। हे सुन्दरी ! इस प्रकार से मुद्रा यन्त्र-समूह का प्रदर्शन करते हुए पूर्ववत् देवी-पूजन करे ॥ ५५ ॥

ततः सन्तर्पयेद्देवीं तत्त्वमुद्रेति पार्वति ! ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम् ।
षडङ्गमर्च्चयेद्देव्या देहे वा केशरेषु च ॥ ५६ ॥

हे पार्वती ! इसके पश्चात् तत्त्वमुद्रा के द्वारा देवी-तर्पण करे। अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण तथा वायुकोण में देवी की देह में षडङ्गार्चन करके अङ्गदेवता-समूह का पूजन करे ॥ ५६ ॥

भक्तोऽस्मिन्नेव समये वर्णमालां विचिन्तयेत् ।
पीठस्थां वा यदा व्यक्तां गुरुशक्तिं प्रपूजयेत् ॥ ५७ ॥

इस समय ही (अङ्गपूजन में) वर्णमाला का चिन्तन करे और पीठ में व्यक्त गुरुशक्ति की पूजा करे ॥ ५७ ॥

ईश्वर उवाच—

मातर्देवि ! महामाये ! बन्धमोक्षप्रवर्तिनी ।
इदानीं कथयिष्यामि गुरुक्रममनुत्तमम् ॥ ५८ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे मातः ! हे देवी महामाया ! आप ही जीवों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण हैं। अब मैं अनुत्तम गुरुक्रम कहता हूँ ॥ ५८ ॥

गुरुक्रमन्तु बहुधा मन्त्रविस्तारगौरवात् ।
आत्मानमपि अज्ञात्वा कथं तत् कथयामि ते ॥ ५९ ॥
गुरुक्रममविज्ञाय नष्टमार्गो भविष्यति ॥ ६० ॥

मन्त्र-विस्तार की बहुलता के कारण गुरुक्रम भी अनेक हैं। अपनी आत्मा को न जानने पर गुरुक्रम कैसे कहा जा सकता है ? जो व्यक्ति गुरुक्रम ज्ञान के बिना साधना करता है, उसका समस्त प्रयास तथा मार्ग व्यर्थ है ॥ ५९-६० ॥

नष्टमार्गे मन्त्रविद्ये न तादृक् सिद्धिगोचरे ।
गुरूणां शिष्यभूतानां नास्ति चेत् सन्ततिः क्रमः ॥ ६१ ॥
तदा मन्त्रश्च विद्या च निष्फला नात्र संशयः ।
एकोनविंशपुरुषान् नवसप्तत्रयोऽपि वा ॥ ६२ ॥

नष्टमार्ग मन्त्र अथवा विद्या द्वारा स्वाभाविक फल नहीं मिलता। जहाँ गुरुगण तथा शिष्यत्व ग्रहण करने वाले में संगतिक्रम नहीं होता, वहाँ मन्त्र तथा विद्या निष्फला हो जाती है। गुरु होने पर ३, ७, ९ अथवा २१ अधःस्तन पुरुष-पर्यन्त गुरुक्रम की विद्यमानता जाने ॥ ६१-६२ ॥

अज्ञात्वा गुरुवंशञ्च शिष्यश्च नष्टसन्ततिः ।
स्ववंशादधिकं ज्ञेयं गुरुवंशं शुभावहम् ॥ ६३ ॥
तस्माद् यत्नेन देवेशि ! सङ्क्षेपात् शृणु तान्गुरून् ।
अथ तारागुरून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान् ॥ ६४ ॥

गुरुवंश के ज्ञान के बिना शिष्य की सन्तति नष्ट हो जाती है। शुभावह गुरुवंश पर अपने वंश से भी अधिक श्रद्धा करे।

अतः हे देवेशी ! संक्षेप में गुरुसमूह का विवरण सुनो। तदनन्तर दृष्टादृष्ट फलप्रद तारामन्त्र के गुरुओं को बतलाता हूँ ॥ ६३-६४ ॥

ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः ।
दिव्यौघान्सिद्धिदान्वत्स ! सिद्धौघान्शृणुष्वाग्रतः ॥ ६५ ॥
वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः ।
हरिनाथमानवौघान् शृणु वक्ष्यामि सद्गुरून् ॥ ६६ ॥
भवावती भानुमती जयाविद्या महोदरी ।
सुखानन्दः परानन्दः पारिजातः कुलेश्वरः ॥ ६७ ॥
विरूपाक्षदेवहुती कथितं तारिणीकुलम् ।
जनकादधिको ज्ञेयो मन्त्रदश्च महेश्वरि ! ॥ ६८ ॥

हे वत्स ! सर्वप्रथम ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ, वृषध्वज, दिव्यसिद्धि देनेवाले सिद्ध गणों का नाम सुनो।

वशिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर, हरिनाथ—इन ९ गुरुगण का वृत्तान्त कहता हूँ। श्रवण करो।

भवावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, सुखानन्द, परमानन्द, पारिजात, कुलेश्वर, विरूपाक्ष तथा देवहूति—ये सभी तारिणीमन्त्र के गुरुकुल हैं। हे महेश्वरी ! मन्त्रदाता गुरु को पिता से भी अधिक पूज्य मानना ॥ ६५-६८ ॥

सिद्धौघान् मानवौघांश्च दिव्यौघान् परमेश्वरी ।
अक्षोभ्यः सर्वमूर्धन्यस्त्रिमूर्त्तिर्नागरूपधृक् ॥ ६९ ॥

हे महेश्वरी ! सिद्धौघ, मानवौघ तथा दिव्यौघ में तीन नागधारी अक्षोभ्य (शिव) सर्वश्रेष्ठ गुरु हैं ॥ ६९ ॥

आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः सर्वसिद्धिदाः ।
स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्चेद् अम्बान्ताः परिकीर्तिताः ॥ ७० ॥

आनन्दनाथ शब्द के बाद गुरवः शब्द लगाने पर वह सर्वसिद्धिप्रदायक है। स्त्री-गुरु होने पर उनके नाम के अन्त में अम्बा लगाना विहित है ॥ ७० ॥

ततो देवगुरून् वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने ! ।
येषु येषु च मन्त्रेषु ये ये ऋषिगणाः स्मृताः ॥ ७१ ॥
एते ते गुरुनामानि गुरुं त्रितयमर्च्चयेत् ।
आदौ सर्वत्र देवेशि ! मन्त्रदः परमो गुरुः ॥ ७२ ॥
परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठिगुरुस्त्वहम् ।
गुरुं परगुरुञ्चैव कथितोऽयं गुरुक्रमः ॥ ७३ ॥

हे कमलानने ! अब देवगुरुओं का प्रकरण कहता हूँ। सुनो। जिन-जिन मन्त्रों के जो ऋषि होते हैं, वे ही उन मन्त्रों के गुरु हैं। गुरु की तीन बार अर्चना करे। हे देवेशी ! सब स्थान पर सर्वप्रथम मन्त्रदाता गुरु की परमगुरु रूप में अर्चना करे। तुम परापर गुरु हो और मैं परमेष्ठि गुरु हूँ। इन तीनों गुरु का अर्चन करे। यही गुरुक्रम है ॥ ७१-७३ ॥

वामावर्तक्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवताः ।
वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हूँ फट् स्वाहेति मन्त्रितः ॥ ७४ ॥
एतन्मन्त्रे नाममात्रं ! भिन्नञ्चैव न संशयः ।
अनेन मनूना देवि ! परिवारान् समर्च्चयेत् ॥ ७५ ॥

वामावर्त्त क्रम से अङ्गदेवता का पूजन करे। 'वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूँ फट् स्वाहा' मन्त्र से वज्रपुष्प को अभिमन्त्रित करके अङ्गदेवता का पूजन करे।

इस मन्त्र में विभिन्न अङ्गदेवताओं का नाम पृथक्-पृथक् जोड़ कर प्रत्येक अङ्गदेवों का पृथक्तः पूजन करना चाहिए। हे देवी ! इस मन्त्र द्वारा देवी के परिवार-वर्ग का पूजन भी करे ॥ ७४-७५ ॥

अक्षोभ्यवज्रपुष्पाद्यैस्तारिणीमूर्ध्नि पूजयेत् ।
ततः पूर्वदले देवी आरभ्य अङ्गपूजनम् ॥ ७६ ॥

अक्षोभ्य तथा तारिणी की वज्रपुष्पादि के द्वारा शीर्षदेश में पूजा करे। हे देवी ! तदनन्तर पूर्वदलों में अङ्गदेवताओं का पूजन करे ॥ ७६ ॥

पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीति कीर्तयेत् प्रिये ! ।
तद्दक्षिणं दक्षिणं स्यादुत्तरं चोत्तरं मतम् ॥ ७७ ॥
पृष्ठन्तु पश्चिमं ज्ञेयं सर्वत्रैव प्रपूजयेत् ॥ ७८ ॥

पूज्य तथा पूजक के मध्य के दिक् को पूर्वदिक् जाने। उनके दक्षिणदिक् को पश्चिम तथा उनके उत्तरदिक् को उत्तर मानें।

साधक का पृष्ठदेश ही पश्चिम है। सर्वत्र इसी प्रकार मानकर पूजन करना चाहिए ॥ ७७-७८ ॥

यथा वैरोचनं शङ्खं पाण्डवं पद्मनाभकम् ।
असिताङ्गं यजेन्मन्त्री चतुर्दिक्षु चतुर्दले ॥

मासकालानकञ्चैव पाण्डवं तारकं ततः ।
वह्न्यादिषु चतुष्कोणे स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।। ७९ ।।

मन्त्रसाधक चारों दिशाओं में चतुर्दल में यथाक्रमेण वैरोचन, शंख, पाण्डव, पद्मनाभ तथा असिताङ्ग का पूजन करे। तत्पश्चात् अग्नि, नैर्ऋत, वायु तथा ईशान कोण में मन्त्रों द्वारा मास, कालानक, पाण्डव तथा तारक का पूजन करे ।। ७९ ।।

एवं ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ! ।
सर्वे भिन्नाञ्जनप्रख्याः खड्गकुण्डलधारिणी ।
चतुर्भुजा मदोन्मत्ता घूर्णिता लोहितेक्षणाः ।। ८० ।।

हे कमलानने ! इनका ध्यान कहता हूँ। श्रवण करो। ये सभी भिन्नाञ्जन-समप्रभ हैं और सभी खड्ग, दण्ड, वर तथा अभय मुद्रा धारण करते हैं। सभी चतुर्भुजा, मदोन्मत्त, घूर्णित, लोहितलोचन हैं ।। ८० ।।

अकुलालिङ्गनानन्दघूर्णिताशेषतामसाः ।
प्रागादिद्वारचतुष्केषु क्रमेण परमेश्वरि ! ।। ८१ ।।

ये सभी अपने कुलपति का आलिंगन करने के कारण आनन्द से उन्मत्त हैं। हे परमेश्वरी ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण द्वार में यथाक्रम से इनका पूजन करे ।। ८१ ।।

स्वस्वबीजं पुरो दत्त्वा पद्मान्तकयमान्तकौ ।
विघ्नान्तकं समभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम् ।। ८२ ।।
सर्वे बन्धूकपुष्पाभाः खड्गशक्तिलसत्कराः ।
नागसूत्रबद्धजटाः सदा घूर्णितलोचनाः ।। ८३ ।।

आदि में प्रत्येक के बीज स्थापित करके पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक तथा नरकान्तक का यथाक्रमेण पूजन करे। ये सभी बन्धूक पुष्प के समान दीप्ति वाले, खड्ग-शक्तिधारी, नागसूत्रबद्ध जटायुक्त तथा सदा घूर्णित नेत्रों वाले हैं ।। ८२-८३ ।।

बलिविधिः ततो वक्ष्ये शृणु देवि ! हरप्रिये ! ।
स्ववामभागतश्चक्रं शक्तिवृत्तिञ्च संलिखेत् ।। ८४ ।।

हे देवी ! हरप्रिये ! तत्पश्चात् बलि-विधान कहता हूँ, श्रवण करो। मन्त्रज्ञ साधक अपने वामभाग में शक्तिवृत्ता चक्र अंकित करे ।। ८४ ।।

तद्बाह्ये चतुरस्त्रञ्च विलिखेत् साधकोत्तमः ।
मायामाधवशक्तिञ्च ङेन्तां तत्रैव पूजयेत् ।। ८५ ।।
देवप्रियबलिद्रव्यैर्भविते‍ऽवश्यभाजने ।
तत्राधारं स्पृशेद्वामे पाणिना तत्त्वमुद्रया ।। ८६ ।।

इस वृत्त के बहिर्भाग में साधक को चाहिए कि चतुष्कोण-चतुर्बाहु क्षेत्र अंकित करके उसमें माया-माधव तथा शक्ति का चतुर्थी विभक्त्यन्त पद में उच्चारण करके वामपार्श्व में रक्षित देवप्रिय बलिद्रव्यपूर्ण आधार को तत्त्वमुद्रा में हाथों द्वारा स्पर्श करते हुए पूजा करे ॥ ८५-८६ ॥

दत्त्वा च बलिमन्त्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाञ्च ततः परम् ॥ ८७ ॥
एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ।
यक्षाधिपदमाभाष्य पतये पदतो मया ॥ ८८ ॥
उपनीतं बलिञ्चोक्त्वा बलिं गृह्लेति च द्विधा ।
गृह्लार्पय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं ततः ॥ ८९ ॥
शान्तिं कुरु पदद्वन्द्वं परविद्यामनन्तरम् ।
द्विधाकृष्टेति च ब्रूयात् क्रटच्छिन्धीति च द्विधा ॥ ९० ॥
सर्वं जगद् वशपदमानयेति पदं ततः ।
मायया स्वाहया युक्तो मन्त्रो बलिविधिः स्मृतः ॥ ९१ ॥
परसैन्यग्रहारिष्टरोगकृत्यानिवारणः ।
जपं लक्षञ्च कथितं शृणुष्व नगनन्दिनि ! ॥ ९२ ॥

मन्त्र द्वारा बलि देने से सिद्धि मिलती है। 'ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मया उपनीतं बलिं गृह्ल गृह्ल गृह्लार्पय गृह्लार्पय मम शान्तिं कुरु कुरु परविद्यां आकृष्ट आकृष्ट क्रट क्रट छिन्धि छिन्धि सर्वं जगद् वशमानय ह्रीं स्वाहा'—यह बलिप्रदान मन्त्र है। यह बलि परसैन्य, ग्रहारिष्ट, रोग तथा कृत्यामय निवारक है। हे नगनन्दिनी ! अब जप का लक्षण कहता हूँ। श्रवण करो ॥ ८७-९२ ॥

सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं शतं तद्धीनसङ्ख्यया ।
विंशत्या वा जपेन्मन्त्रं ततो न्यूनं न कारयेत् ॥ ९३ ॥

सहस्रसंख्यक जप करे अथवा उससे कम १०० या २० बार जप करे। जपसंख्या इससे कम कदापि न हो ॥ ९३ ॥

स्थानस्था वरदा मन्त्राः ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः ।
स्थानध्यानपरिभ्रष्टाः सुसिद्धा नैव पार्वति ! ॥ ९४ ॥
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि ध्यानात् सर्वार्थसाधनम् ।
मन्त्रध्यानान्महेशानि शुद्ध्यते ब्रह्महा पुमान् ॥ ९५ ॥

हे पार्वती ! मन्त्र स्थानस्थ तथा ध्यानस्थ होने पर ही फलप्रद होते हैं। समुचित स्थान-ध्यान परिभ्रष्ट मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होते ॥ ९४-९५ ॥

इसके अनन्तर अब यह उपदेश करता हूँ कि स्थानस्थ तथा ध्यानस्थ मन्त्र किसे कहते हैं। मन्त्र-ध्यान द्वारा मन्त्रगण सर्वसिद्धि प्रदान करते हैं। हे महेशानी ! मन्त्र-ध्यान के प्रभाव से ब्रह्महत्याजनित पाप भी दूरीभूत हो जाता है ॥ ९४-९५ ॥

मूलचक्रे च हृल्लेखां तडित्कोटिसमप्रभाम्।
स्वाधिष्ठाने पीतवर्णां द्वितीयन्तु विभावयेत् ॥ ९६ ॥

मूलाधार में तडित्कोटि के समप्रभ ह्रीं बीज एवं स्वाधिष्ठान में पीतवर्ण ह्रीं बीज का चिन्तन करना चाहिए ॥ ९६ ॥

नाभौ जीमूतसङ्काशं कूर्चबीजं महाप्रभम्।
अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम् ॥ ९७ ॥

'नाभि में मेघ के समान महाप्रभा युक्त हूँ' बीज का ध्यान करे। हृदय में कालाग्नि सदृश प्रभायुक्त फट् बीज का ध्यान करे ॥ ९७ ॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वां विद्यां विभावयेत्।
विना ललनया देवि ! विना रुधिरवेदनैः ॥ ९८ ॥
विना दीपकमन्त्रेण अग्रशून्यं न चार्चयेत्।
जिह्वायां न्यासनाद्देवि ! मूर्खोऽपि सुकविर्भवेत् ॥ ९९ ॥

तदनन्तर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त ॐ बीज मन्त्र का चिन्तन करना चाहिए। हे देवी ! ललना (कुलयुवती), रुधिर-निवेदन तथा दीपक-मन्त्र के बिना कदापि भगवती नीलसरस्वती की अर्चना करना उचित नहीं है। हे देवी ! इस मन्त्र का जिह्वा से न्यास करने से मूर्ख भी सुकवि हो जाता है ॥ ९८-९९ ॥

[मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त प्राण को ऊर्ध्व ले जाते हुए क्रमशः प्रत्येक चक्र में ॐ का चिन्तन करना चाहिए। अन्तःसाधना में ललना का तात्पर्य है—ललनाचक्र। इसकी स्थिति आज्ञाचक्र के ऊर्ध्व में है। कतिपय सिद्धजनों के अनुसार—ललना अर्थात् सुषुम्ना। बाह्य साधना में ललना अर्थात् कुलयुवती (शक्ति)। इसी प्रकार अन्तःसाधना में रुधिर-निवेदन का तात्पर्य है—लौहित्य-विमर्श। इस लौहित्यविमर्श को तन्त्रराज में 'लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना' रूप में कहा गया है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार 'अरुणाभां विचिन्तयेत्' अर्थात् अरुणवर्ण की आभा से मण्डित भगवती का चिन्तन। यही है रुधिरनिवेदन। बाह्य पूजा में बलिपशु का एक बिन्दुमात्र रक्त अर्पित करना चाहिए। जिह्वा से न्यास अर्थात् आन्तर् जप।]

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवे ॥ १०० ॥

जप-सम्पत्ति प्राप्ति के लिए बहिर्याग से मनःसंहरण, शौच, मौन, मन्त्र-चिन्तन तथा अव्यग्र और अवच्छेद रूप से जप करे ॥ १०० ॥

जपं स्यादक्षरावृत्तिर्वाचिकोपांशुमानसैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः ॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठं प्रचालयेत् ।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुकजपः स्मृतः ॥ १०१ ॥

अक्षर की आवृत्ति करना जप है । जप वाचिक, उपांशु तथा मानस रूप से तीन प्रकार से किया जाता है । वाक्य द्वारा मन्त्रोच्चारण वाचिक जप है । धीरे-धीरे मन्त्रोच्चारण करना जिसमें ओष्ठ धीरे-धीरे हिलता है, वह उपांशु जप है ॥ १०१ ॥

धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ।
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ॥ १०२ ॥

मन्त्राक्षर समूह, वर्णस्वर तथा व्यञ्जनात्मक पद के अर्थग्रहण के लिए मन ही मन उच्चारण करना मानस जप है ॥ १०२ ॥

उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ।
जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥ १०३ ॥

शब्दप्रकाशक वाचिक जप की तुलना में उपांशु जप में दश गुना गुण है । जिह्वा जप अर्थात् सूक्ष्म उपांशु जप में वाचिक जप की अपेक्षा सौ गुना गुण है, और मानस जप में वाचिक जप की तुलना से हजार गुना गुण है ॥ १०३ ॥

उपांशुः पुष्टिकामानां मानसो बुद्धिमिच्छताम् ।
वाचिको मारणे शस्तस्त्रिविधो जप ईरितः ॥ १०४ ॥

पुष्टि के लिए उपांशु, बुद्धि के लिए मानस तथा मारण के लिए वाचिक जप प्रशस्त है ॥ १०४ ॥

प्राणायामं त्रिधा कृत्वा कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जपेत् ।
कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् ॥ १०५ ॥

तदनन्तर तीन बार प्राणायाम द्वारा मस्तक में कुल्लुका जप करना चाहिए । तब हृदय में सेतु चिन्ता (जप) करे ॥ १०५ ॥

महासेतुं विशुद्धाख्ये निर्वाणं मणिपूरके ।
मणिपूर्वे तु निर्वाणं श्रृणुष्व कमलानने ! ॥ १०६ ॥

तत्पश्चात् विशुद्धचक्र में महासेतु और मणिपूर में निर्वाण जप करना चाहिए । अब मणिपूर में जप-विधि कहता हूँ । हे कमलानने ! सुनो ॥ १०६ ॥

श्रीदेव्युवाच—

कुल्लुका कीदृशी नाथ ! सेतुर्वा कीदृशो वद ।
महासेतुश्च देवेश ! निर्वाणस्त्वथ कीदृशः ।। १०७ ।।

देवी कहती हैं—हे नाथ ! कुल्लुका किसे कहते हैं, सेतु क्या है, महासेतु तथा निर्वाण कैसा है, यह बतलाने का कष्ट करें ।। १०७ ।।

श्रीभैरव उवाच—

तारायाः कुल्लुका देवि ! महानीलसरस्वती ।
अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां जपते योऽधमः प्रिये ! ।। १०८ ।।
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रजपेन्मूर्ध्नि कुल्लुकाम् ।। १०९ ।।

भैरव कहते हैं—हे देवी ! तारा का कुल्लुका ही महानीलसरस्वती का कुल्लुका है । जो अधम इसे बिना जाने मन्त्रजप करता है, वह व्यक्ति अतिशीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है । उसे मन्त्र-सिद्धि नहीं मिलती । अतएव सभी प्रयत्न से मस्तक में कुल्लुका जप करे ।। १०८-१०९ ।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे ! ।
यस्याज्ञानेन विफलं जपहोमादिकं भवेत् ।। ११० ।।
विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च ।
वैश्यानाञ्च फडन्तोऽयं माया शूद्रस्य कथ्यते ।। १११ ।।

हे प्रियंवदे ! अब सेतु को सुनो । इसके बिना जप, होम आदि निष्फल हो जाते हैं ।

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का सेतु है प्रणव, वैश्य का सेतु है फट् तथा शूद्र का सेतु हैं ह्रीं ।। ११०-१११ ।।

अजप्त्वा हृदि देवेशि ! विफलञ्च जपादिकम् ।
महासेतुञ्च देवेशि ! तारायाः कूर्चबीजकम् ।। ११२ ।।

हे देवेशी ! हृदय में सेतुजप न करने पर जपादि विफल हो जाते हैं । तारा का कूर्चबीज 'हूँ' ही महासेतु है ।। ११२ ।।

अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणुष्वावहितेऽनघे ! ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मातृकार्णान् समुच्चरेत् ।। ११३ ।।

हे अनघे ! अब निर्वाण के सम्बन्ध में कहता हूँ । उसे अब समाहित चित्त से सुनो । प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करके तदनन्तर मातृकावर्ण समूह का उच्चारण करना चाहिए ।। ११३ ।।

ततश्च परमेशानि मातृकार्णान् समुद्धरेत् ।
पुनः प्रणवमुच्चार्य मूलमेभिः पुरीकृतम् ।। ११४ ।।

अब प्रणव का उच्चारण करके मूलमन्त्र द्वारा उसे पुटित करके मणिपूर में जप करना चाहिए ।। ११४ ।।

एवं निर्वाणमीशानि यो न जानाति पामरः ।
कल्पकोटिशतेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ।। ११५ ।।

हे सुन्दरी ! मूलमन्त्र के आदि-अन्त में प्रणव लगाये । इससे निर्वाण मिलता है । हे ईशानी ! जो पामर इसे नहीं जानते, उन्हें करोड़ों कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती ।। ११५ ।।

भक्षणे दूषिता जिह्वा मिथ्याया भाषणेन वै ।
कलहैर्दूषिता जिह्वा नानादोषेण दूषिता ।। ११६ ।।
तत् कथं पामरो लोको जिह्वया प्रजपेन्मनुम् ।
संशोधनमनाचर्या न जपेत् पामरः क्वचित् ।। ११७ ।।

।। इति श्रीनीलतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे नीलसरस्वतीपूजा-जपादि-विवरणं नाम पञ्चमः पटलः ।।

भक्षण तथा मिथ्या दोष से जिह्वा दूषित हो जाती है । कलह के द्वारा भी यह दूषित होती है । अन्य नाना दोषों के द्वारा भी यह दूषित होती है । अतः पामररूप जिह्वा से कैसे जप करेंगे ? अतएव इसे शोधन से शुद्ध किये बिना कदापि मन्त्र-जप नहीं करना चाहिए ।। ११६-११७ ।।

।। पञ्चम पटल समाप्त ।।

षष्ठः पटलः

(मुखशोधनं जपसमर्पणञ्च)

श्रीभैरव उवाच—

मुखस्य शोधनं देवि ! शृणुष्वावहितो मम ।
आदौ मायां ततः कूर्च्चं पुनर्मायाञ्च सुन्दरि ! ।। १ ।।
मुखं संशोधयेद्देवि ! यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम् ।
ऋषिश्छन्दो देवता च बीजः शक्तिश्च कीलकम् ।। २ ।।
कारयेद् यत्नतो देवी तत इष्टादिकं जपेत् ।
ततस्तु शक्तितो देवी जपं कुर्यात् समाहितः ।। ३ ।।

(मुखशोधन तथा जप-समर्पण)

हे देवी ! अब मुखशोधन कहता हूँ। श्रवण करो। हे सुन्दरी ! यदि उत्तम सिद्धि की इच्छा है तो उस स्थिति में 'ह्लीं ह्लूं ह्लीं' मन्त्र के द्वारा मुखशोधन करना चाहिए। तत्पश्चात् यत्नपूर्वक ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा कीलक निर्धारण करे और इष्टमन्त्र का जप करे। समाहित चित्त से यथाशक्ति जप करना चाहिए ।। १-३ ।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य स्वाहेति पदमुच्चरेत् ।
मन्त्रेणानेन देवेशि ! वामधः पाणिना ततः ।। ४ ।।
तेजोमयं जपं देवीं समर्प्य भक्तियोगतः ।
प्राणायामं पुनः कृत्वा तर्पणञ्च पुनः प्रिये ! ।। ५ ।।

हे देवी ! मन्त्र के पूर्व में प्रणव तथा अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिए। देवी के वामहस्त में भक्ति सहित तेजोमय जप का समर्पण करे। हे प्रिये ! अब प्राणायाम तथा तर्पण भी करे ।। ४-५ ।।

बलिपूजादिकं देवि ! निशायां क्रियते तदा ।
तत्तदक्षयतां याति तारादेव्याः प्रसादतः ।। ६ ।।

हे देवी ! तत्पश्चात् निशाकाल में बलि तथा पूजा करे। तारादेवी की कृपा से निशाकालीन पूजा तथा बलि से अक्षय फल प्राप्त होता है ।। ६ ।।

अर्द्धरात्रात् परं यस्तु मुहूर्त्तद्वयमेव च ।
सा महारात्रिरुद्दिष्टो तत्र दत्तं महाफलम् ।। ७ ।।
रात्रौ पर्यटनञ्चैव रात्रौ च शक्तिपूजनम् ।
न करोति कथं देवि ! साधकः कौलिको भवेत् ।। ८ ।।

।। इति श्रीनीलतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे मुखशोधनं जपसमर्पणञ्च नाम षष्ठः पटलः ।।

अर्धरात्रि के अवसान पर दो मुहूर्त्त तक महारात्रि रहती है। इसमें प्रदत्त बलि आदि का फल अक्षय होता है।

हे देवी ! रात्रिकाल में यदि साधक पर्यटन न करे और रात्रिकाल में शक्तिपूजा न करे, तब वह कौलिक ही नहीं है ।। ७-८ ।।

।। षष्ठ पटल समाप्त ।।

सप्तमः पटलः

(काम्यबलिः नीलसरस्वतीस्तोत्रञ्च)

श्रीभैरव उवाच—

अथ काम्यबलिं देव्याः कथयामि शृणु प्रिये !।
छागस्तु वामतो दद्यान्महिषं पुरतः पुनः ॥ १ ॥
दक्षिणे वामतो दद्यादग्रतो देहशोणितम् ।
नाभेरधस्ताद् रुधिरं पृष्ठभागस्य च प्रिये ! ॥ २ ॥
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचिच्च साधकः ।
नौष्ठस्य चिबुकस्यापि नेत्राणाञ्च तथैव च ॥ ३ ॥

(काम्यबलि तथा नीलसरस्वतीस्तोत्र)

श्रीभैरव कहते हैं—हे प्रिये ! अब काम्यबलि का उपदेश देता हूँ। श्रवण करो। देवी के वामभाग में छाग को और दाहिनी ओर महिष को स्थापित करे।

देवी के दक्षिण, वाम तथा सामने बलि का रक्त प्रदान करे। हे प्रिये ! बलिप्रदत्त प्राणी की नाभी के निचले भाग का, पृष्ठ भाग का, बलि के गात्र से निःसृत रुधिर को देवी को न चढ़ाये। अपने शरीर के ओष्ठ, चिबुक तथा नेत्रों से निकले शोणित को भी देवी पर नहीं चढ़ाना चाहिए ॥ १-३ ॥

कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं हृद्भागस्य च यत्नतः ।
पार्श्वयोश्चापि देवेशि ! तारायै च निवेदयेत् ॥ ४ ॥

हे देवेशी ! बलिप्रदत्त जीव के कण्ठ के नीचे से लेकर नाभि से ऊर्ध्व स्थान तक का रक्त और हृदय तथा पार्श्व का रक्त तारा को प्रदान करे ॥ ४ ॥

न च रोगादिदिग्धाङ्गोन्नान्यघातश्च भैरवि !।
सौवर्णे राजते पात्रे कांस्याधारे च सुन्दरि ! ॥ ५ ॥
निधाय च महादेव्यै दद्यात्तु मन्त्रपूर्वकम् ।
सफलैस्तोयसंयुक्तैः शर्करामधुसैन्धवैः ॥ ६ ॥
अक्षोभ्य रुधिरं दद्यात् कामबीजेन सुन्दरि !।
पद्मपुष्पस्य पत्रन्तु यावद् गृह्णाति शोणितम् ॥ ७ ॥
तत्प्रमाणं चतुर्भागं रक्तं दद्यात्तु साधकः ।
न कदाचित्तु देवेशि ! अङ्गच्छेदं तथा चरेत् ॥ ८ ॥

हे भैरवी ! रोगादि से पीड़ित अथवा अङ्गवैकल्य से युक्त अथवा दूसरे के द्वारा आहत प्राणी की बलि देवी को देना उचित नहीं है। हे सुन्दरी ! सुवर्ण,

चाँदी अथवा कांस्य पात्र में बलि का रक्त रखकर मन्त्रयोग द्वारा फल, जल, शर्करा, मधु तथा सैन्धव लवण के साथ देवी को प्रदान करे।

हे सुन्दरी ! 'क्लीं' बीज मन्त्र द्वारा देवी को रुधिर प्रदान करे। देवी को उतना ही रक्त प्रदान करे जितना पद्मपुष्प के एक दल पर आता है अथवा उसका भी चतुर्थांश रक्त देवी को प्रदान करना चाहिए। हे देवेशी ! प्राणी को जीवित रखते हुए उसके अंग-विशेष का भेदन कर उसका रक्त निकाल कर कभी भी देवी को प्रदान न करे। बलिपशु का पूर्णरूपेण हनन करके तभी उसका रक्त देवी को अर्पण करना चाहिए ॥ ५-८ ॥

नरस्य तृप्तिमाप्नोति स्वदेहरुधिरेण तु।
वर्षशतसहस्राणि तुष्टा भवति चण्डिका ॥ ९ ॥

चण्डिका देवी नर (साधक) के अपने शरीर के रुधिर से हजारों वर्षों तक प्रसन्न रहती हैं ॥ ९ ॥

स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा महाराजत्वमाप्नुयात्।
यत् स्वहृदयसञ्जातं मांसमाषप्रमाणकम् ॥ १० ॥
तिलमुद्गप्रमाणं वा देव्यै दद्यात्तु साधकः।
षण्मासाभ्यन्तरे तद्वत् काममिष्टमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

जो साधक अपने अङ्ग का रक्त देवी को अर्पित करता है, वह महाराजत्व प्राप्त करता है। जो साधक देवी को अपने हृदय का दो तोला मांस निवेदित करता है, एक तिल अथवा मूँग के बराबर भी वहाँ का मांस देवी को अर्पित करता है, वह छः मास में ही अभीप्सित फल प्राप्त करता है ॥१०–११॥

(तारिणीस्तवः)

अथोच्यते महादेवि ! तारिण्यास्तवमुत्तमम्।
ॐ घोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि ॥ १२ ॥
भक्तेभ्यो वरदे देवि ! त्राहि मा शरणागतम्।
सुरासुरार्चिते देवि ! सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ १३ ॥
जाड्यपापहरे देवि ! त्राहि मां शरणागतम्।
जटाजूटसमायुक्ते ललज्जिह्वे भयङ्करि ॥ १४ ॥
द्रुतसिद्धिकरे देवि ! त्राहि मां शरणागतम्।
सौम्यरूपे क्रोधरूपे चण्डरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥

(तारिणीस्तव)

हे महादेवी ! अब मैं उत्तम तारिणीस्तव कहता हूँ। ॐ हे देवी ! हे घोररूपे ! महारावे ! सर्वशत्रुभयंकरी ! भक्त को वर दो और शरण में ले लो।

हमारी रक्षा करो। हे देवी ! आप सुर-असुरों द्वारा अर्चित हैं। सिद्ध-गन्धर्वगण से सेवित हैं। आप जड़ता से उद्‌भूत पापों का हरण कर लेती हैं। हम आपकी शरण में हैं। हमारी रक्षा करो। हे देवि ! जटाजूटधारिणी, ललज्जिह्वा, भयंकरी तथा शीघ्र सिद्धिप्रदायिनी, हम आपके शरणागत हैं। हमारी रक्षा करो। हे देवी ! आप सौम्यरूपा, क्रोधरूपा, चण्डरूपा हैं, आपको नमस्कार ॥

सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्।
जडानां जडतां हंसि भक्तानां भक्तवत्सले ॥ १६ ॥
मूढतां हर मे देवि ! त्राहि मां शरणागतम्।
हूँ हुङ्कारमये देवि ! बलिहोमप्रिये नमः ॥ १७ ॥

सृष्टिरूपा को नमस्कार है। आप हम शरणागतों की रक्षा करें। आप जड़ता तथा अज्ञान-नाशिनी हैं। आप भक्तों के प्रति माता के सदृश प्यार करने वाली हैं।

हे देवी ! आप हमारी मूढ़ता का अपहरण करें। शरणागत की रक्षा करें। हूँ बीजरूपा, हुँकारमयी, बलिहोमप्रिया देवी को नमस्कार है ॥ १६-१७ ॥

उग्रतारे ! नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्।
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे ॥ १८ ॥
मूकत्वं हर मे देवि ! त्राहि मां शरणागतम्।
इन्द्रादिदिविषद्‌वृन्दवन्दिते करुणामयि।
तारे ! ताराधिनाथास्ये ! त्राहि मां शरणागतम् ॥ १९ ॥

हे उग्रतारे ! आप को नमस्कार है। आप शरणागत की रक्षा करें। हमें बुद्धि, यश तथा कवित्व प्रदान करें। हे देवी ! आप हमारे मूकत्व का हरण करें। शरणागत की रक्षा करें। हे करुणामयी तारा ! आप स्वर्ग के इन्द्रादि देवताओं की वन्दिता तथा करुणामयी हैं। हे तारे ! ताराधिनाथ (चन्द्रमा) के समान मुखवाली ! मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ १८–१९ ॥

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः।
षण्मासे सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २० ॥

जो व्यक्ति अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथि के दिन इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह व्यक्ति छः मास में सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस पर विचार करना व्यर्थ है ॥ २० ॥

मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ॥ २१ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकम्।
इदं स्तोत्रं पठेद् यस्तु सततं भक्तितत्परः ॥ २२ ॥

तस्य शत्रुः क्षयं याति महाप्रज्ञा च जायते ।
पीडायां वापि सङ्ग्रामे जातिवादे तथा भये ॥ २३ ॥
पीठे वा यदि वा ग्रामे दाने जप्ये तथाऽऽमये ।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः ॥ २४ ॥

जो व्यक्ति सतत भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मोक्षार्थी होने पर मोक्ष, धनार्थी होने पर धन, विद्यार्थी होने पर तर्क-व्याकरणादि विद्या प्राप्त कर लेता है। उसके शत्रुओं का नाश हो जाता है। वह महाप्रज्ञा का अधिकारी हो जाता है।

जो व्यक्ति पीड़ा, संग्राम, जातिगत विवाद अथवा भय होने पर पीठ-स्थान, ग्राम दान तथा जप काल में अथवा रोगी अवस्था में इस स्तोत्र का जप करता है, वह निश्चय ही मंगल को प्राप्त करता है ॥ २१–२४ ॥

स्तवेनानेन देवेशि ! प्रणमेद् भक्तिभावतः ।
योनिमुद्रां दर्शयित्वा वरप्रार्थनमेव च ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे काम्यबलिः तारिणीस्तवश्च नाम सप्तमः पटलः ॥

हे देवेशी ! इसका पाठ करने के पश्चात् भक्तिपूर्वक तारादेवी को प्रणाम करे। तदनन्तर योनिमुद्रा प्रदर्शन करने के उपरान्त वर हेतु प्रार्थना करे ॥ २५ ॥

॥ सप्तम पटल समाप्त ॥

अष्टमः पटलः

(आत्मसमर्पणादिकम्)

भैरव उवाच—

आत्मसमर्पणं देवि ! शृणुष्व वरवर्णिनि ! ।
इतः पूर्वमिति प्रोच्य प्राणबुद्धीति चोच्चरेत् ॥ १ ॥
धर्माधिपप्रदत्तं तदोङ्कारं पदमुच्चरेत् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याद्यावस्थाष्विति वदेत्ततः ॥ २ ॥
ततश्च मनसा वाचा कर्मणेति समुच्चरेत् ।
हस्ताभ्यामथ पद्भ्याञ्च उदरेणेति चोच्चरेत् ॥ ३ ॥

शिश्ना यत्कृतमित्येतद् यदुक्तं यत्कृतं तथा।
सर्वमित्यर्पितं ब्रह्मार्पणमस्त्वग्निवल्लभाम् ॥ ४ ॥
प्रणवं मां मदीयञ्च सकलां साध्यदेवताम्।
ङेन्तां समर्पितां तारं तत् सदात्मार्पणं मम ॥ ५ ॥

(आत्मसमर्पण, प्रणाम, प्रदक्षिणा, पंचांग–जैसे निर्माल्यग्रहण, नैवेद्य, अभिवन्दन, अर्घ्यामृतपान, पुष्पनिक्षेप, तिलक)

भैरव कहते हैं—हे देवी ! हे वरवर्णिनी ! आत्मसमर्पण का विवरण सुनो—

'इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाच्यकर्मणा ॥
हस्ताभ्यामथ पद्भ्यां च उदरेण शिश्ना यत् कृतम्।
यदुक्तं तत् सर्वमित्यपि तद् ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा ॥

अर्थात् इसके पूर्व प्राण, बुद्धि और देह-धर्मों के कारण जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था में मन, वाक्य और कर्म के द्वारा, हाथों से, पैरों से, उदर से, शिश्न से जो कुछ कहा अथवा किया है, वह सब ब्रह्मार्पित हो। यह मन्त्र कहते हुए साधक समस्त वाक्य, कार्य तथा चिन्ता ब्रह्मार्पित करे।

तदनन्तर निम्नांकित मन्त्र द्वारा इष्टदेवता और आत्मा की अभिन्नता का चिन्तन करके समस्त फल आत्मार्पित करे।

"ॐ मां मदीयञ्च सकलम् अमुकदेवतायां समर्पितम् ॐ तत्सत् आत्मार्पणं मम"।

अमुकदेवता के स्थान पर चतुर्थी विभक्त्यन्त में इष्ट का नाम कहे ॥१-५॥

ॐ तत्सदिति समस्तं फलं फलस्य नित्यता।
एवं कृत्वा तु देवेशि ! ब्रह्मार्पणं समर्पयेत् ॥ ६ ॥

'ॐ तत्सत्' यह समस्त फल की नित्यता का निर्देशक है। हे देवेशी ! इस प्रकार सब कुछ ब्रह्मार्पित करे ॥ ६ ॥

प्रणामञ्च ततो देव्यै विशेषेण मयोच्यते।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ॥ ७ ॥
वचसा मनसा चैव प्रमाणोऽष्टाङ्ग ईरितः।
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिरः पुनः ॥ ८ ॥

तदनन्तर देवी को प्रणाम करे। अब विशेषरूप से प्रणाम-पद्धति कहता हूँ। पदद्वय, हस्तद्वय, जानुद्वय, हृदय, शिर, दृष्टि, वाक्य तथा मन द्वारा एक साथ प्रणाम करना ही अष्टांग-प्रणाम है। तत्पश्चात् दक्षिण बाहु को फैलाकर नम्रभाव से सिर झुकाकर देवी को प्रणाम करे ॥ ७-८ ॥

दक्षिणं दर्शयेत् पार्श्वं मनसापि च दक्षिणम् ।
त्रिधा च वेष्टयेत् सम्यक् तारायाश्च प्रदक्षिणम् ॥ ९ ॥
सा च प्रदक्षिणा ज्ञेया सर्वदेवौघतुष्टिदा ।
एकं चण्ड्यां रवौ सप्त त्रीणि कुर्याद्विनायके ॥ १० ॥
चत्वारि केशवे कुर्याच्छिवे चार्द्धप्रदक्षिणम् ।
अष्टोत्तरशतं यस्तु तारायास्तु प्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् देवी के दक्षिण पार्श्व को देखते हुए देवी के दक्षिण से वाम दिक् की ओर तीन बार प्रदक्षिगा करे । यही तारादेवी की प्रदक्षिणा है ।

इस प्रकार की प्रदक्षिणा सभी देवताओं के लिए प्रसन्नताकारक है । चण्डी की एक बार, सूर्य की सात बार, विनायक की तीन, केशव की चार तथा शिव की दो (मतान्तर से आधी) बार प्रदक्षिणा करे । तारा की १०८ प्रदक्षिणा करे ॥ ९-११ ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।
बाहुभ्याञ्चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा ॥ १२ ॥
पञ्चाङ्गकं प्रणामञ्च शृणु देवि ! हरप्रिये ! ।
हृदये च बहिर्देवीं समर्प्य विधिवत्ततः ॥ १३ ॥
निर्माल्यं वै शुचौ देशे नैवेद्यं भक्षयेत्ततः ।
अभिवन्दनमाचर्य पिबेदर्घ्यामृतं ततः ॥ १४ ॥

इससे साधक की सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और मोक्ष प्राप्त होता है । हे देवी ! हे हरप्रिये ! बाहुद्वय, जानुद्वय, शिर, वाक्य और मन के द्वारा एकसाथ जो साधित होता है, वही पंचांग प्रणाम है । हृदय (अन्तराकाश) एवं हृदय के बाहरी भाग (बाह्याकाश) में देवी को समस्त जपादि अर्पण करके पवित्र स्थान में देवी का निर्माल्य धारण करना चाहिए । तदनन्तर नैवेद्य भक्षण करे । अन्त में देवी की वन्दना करते हुए अर्घ्यामृत का पान करे ॥ १२-१४ ॥

न्युब्जीकृत्य स्वयं पात्रं तत्र पुष्पं विनिक्षिपेत् ।
कनिष्ठसव्यहस्तस्य तिलकं कारयेत् ततः ॥ १५ ॥
यं यं स्पृशामि हस्तेन यं यं पश्यामि चक्षुषा ।
स एव दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत् ॥ १६ ॥
मन्त्रेणानेन देवेशि ! तिलकं रक्तलेपनैः ।
ब्रह्मरन्ध्रे गुह्यदेशे यन्त्रलेपन्तु कारयेत् ॥ १७ ॥

बलि के रक्त वाले पात्र में पुष्प-निक्षेप करे । तत्पश्चात् वामहस्त की कनिष्ठिका अँगुली से इस पात्र से बलिवाला रक्त लेकर उसका तिलक लगाये । तिलक-मन्त्र यह है—

'यं यं स्पृशामि हस्तेन यं यं पश्यामि चक्षुषा। स एव दासतां यातु यदि शक्रसमो भवेत्' ।। अर्थात् जिसे मैंने स्पर्श किया, जिसे नेत्र देखते हैं, वह व्यक्ति इन्द्रतुल्य होने पर भी मेरा दास हो।

हे देवेशी ! इस मन्त्र से रक्त-तिलक करे। तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्र तथा गुह्य देश में (अर्थात् सहस्रार तथा मूलाधार में) भी यही रक्त लगाये ।।१५-१७।।

नास्तिकेभ्यो न पशुभ्यो न मूर्खेभ्योऽपि वा द्विजे।
कुलीनाय च दातव्यमथवा कुलमध्यतः ।। १८ ।।
ततः सोऽहमिति ध्यात्वा वैष्णवाचारतत्परः।
हरिनाम्नायते भावभावार्थं विचरेत् ततः ।। १९ ।।
चौरवद्विचरेदेकः सदा सङ्गविवर्जितः।
देवीविसर्जनान्तरं पानादिकं समाचरेत् ।। २० ।।

।। इति श्रीनीलतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे आत्मसमर्पण-तिलकधारणादि नामाष्टमः पटलः ।।

नास्तिक, पशु और मूर्ख को अथवा जो कौल सम्प्रदाय का नहीं है, उन्हें यह विद्या प्रदान न करे। केवल कुलाचार-सम्पन्न को और कुलमध्यगत व्यक्ति को यह विद्या देनी चाहिए।

तदनन्तर 'सोऽहं' रूप से ध्यानपरायण हो जाये। तत्पश्चात् वैष्णवाचार-रत होकर हरिनामपरायण भावालम्बन करके विचरण करे।

जैसे तस्कर एकाकी विचरण करता है, उसी प्रकार आसक्तिविहीन एकाकी विचरण करे। तत्पश्चात् देवी का विसर्जन करके मद्यादि पान करे ।। २० ।।

अष्टम पटल समाप्त ।।

नवमः पटलः

(मद्यपानविधिः)

भैरव उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानि ! पानस्य विधिमुत्तमम्।
पानन्तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमात् ।। १ ।।
दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरं वीरासने स्थितम्।
तृतीयन्तु पशोः पानं पापकृत् शोकमोहकृत् ।। २ ।।

(मद्यपान-विधि)

भैरव कहते हैं—हे महेशानी ! अब उत्तम पान-विधि कहता हूँ। दिव्य, वीर तथा पशुपान के कारण पान भी त्रिविध है। पूजाकाल में देवी के सम्मुख मद्यपान को दिव्यपान कहते हैं। साधनकाल में वीरासन में बैठकर जो मद्यपान है, वह वीरपान है और मनमाने रूप से मद्यपान को पशुपान कहते हैं। यह पापजनक तथा शोक-मोहदायक है ॥ १-२ ॥

असंस्कृतं वृथापानं संस्कृतं भैरवं स्वयम् ।
चक्रपूजाविधेः पानं सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ३ ॥
असंस्कृतं पशोः पानं कलहोद्वेगकारणम् ।
संस्कृतं सिद्धिजनकं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥

असंस्कृत सुरापान ही वृथापान है, संस्कृत सुरापान द्वारा साधक भैरवतुल्य हो जाता है। चक्र में पूजन के अनुसार सुरापान करने से सिद्धि प्राप्त होती है। असंस्कृत सुरापान ही पशुपान है। पशुपान से कलह तथा उद्वेग होता है। संस्कृत सुरापान सिद्धिदायक और पापनाशक है ॥ ३-४ ॥

मन्त्राणां स्फुरणं तेन महापुण्यकरं शुभम् ।
आयुः श्रीकान्तिसौभाग्यं ज्ञेयं संस्कृतपानतः ॥ ५ ॥
देवार्चनावशिष्टं यत् सलिलं शङ्खमध्यगम् ।
मनुष्याणां ब्रह्महत्याशतं तेन व्यपोहति ॥ ६ ॥
नैवेद्यञ्चैव तारायाः कौलिकाय निवेदयेत् ।
स्त्रीभ्यो दद्याद्वरारोहे तदक्षयमुपालभेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे पानविधि-नैवेद्यग्रहणं नाम नवमः पटलः ॥ ९ ॥

संस्कृत सुरापान-सेवन से मन्त्र उद्दीप्त होता है। इसके लिए संस्कृत सुरापान महापुण्यकारी तथा कल्याणप्रद है। इससे आयु, श्री, कान्ति तथा सौभाग्य प्राप्त होता है।

देवी की अर्चना के अनन्तर शंखमध्यगत पवित्र बची हुई सुरा का पान करने से सैकड़ों ब्रह्महत्या का पाप निवृत्त हो जाता है। तारापूजा में प्रदत्त नैवेद्य साधक कौलों को प्रदान करे। हे सुन्दरी ! यह नैवेद्य नारीगण को देने पर अक्षय फल मिलता है ॥ ५-७ ॥

नवम पटल समाप्त ॥

दशमः पटलः

(दीक्षाप्रकरणम्)

भैरव उवाच—

दीक्षाविधिं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने !।
यया विना नाधिकारस्तन्त्रे मन्त्रेऽपि च क्वचित्॥ १॥

(दीक्षाविधि)

भैरव कहते हैं—हे कमलानने ! जिसके बिना तन्त्र-मन्त्र साधना में कोई भी अधिकार नहीं प्राप्त होता, उस दीक्षाविधि का मैं उपदेश देता हूँ, तुम सुनो ॥ १ ॥

दीक्षामूलं जगत् सर्वं दीक्षा हि परमं तपः।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद् यत्र कुत्राश्रमे वसन्॥ २॥
अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत्।
तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्याच्च तान्त्रिकीम्॥ ३॥

जगत् का मूल है दीक्षा। यह परम तप है। किसी भी आश्रम का क्यों न हो, दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर उस आश्रम का अवलम्बन ले।

अदीक्षित व्यक्ति मृत्यु के अनन्तर रौरव नरक में जाते हैं। अतएव सर्वदा समस्त प्रयत्नों के साथ तन्त्र-सम्बन्धी दीक्षा ग्रहण करे ॥ २-३ ॥

कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानाज्ञानञ्च यत् कृतम्।
दीक्षाग्रहणमात्रेण पलायन्ते न संशयः ॥ ४॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्वर्णस्तेयादिपातकम्।
उपपातकलक्षाणि हन्ति दीक्षाग्रहान्विता ॥ ५॥

दीक्षा ग्रहण मात्र से ज्ञानकृत् तथा अज्ञानकृत् कोटिजन्मार्जित पाप भी दूर हो जाते हैं। यह निस्संदिग्ध है।

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णापहरण प्रभृति पाप तथा लक्ष उपपातक-समूह भी दीक्षा द्वारा दूर हो जाते हैं ॥ ४-५ ॥

कल्पे दृष्ट्वा तु मन्त्रं वै यो गृह्णाति नराधमः।
मन्वन्तरसहस्रेषु निष्कृतिर्नैव जायते॥ ६॥

ग्रन्थ में मन्त्र पढ़कर जो अदीक्षित नराधम व्यक्ति उसका अनुष्ठान करता है, वह सहस्र मन्वन्तरों में भी पापमुक्त नहीं हो सकता॥ ६ ॥

गुरोर्मुखान्महाविद्यां गृह्णीयात् पापहारिणीम् ।
अथोच्यते महादेवि ! लक्षणं गुरुशिष्ययोः ॥ ७ ॥
दिव्यज्ञानं यतो दद्यात् क्षीयते पापसञ्चयः ।
ततो दीक्षेति सम्प्रोक्ता शृणु देवि ! प्रियंवदे ! ॥ ८ ॥

केवल गुरु के मुख से ही पापापहारिणी महाविद्या को ग्रहण करे। हे महादेवी ! अब गुरु-शिष्य का लक्षण कहा जाता है ।

दिव्यज्ञान-प्रदान द्वारा संचित पाप नष्ट हो जाते हैं । अतः दीक्षाविधान कहता हूँ । हे प्रियंवदे ! सुनो ॥ ७-८ ॥

तत्त्वज्ञो मन्त्रतन्त्राणां कर्मवेत्ता रहस्यवित् ।
पुरश्चरणकृत् सिद्धो मन्त्रसिद्धिप्रयोगकृत् ॥ ९ ॥
दाता दान्तः शान्तमना नितान्तः शान्तमानसः ।
अध्यात्मविद् ब्रह्मचारी कौलो गुरुरिहोच्यते ॥ १० ॥

जो मन्त्रों के तत्त्वज्ञाता हैं, जो तान्त्रिक कर्म में ज्ञानवान् हैं और जो समस्त विषय का रहस्य (गुप्तसाधनतत्त्व) जानते हैं, जो पुरश्चरण कार्य में सिद्ध, मन्त्रसिद्ध, प्रयोग-विषय के ज्ञाता, दाता, दयाशील, शान्त, समाहित-चित्त, अध्यात्मतत्त्ववित् तथा ब्रह्मचर्यपरायण हैं, उन्हें कौलगुरु कहा जाता है ॥ ९–१० ॥

कुलनाथं परित्यज्य ये शाक्ताः पशुसेविनः ।
तेषां दीक्षा च योगश्च अभिचाराय कल्पते ॥ ११ ॥

कौलगुरु का परित्याग करके जो शाक्तगण पशुगुरु को ग्रहण करते हैं, उनकी दीक्षा तथा योग अभिचार-कार्य में पर्यवसित हो जाता है ॥ ११ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ।
कुलीनः सर्वविद्यानामधिकारीति गीयते ॥ १२ ॥

अतः सभी प्रयत्नों द्वारा कौलगुरु का आश्रय लेना चाहिए । जो कुलीन (कौल) हैं, उन्हें ही समस्त विद्याओं का अधिकारी कहा जाता है ॥ १२ ॥

दीक्षागुरुः स एव स्यात् सर्वमन्त्रस्य नापरः ।
विष्णुर्विष्णुमतस्थानां सौरः सौरविदां मतः ॥ १३ ॥
गाणपत्यस्तु देवेशि ! गणदीक्षा प्रवर्त्तकः ।
शैवः शाक्तश्च सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः ॥ १४ ॥

विष्णु के साधक के लिए विष्णुमन्त्र की, सूर्य-साधक के लिए सौरमन्त्र की, गणपति-उपासक के लिए गणपति मन्त्र की दीक्षा प्रभावकारी होती है । किन्तु हे देवेशी ! शैव तथा शाक्तगण समस्त मन्त्रों के दीक्षा-गुरु हो सकते हैं ॥१३-१४॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।
तस्मान्मन्येत सततं पितुरप्यधिकं गुरुम् ॥ १५ ॥

जन्मदाता पिता की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान-प्रदाता पिता ही श्रेष्ठ हैं । इसीलिए सर्वदा गुरु को पिता से श्रेष्ठ मानना चाहिए ॥ १५ ॥

धर्ममूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः क्रिया ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं तस्मादादौ गुरुं यजेत् ॥ १६ ॥

धर्म का मूल है गुरुमूर्ति, पूजा का मूल है गुरु की क्रिया और मन्त्र का मूल है गुरु का वाक्य । अतः सबसे पहले गुरु की पूजा करे ॥ १६ ॥

सुन्दरः सुमुखः सुस्थः श्रद्धावान् सुस्थिरो मनः ।
स्थिरो नम्रः प्रशान्तश्च प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः ॥ १७ ॥
आस्तिको दृढभक्तिश्च गुरुमन्त्रे च दैवतः ।
एवं शिष्यं गुरुः कुर्यादितरो दुःखदायकः ॥ १८ ॥

सुन्दर, प्रियदर्शन, स्वस्थ, श्रद्धावान्, सुस्थिरमना, प्रशान्तचित्त, स्थिर तथा नतदृष्टियुक्त, जितेन्द्रिय, आस्तिक, गुरुमन्त्र तथा देवता में दृढ़भक्ति-सम्पन्न व्यक्ति को शिष्य रूप में ग्रहण करे । इसके अतिरिक्त अन्य शिष्य दुःखदायक होते हैं ॥ १७-१८ ॥

एकं द्वित्रिचतुःपञ्चवर्षान्यालोक्य योग्यताम् ।
योग्यं परिग्रहेत् शिष्यमन्यथा दुःखमाप्नुयात् ॥ १९ ॥
शुभेऽह्नि स्नानमाचर्यं सम्पूज्य गणनायकम् ।
सूर्यं विष्णुं शिवं दुर्गां वागीशं कमलालयाम् ॥ २० ॥

गुरु को चाहिए कि एक वर्ष से पाँच वर्ष तक के शिष्य का पर्यवेक्षण करते हुए उसकी योग्यता का निर्धारण करे; तत्पश्चात् उसे शिष्यरूपेण ग्रहण करे । इसके अतिरिक्त अन्य शिष्य दुःख के कारण होते हैं । शुभ दिन में स्नान करके गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा, वागीश तथा लक्ष्मी की पूजा करे ॥१९-२०॥

मातरं पितरं नत्वा ब्राह्मणान् परितोष्य च ।
फलं पुष्पं सुमाङ्गल्यं गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥ २१ ॥
मातृतः पितृतस्तस्य कुलं शीलं विचार्य च ।
पुरुषार्थसमावाप्तौ सच्छिष्यो गुरुमाश्रयेत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् माता-पिता को प्रणाम करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर, भक्ति-युक्त होकर फल-पुष्प तथा मांगलिक द्रव्यों द्वारा माता-पिता का पूजन करके कुलशीलानुसार परमार्थ-प्राप्ति के लिए गुरु का आश्रय ले ॥ २१-२२ ॥

आत्मविज्ञापनं कृत्वा पितृमातृसमाश्रितः ।
गुरुत्वेनैव सम्बोध्य प्रणमेद् दण्डवद् भुवि ॥ २३ ॥

अपने पिता-माता का परिचय देते हुए गुरु को गुरु भाव से सम्बोधित कर उनके सम्मुख भूमि में दण्डवत् प्रणाम करे ॥ २३ ॥

गुरोरग्रे समुत्थाय पुराञ्जलिकरे स्थितः ।
गुरोराज्ञां समादाय निवसेच्च यथा प्रिये ! ॥ २४ ॥

तदनन्तर गुरु के सम्मुख उठकर अंजलिबद्ध स्थिति में उनके सम्मुख खड़ा रहे । हे प्रिये ! तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा के अनुसार संसार में विचरण करे ॥ २४ ॥

गुरुश्चात्मविशुद्ध्यर्थं शिष्यन्तु परिशोधयेत् ।
चिरं विचार्य शिष्यन्तु देव्या मन्त्रं विचारयेत् ॥ २५ ॥

गुरु आत्मशुद्धि के लिए शिष्य का शोधन करे । दीर्घकाल तक विचार करके यह स्थिर करे कि शिष्य को देवी का कौन-सा मन्त्र देना चाहिए ॥२५॥

दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! हरप्रिये ! ।
कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभेऽहनि ॥ २६ ॥
पूर्वभाद्रपदायुक्ते मित्रतारादिसंयुते ।
अथवा ह्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ॥ २७ ॥

हे हरप्रिये ! अब मैं दीक्षाकाल कहता हूँ, सुनो । कृष्णपक्षगत अष्टमी तिथि में शुभलग्न, शुभदिन में, पूर्वभाद्रपदा अथवा मित्रतारादि संयुक्त नक्षत्र में, अनुराधा अथवा रेवती नक्षत्र युक्त होने पर दीक्षा का शुभ काल समझे ॥२६-२७॥

जानीयाच्छोभनं कालं चन्द्रार्कग्रहणं प्रति ।
इषे मासि विशेषेण कार्तिके च विशेषतः ॥ २८ ॥
महाष्टम्यां विशेषेण धर्मकामार्थसिद्धये ।
रोहिणी श्रवणार्द्रा च घनिष्ठा चोत्तरत्रयम् ॥ २९ ॥
पुष्या शतभिषा चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते ।
एवं प्रवर्त्य विधिवत् पूजाहोमौ विधाय च ॥ ३० ॥

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण को भी दीक्षा के लिए शुभकाल कहा गया है । भाद्र तथा कार्त्तिक मास दीक्षा के लिए विशेषतः उपयोगी हैं । धर्म-काम-अर्थ की सिद्धि के लिए महाष्टमी तिथि में दीक्षा विशेषतः शुभ है । रोहिणी, श्रवण, घनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफल्गुनी, पुष्य तथा शतभिषा नक्षत्र दीक्षार्थ अत्यन्त प्रशस्त हैं । इस प्रकार दीक्षाकार्य में प्रवृत्त होने पर विधिवत् पूजन तथा होम सम्पन्न करे ॥ २८-३० ॥

विद्यां तां कथयेत् सम्यक् जीवकर्णे च तत्त्ववित् ।
अकृत्वा कुल्लुकां देवि ! अदृष्ट्वा गुरुपादुकाम् ।। ३१ ।।
अदत्त्वा दक्षिणां सम्यगकृत्वा क्रमपूजनम् ।
योऽस्मिन् तन्त्रे प्रवर्तेत तं मन्त्रो नाशयेद् ध्रुवम् ।। ३२ ।।

तत्पश्चात् तत्त्वविद् गुरु शिष्य के कानों में सम्यक्रूप से विद्या (मन्त्र) प्रदान करे । हे देवी ! जो व्यक्ति गुरुपादुका का दर्शन किये बिना, कुल्लुका जप किये बिना, गुरु को सम्यक् दान-दक्षिणा दिये बिना तथा क्रमपूजन किये बिना इस तन्त्रोक्त साधना में प्रवृत्त होते हैं, उन साधकों का मन्त्र ही उनका विनाश कर देता है ।। ३१-३२ ।।

अथोच्यते महादेवि ! दीक्षास्थानं सुशोभनम् ।
गोशालायां गुरोर्गेहे पुण्यक्षेत्रे नदीतटे ।। ३३ ।।
धात्रीबिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च ।
गङ्गायां तत्तटे वापि कोटि-कोटिगुणं भवेत् ।। ३४ ।।

हे महादेवी ! अब मैं सुशोभन दीक्षास्थान का वर्णन करता हूँ । गोशाला, गुरुगृह, पुण्यक्षेत्र, नदीतट, आमलकी अथवा बिल्व वृक्ष के समीप, पर्वताग्र में, स्वगृह में, गंगा में अथवा गंगातीर पर दीक्षा ग्रहण करने से कोटिगुणित फल मिलता है ।। ३३-३४ ।।

गुरवे दक्षिणां दद्यात् प्रत्यक्षशिवरूपिणे ।
सर्वस्वं गुरवे दद्यात् गाञ्च दद्यात् पयस्विनीम् ।। ३५ ।।
सर्वस्वं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा तदाज्ञया ।
न चेत् सञ्चारिणी शक्तिः कथमस्य भविष्यति ।। ३६ ।।

गुरु प्रत्यक्ष शिव हैं, उन्हें दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । गुरु को यथा-सम्भव सर्वस्व, उसका आधा अथवा चौथाई अथवा उनकी आज्ञानुसार दक्षिणा प्रदान करे । उनकी आज्ञानुसार दुधारू गाय दक्षिणा रूप में दे । इसके बिना शिष्य सञ्चारिणी शक्ति कैसे प्राप्त करेगा ? ।। ३५-३६ ।।

भूमिं वृत्तिकरीं दद्यात् पुत्रपौत्रानुयायिनीम् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् सुवर्णं वा समन्वितम् ।। ३७ ।।
गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती ।
विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात् बहुमानपुरःसरम् ।। ३८ ।।

पुत्र-पौत्रादि क्रम से पूर्ण स्वत्वयुक्त वृत्तिकारी भूमि, वस्त्र, सुवर्ण आदि गुरु को प्रदान करे । गुरु के सन्तोष मात्र से शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है । तत्पश्चात् शिष्य सम्मानपूर्वक ब्राह्मणों को दान आदि दे ।। ३७-३८ ।।

तस्य छायानुसारी स्यान्निकटे त्रिदिनं वसेत् ।
न चेत् सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुणेति न संशयः ॥ ३९ ॥
सुवेशिनीं कुमारीञ्च भोजयेद् बहुयत्नतः ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे
दीक्षाविधानं नाम दशमः पटलः ॥

तदनन्तर गुरु का छायानुगामी होकर दीक्षान्त में शिष्य उनके पास तीन दिन रहे, अन्यथा गुरु से संचारिणी शक्ति की प्राप्ति नहीं होती। तदनन्तर शिष्य यत्नपूर्वक सुवेशी कुमारी को भोजन करावे ॥ ३९-४० ॥

। दशम पटल समाप्त ।

एकादशः पटलः

(पुरश्चरणप्रकरणम्)

देव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरश्चरणपद्धतिम् ॥ १ ॥

भैरव उवाच—

जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

(पुरश्चरणपद्धति, रहस्यमालिका अथवा महापद्ममाला, महाशंखमाला
निर्माण-पद्धति । करमाला, वर्णमाला, कुल्लुका, मन्त्रार्थ मन्त्र-
चैतन्य, तर्पण, अभिषेक, होम, नैमित्तिकाचार, पीठार्चन,
शिवाबलि आचार-नियम, कुलवृक्ष,
समयाचार तथा प्रणाम)

देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव ! महादेव ! हे सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! अब मैं पुरश्चरण-पद्धति को सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

भैरव कहते हैं—हे देवी ! जैसे कोई प्राणहीन देही किसी कार्य को करने में अक्षम रहता है, उसी प्रकार पुरश्चरण रहित मन्त्र भी निष्फल हो जाता है ॥ २ ॥

जपहोमौ तर्पणञ्च तथा ब्राह्मणभोजनम् ।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते ॥ ३ ॥

[प्रधानं जपमन्त्रञ्च लक्षं देवि ! चतुष्टयम् ।
तैर्विना केवलं मन्त्रं जपेत् सर्वाङ्गसिद्धये ॥ ४ ॥]
एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
ततः प्रयोगं सर्वेषां वैश्यादीनाञ्च कारयेत् ॥ ५ ॥

जप, होम, पूजा, तर्पण तथा ब्राह्मण-भोजन रूपी पञ्चाङ्ग उपासना को संसार में पुरश्चरण कहा जाता है ॥ ३ ॥

[**नोट**—चतुर्थ श्लोक संशयात्मक है । कई प्रतियों में यह श्लोक नहीं मिलता । अतः यहाँ उसका अनुवाद नहीं दिया गया है ।]

इस प्रकार से कार्य (पञ्चाङ्ग उपासना) करके हविष्याशी, अनन्य बुद्धिवाला साधक एक लाख बार मन्त्र जप करे । तत्पश्चात् यह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सभी के लिए प्रयोगार्थ उपयुक्त होता है । (अर्थात् यह सभी प्रयोगों के लिए उपयुक्त हो जाता है) ॥ ५ ॥

स्वेच्छाचारपरो मन्त्री पुरश्चरणसिद्धये ।
रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत् ॥ ६ ॥
जडोऽपि यदि मूढः स्याद् भावनावशतत्परः ।
लभते श्रीमतीं वाणीं मन्त्रस्य लक्षजापतः ॥ ७ ॥
भावनारहितानान्तु क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसाम् ।
चतुर्गुणो जपः प्रोक्तः सिद्धये देवि ! सुन्दरि ! ॥ ८ ॥

मन्त्रसिद्धि चाहने वाले पुरश्चरण-सिद्धि हेतु 'स्वेच्छाचारी' होकर रहस्य-माला पर इस मन्त्र का एक लाख जप करें । इस प्रकार से जड़-मूढ़ तथा भावनावश तत्पर व्यक्ति भी लक्ष जप के द्वारा अत्यन्त श्रीयुक्त वाणी प्राप्त कर लेता है । हे देवी ! हे सुन्दरी ! भावनारहित क्षुद्र पुरुषों तथा क्षुद्र मन वाले व्यक्तियों को सिद्धि हेतु चार लाख जप करना चाहिए ॥ ६-८ ॥

एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षचतुष्टयम् ।
सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः ॥ ९ ॥
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसादाद्भविष्यति ।
अथोच्यते महादेवि ! आचारस्तु पुरस्क्रिया ॥ १० ॥

इस प्रकार साधक हविष्याशी होकर चार लाख जप करे । इस प्रकार से सेवा एवं परिश्रम द्वारा समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । विशेषतः कलियुग में इस प्रकार की साधना द्वारा मेरी कृपा से उसका प्रयास सफल हो जाता है । हे महादेवी ! अब मैं पुरश्चरण काल में साधक के लिए पालन करने योग्य आचार का वर्णन करता हूँ ॥ ९-१० ॥

भूमौ शय्या वचननियमः कामिनीभ्यो निवृत्तिः
प्रातर्जापी विटपिसमिधः दन्तजिह्वाविशुद्धिः ।
पत्रारण्यं मधुरसमयं ब्रह्मवृक्षस्य पुष्पैः
पूजाहोमौ कुसुमरचना लेपनाम्बुर्जलानि ॥ ११ ॥
वर्जयेद् विष्णुकल्पञ्च वर्जयेत् तुलसीदलम् ।
वर्जयेन्मालतीपुष्पं वर्जयेदन्यपूजनम् ॥ १२ ॥

भूमि पर सोना चाहिए। वचन तथा काय (नियम) से मौन रहे, स्त्री-संग का त्याग करना चाहिए। प्रातःकाल में जप करना चाहिए। जिस वृक्ष की लकड़ी यज्ञ में प्रयुक्त होती है, उस वृक्ष की लकड़ी से जिह्वा तथा दाँतों को साफ करे। स्वच्छ वस्त्रों को पहने और पलाश पुष्प द्वारा पूजा-होम एवं कुसुम-रचना करे। जल तथा गोबर द्वारा समस्त साधना-स्थल का लेपन करे। विष्णुकल्प, तुलसीदल, मालतीपुष्प एवं अन्य देवताओं की अर्चना का पुरश्चरण काल में त्याग करना ही उचित है ॥ ११-१२ ॥

हस्तप्रक्षालनं शौचमाचारो यत्तदा भवेत् ।
देवीनाञ्च तथा पुष्पं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ॥ १३ ॥
एकीभावो न कर्त्तव्यो यदीच्छेत् शुभमात्मनः ।
नैवेद्यानि फलैस्तोयैर्जानीयाद् देवतोषणम् ॥ १४ ॥
हविर्नानाविधैर्दुग्धैः पायसैर्मोदकादिभिः ।
एवं क्रमान्नियुञ्जीत दधिक्षीरं तथैव च ॥ १५ ॥

हस्तप्रक्षालन, शौच, विभिन्न देवियों की पूजा का आचार भी पृथक् ही होता है। प्रत्येक प्रकार की देवियों के पुष्प को भी पृथक्-पृथक् पात्र में रखना चाहिए।

यदि साधक अपना भला चाहता है, तो वह समस्त देवी-देवताओं की तुष्टि हेतु उनके प्रति एक ही भाव का अवलम्बन न करे।

घृत, दुग्ध, पायस, विभिन्न प्रकार के मोदक, दधि, क्षीर, विविध फल, नैवेद्य तथा जल को देवता की तुष्टि हेतु निवेदित करे ॥ १३-१५ ॥

रहस्यमालिकां देवि ! शृणु पर्वतनन्दिनि ! ।
अकस्माद्विहिता सिद्धिः महाशङ्खस्य मालया ॥ १६ ॥
पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा ।
नृललाटास्थिकण्ठेन रचिता देवि ! सुन्दरि ! ॥ १७ ॥
तथा प्रजप्तोग्रतारैकजटा नीला च पार्वति ! ।
नृललाटास्थ्यभावे तु ग्राह्यं द्रव्यान्तरं प्रिये ! ॥ १८ ॥

हे देवी ! पर्वतनन्दिनी ! रहस्यमालिका का वर्णन सुनो। महाशंखमाला के द्वारा जप करने पर अकस्मात् सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

हे देवी ! हे सुन्दरी ! पचास मणियों द्वारा निर्मित महाशंख की माला सर्वसिद्धिप्रदा होती है। मनुष्य के ललाट की अस्थि से यह माला ग्रथित होती है।

हे पार्वती ! हे प्रिये ! इस माला पर उग्रतारादेवी, एकजटा एवं नीला के मन्त्र का जप विहित है। मनुष्य के ललाट की अस्थि न मिलने पर अन्य द्रव्यों द्वारा भी माला बनायी जा सकती है॥ १६-१८॥

सूत्रैस्तु ग्रथिता वापि द्विजस्त्रीकरनिर्मितैः।
पट्टसूत्रैः कृता माला जगद्वश्याय कल्पते॥ १९॥

ब्राह्मण की स्त्री द्वारा सूत्र अथवा पट्टसूत्र से गूँथी गयी माला संसार को वश में करनेवाली मानी जाती है॥ १९॥

स्वर्णसूत्रैः कृता माला साक्षाद्देवी न संशयः।
मुखे मुखं तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत्॥ २०॥
सर्पाकृतिर्यथा माला गोपुच्छाऽऽकृतिरेव वा।
मातृकावर्णतो ग्रन्थि विद्यया वाऽथ कारयेत्॥ २१॥

जो महाशंखमाला स्वर्ण के तार से गूँथी गयी है, वह साक्षात् देवी का रूप है। यह निःसंदिग्ध है। माला की मणियों का मुख से मुख तथा उसके पिछले भागों को परस्पर मिलाते हुए सर्पाकृति अथवा गाय के पूँछ की आकृतिवाली माला बनायी जाती है।

मातृकावर्ण अथवा मूलमन्त्र को जपते हुए माला में गाँठें लगाना चाहिए॥ २०-२१॥

तत् सजातीयमणिना मेरुत्वेन प्रकल्पयेत्।
एकैकं मणिमादाय ब्रह्मग्रन्थि विनिर्दिशेत्॥ २२॥
अनुलोमविलोमाभ्यां मातृकान्तरितं जपेत्।
शुभे लग्ने शुभे वारे शुभर्क्षे च शुभे तिथौ॥ २३॥
प्रतिष्ठां कारयेन्मन्त्री स्वयं वा गुरुणाऽपि वा।
अश्वत्थं पत्रनवकं पद्माकारं प्रकल्पयेत्॥ २४॥
तत्र संस्थापयेन्मन्त्री मातृकां मूलमुच्चरन्।
वह्निं संस्कृत्य विधिवदष्टोत्तरशतं हुनेत्॥ २५॥

महाशंख से बनाई माला की एक मणि को सुमेरु मान ले। इसे सूत्र में पिरोकर एक-एक ब्रह्मग्रन्थि लगाये।

अनुलोम-विलोम क्रम से मातृकावर्ण से सम्पुटित मूलमन्त्र का महाशंख माला पर जप करे। शुभलग्न, शुभवार, शुभतिथि एवं शुभनक्षत्र में साधक स्वयं (अथवा गुरु के द्वारा) ९ पीपल के पत्तों की कल्पना पद्म के समान करते हुए मूल मन्त्र के उच्चारण द्वारा (इन पत्तों में) मातृका की स्थापना करे। तदनन्तर नियमानुसार वह्निसंस्कार करे और इस वह्नि में १०८ बार होम करे॥ २५॥

हुतशेषं प्रतिहुतौ प्रदद्याद् देवताधिया।
देवीतन्त्रं समभ्यर्च्य मालिकामपि पूजयेत्॥ २६॥
अनुलोमविलोमेन मातृकार्णेन पूजयेत्।
मेरुं प्रेतेन सम्मन्त्र्य ग्रहानपि प्रपूजयेत्॥ २७॥

होम में जो अवशिष्ट बचता है, उसके द्वारा इष्टदेवता अथवा देवी हेतु होम करे। देवीगण की अर्चना करके महाशंखमाला की अर्चना करनी चाहिए। इसके अनन्तर अनुलोम-विलोम क्रमानुसार मातृकावर्ण का पूजन करे। तत्पश्चात् मेरु को प्रेतबीज के द्वारा अभिमन्त्रित करके ग्रहों का पूजन करे॥ २६-२७॥

पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः।
सौषुम्नाध्वन्युच्चारिताः प्रभावं प्राप्नुवन्ति ते॥ २८॥

पशुभाव में स्थित मन्त्र केवल अक्षरवर्ण (शक्तिहीन) ही हैं। इसके विपरीत सुषुम्ना ध्वनि (स्पन्दन) से उच्चारित मन्त्र शक्तियुक्त हो जाता है॥२८॥

करस्य मालानियमं विशेषेण वदाम्यहम्।
पर्वत्रयमनोमायाः परिवर्तेत वै क्रमात्॥ २९॥
पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्जन्येकं समाहरेत्।
शक्तिमाला समाख्याता सर्वमन्त्रप्रदीपिका॥ ३०॥

हे देवी! अब मैं करमाला जप का नियम विशेषरूप से कहता हूँ। अनामिका के तीन पर्व, कनिष्ठिका के तीन पर्व, मध्यमा के तीन पर्व और तर्जनी के प्रथम पर्व-पर्यन्त प्रत्येक पर्व पर एक-एक बार जप करे। तदनन्तर क्रमशः तर्जनी के द्वितीय एवं प्रथम पर्व पर एक बार मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् मध्यमा के प्रथम और द्वितीय पर्व पर एक-एक जप करे। यही सर्वमन्त्र-प्रदीपक शक्तिमाला है॥ २९-३०॥

व्यग्रचित्ते तु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
तत् सर्वं निष्फलं याति शृणु देवि! वरानने!॥ ३१॥
पर्वद्वयं च तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति!।
सिद्धये साधको मेरुं जपं त्यक्त्वा पुनः पुनः॥ ३२॥

हे देवी ! हे वरानने ! सुनो । जो व्यक्ति व्यग्रचित्त होकर अत्यन्त तीव्र-गति से जप करने लगता है अथवा माला के सुमेरु का लंघन करते हुए जप करता है, उसका जप निष्फल हो जाता है ।

हे पार्वती ! तर्जनी के द्वितीय तथा तृतीय पर्व को मेरु कहते हैं । इस मेरु का लंघन न कर और इन दोनों पर्वों को छोड़ते हुए उपर्युक्त (२९-३०) श्लोकों में वर्णित विधि से पुनः-पुनः जप करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ३१-३२ ॥

नित्यं जपं करे कुर्यात् मालाभावेऽपि सुन्दरि ! ।
काम्यञ्चापि करे कुर्यान्मालाभावेऽपि सुन्दरि ! ॥ ३३ ॥

हे सुन्दरी । अन्य मालाओं के न रहने पर कररूपी माला से ही प्रतिदिन जप करना विहित है । हे सुन्दरी ! माला के अभाव में करमाला द्वारा ही काम्यजप करना उचित होगा ॥ ३३ ॥

कुल्लूकाञ्च ततो जप्त्वा मालापूजां विधाय च ।
गृह्णीयाद् दक्षिणे देवि ! न च वामेन संस्पृशेत् ॥ ३४ ॥

हे देवी ! प्रथमतः कुल्लूका जप करते हुए माला का पूजन करे । तदनन्तर दक्षिणहस्त में माला ग्रहण करे । कभी भी बाँयें हाथ से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥

नाभितश्च शिरोदेशे कुल्लूकां परिचिन्तयेत् ।
पट्टसूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरी सदा ॥ ३५ ॥

नाभि से शिर-पर्यन्त कुल्लूका का चिन्तन विहित है। पट्टसूत्र (रेशमी सूत्र) द्वारा गुँथी हुई माला सभी देवियों को प्रीतिकारी होती है ॥ ३५ ॥

महाशङ्खेऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटिक्या मालया जपेत् ।
मालाविधानं परमं शृणु पार्वति ! तत्त्वतः ॥ ३६ ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
अनुलोमविलोमेन मन्त्रसेतुर्विभेदतः ॥ ३७ ॥
मन्त्रेणान्तरितान् वर्णान् वर्णेनान्तरितान् मनून् ।
कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रदीपिकाम् ॥ ३८ ॥
चतुर्वर्णीं मेरुरूपां लङ्घयेन्न कदाचन ।
मेरुः शिरश्च सर्वेषां यथा देवः स्वयं हरिः ॥ ३९ ॥

यदि महाशंख माला न लायी जा सके, उस स्थिति में स्फटिक की माला द्वारा जप करे । हे पार्वती ! जिसके जानने मात्र से मन्त्रसिद्धि होती है, अब उसका वर्णन करता हूँ । अनुलोम-विलोम क्रमानुसार मन्त्र तथा सेतु का विभेद

करते हुए मन्त्र के द्वारा मातृकावर्ण अन्तरित करके जप करना उचित है। इसे कहते हैं—वर्णमयीमाला। यह सर्वमन्त्र-प्रदीपिका है।

मेरुरूपी चतुर्वर्ण का लंघन कभी भी नहीं करे। जैसे देवताओं में विष्णु (हरि) शीर्षस्थानीय हैं, उसी प्रकार से वर्णसमूह में मेरु को भी शीर्षस्थानीय कहा जाता है ॥ ३६-३९ ॥

रहस्यमेतत् परमं यथोक्तं ते यशस्विनि !।
त्वया गुप्ततरं कार्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ४० ॥

हे यशस्विनी ! इस परम रहस्य का मैंने तुमको उपदेश दिया। तुम भी इसे गुप्ततम मानकर रक्षित करना और बिना अधिकारी का विचार किये इसे किसी को प्रदान नहीं करना ॥ ४० ॥

गुरुचरणसरोजे सर्वदा भक्तिभावात्,
परिचरति विधेयो चास्य सर्वात्मना स्यात्।
अनुदिनमनुमेयं मानयेन्मानवोऽसौ,
भवति जगति वादी द्वैतसिद्धान्तहन्ता ॥ ४१ ॥

सर्वदा गुरुचरणों में भक्तियुक्त होकर प्रतिदिन नैष्ठिकरूप से एकाग्रतापूर्वक माला पर मन्त्र का जप करे। इस स्थिति में साधक को जगत् के समस्त द्वैत-सिद्धान्त का खण्डन करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है ॥ ४१ ॥

कुल्लूकाञ्च न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः।
पञ्चत्वं जायते शीघ्रमथवा वातुलो भवेत् ॥ ४२ ॥

जो व्यक्ति कुल्लूका का ज्ञान प्राप्त किये बिना महामन्त्र का जप करता है, उसे शीघ्र मृत्यु प्राप्त होती है अथवा वात रोग हो जाता है ॥ ४२ ॥

कुल्लूकाञ्च शिरे धृत्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्।
कुल्लूकां धारयेत् शीर्षे लिखित्वा भूर्जपत्रके ॥ ४३ ॥
राजद्वारे सभायाञ्च विजयी भवति ध्रुवम्।
नान्यो विचारः सर्वत्र विरूपाक्षस्य सम्मतः ॥ ४४ ॥

शिर पर कुल्लूका को धारण करने पर सभाओं में तथा सर्वत्र विजय मिलती है। इससे सभी यज्ञों का फल मिल जाता है। यह ध्रुव सत्य है। इस विषय में तर्क-वितर्क करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसे स्वयं विरूपाक्ष (शिवजी) ने कहा है। कुल्लूका को भोजपत्र पर लिखकर सिर पर धारण करना उचित होता है ॥ ४३-४४ ॥

कुल्लूकावर्जनात् पुंसामज्ञानोपस्थितिर्भवेत्।
मम पूजा सदा व्यर्था मम यज्ञस्तथैव च ॥ ४५ ॥

तारामन्त्रस्य त्र्यक्षरं जानीयान्मन्त्रमुत्तमम् ।
न जानाति च यो मूढः कुल्लूकां तारिणीं जपेत् ॥ ४६ ॥
यावज्जीवन्तु जप्तव्यं न सिद्ध्यति कदाचन ।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः ॥ ४७ ॥
शतकोटिजपेनैव तस्य मन्त्रं न सिद्ध्यति ।
एवं जप पुरा कृत्वा दशांश च सितोत्पलैः ॥ ४८ ॥

जो कुल्लूका का त्याग करता है, वह अज्ञानाच्छन्न हो जाता है। कुल्लूका का त्याग करने पर मेरी पूजा और मेरे लिए किया गया यज्ञ भी व्यर्थ है।

सर्वोत्तम मन्त्र है—त्र्यक्षरी तारामन्त्र। इसको भलीभाँति जाने बिना जो कुल्लूका अथवा तारिणी मन्त्र का जप करता है, उसे जीवनपर्यन्त जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त होती। जो मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य तथा योनिमुद्रा के ज्ञान से रहित स्थिति में जप-प्रवृत्त होता है, उसे सैकड़ों-करोड़ों जन्म तक जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती। प्रथमतः पूर्वोक्त नियमानुसार जप करे, तत्पश्चात् घृतसिक्त श्वेत कमल के द्वारा जपसंख्या के दशांश का हवन करे और हवन की दशांश संख्या का तर्पण करे ॥ ४५-४८ ॥

अत्रोक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पयेत् ।
कालागुरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः ॥ ४९ ॥
तर्पयेत् तां परां देवीं तत्प्रकारं शृणु प्रिये ! ।
कूले चावाह्य विधिवत् पाद्याद्यैरुदकैश्च तत् ॥ ५० ॥
सम्पूज्य विधिवद्देवीं परिवारान् सकृत् सकृत् ।
सन्तर्प्य विधिवद्भक्त्या दशांशं विधिवत्ततः ॥ ५१ ॥
एकैकाञ्जलिना तर्प्यान् परिवारांस्तथा प्रिये ! ।
तर्पणस्य विधिः प्रोक्तो मन्त्रसिद्धिकरः परः ॥ ५२ ॥
अभिषेकं तथा कुर्यात् तत्प्रकारं शृणु प्रिये ! ।
देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः ॥ ५३ ॥
तारिणीं सिञ्चयामीति नमो मूर्ध्नि विनिःक्षिपेत् ।
अभिषेको मयाख्यातः सर्वपापनिकृन्तनः ॥ ५४ ॥

हे प्रिये ! काला अगुरु द्रव्य तथा निर्मल सुगन्धित जल के द्वारा परादेवी का तर्पण करना चाहिए। उस तर्पण-विधि को मैं कहता हूँ; सुनो।

जल में देवी का आवाहन करके, उस जल के द्वारा यथोक्त विधि से पाद्य प्रभृति उपचार देवी को देना चाहिए। समस्त देवी-परिवार का पूजन करे। उस परिवार के प्रत्येक देवी-देवता का क्रमशः एक-एक अंजलि द्वारा यथाविधि

तर्पण करे (और होम की संख्या का दशांश देवी-तर्पण करे) । हे प्रिये ! इस मन्त्रसिद्धि देनेवाली श्रेष्ठ तर्पण-विधि को मैं कहता हूँ । तुम सुनो ।

हे प्रिये ! तर्पण के पश्चात् अभिषेक किया जाता है । उसकी पद्धति को मैं कहता हूँ । साधक स्वयं की देवीभाव से पूजा करे । 'तारिणीं सिञ्चयामि' अर्थात् तारिणी का सिंचन करता हूँ, इस मन्त्र को कहते हुए अपने मस्तक पर समस्त जल तथा पूजाद्रव्य को डाले । अब उस सर्वपापहारी अभिषेक का वर्णन करता हूँ ॥ ४९-५४ ॥

अभिषेकदशांशेन साधकानपि भोजयेत् ।
सुवेशिनीं कुमारीञ्च भोजयेत्तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥
क्षीरखण्डादिभोज्यैश्च मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५६ ॥

अभिषेक की संख्या की दशांश संख्या में देवी के साधकों को भोजन कराये । तदनन्तर सुन्दर वेश वाली कुमारियों को भोजन कराये । उन्हें खीर तथा खाँड आदि भोजनादि द्रव्यों के द्वारा तृप्त कराना चाहिए और तदनन्तर गुरु को अनेक प्रकार से सम्मानित करके दक्षिणा प्रदान करे ॥ ५५-५६ ॥

होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः ।
मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परम् ॥ ५७ ॥
स्वाहान्ते तर्पणञ्चैवमभिषेकं शृणु प्रिये ! ।
मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य सिञ्चयामि नमःपदम् ॥ ५८ ॥

होम तथा तर्पण में मन्त्र के अन्त में स्वाहा और पूजा-काल में मन्त्र के अन्त में नमः का उच्चारण करना उचित है । मन्त्र के अन्त में देवता अथवा देवी के नाम का उच्चारण करते हुए 'तर्पयामि' शब्द का प्रयोग करना उचित है । 'तर्पयामि' के पश्चात् 'स्वाहा' जोड़ देने पर वह तर्पण मन्त्र हो जाता है । हे प्रिये ! अब अभिषेक-मन्त्र सुनो । मन्त्र के अन्त में देवी अथवा देवता का नाम लेकर उसके पश्चात् 'सिञ्चयामि नमः' पद का उच्चारण करना ही अभिषेक-मन्त्र है ॥ ५७-५८ ॥

इत्येवं सिद्धमन्त्रः सन् सर्वकर्माणि साधयेत् ।
यथा नैमित्तिकाचारं तच्छृणुष्व प्रियंवदे ॥ ५९ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ।
यद्यत् प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति नित्यशः ॥ ६० ॥

इस प्रकार से कार्य करने पर मन्त्रसिद्धि मिलती है । हे प्रियंवदे ! अब नैमित्तिकाचार का श्रवण करो ।

अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को यत्नपूर्वक देवी का पूजन करना चाहिए। इसके प्रभाव से मन्त्रसाधक नित्य जो चाहता है, उसकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ५९-६० ॥

लभते मञ्जुलां वाणीं कृष्णाष्टम्यां यदा यजेत्।
नित्यार्चनान्तरं कार्यो नैमित्तिकविधिः शिवे ! ॥ ६१ ॥
यत्र न कालनियमो स्वेच्छाचारो निगद्यते।
मासं वा मण्डलं व्याप्य नैमित्तिकविधिः शिवे ! ॥ ६२ ॥

कृष्णाष्टमी के दिन देवीपूजन से साधक कवित्वशक्ति से युक्त हो जाता है। नित्यपूजन के अनन्तर नैमित्तिक (प्रयोजनार्थ) पूजन करना चाहिए। नैमित्तिक के लिए समय का कोई भी बन्धन नहीं है। किसी भी समय, किसी भी रूप से यह पूजा की जा सकती है। एक दिन, एक मास तक भी यह पूजा की जा सकती है। यहाँ स्वेच्छाचार ही नियम है ॥ ६१-६२ ॥

मासार्द्धमथवा मासं द्विगुणं त्रिगुणं तथा।
यावत् फलाप्तिमान् योगी तावदेव समाचरेत् ॥ ६३ ॥

एक पक्ष, एक महीना, दो अथवा तीन महीना अथवा जब तक फल न मिले; इस पूजा को साधकगण करते रहते हैं ॥ ६३ ॥

नैमित्तिके तथा काम्ये फलाप्तिर्मण्डलावधिः।
न च तद्द्विगुणं कुर्याद् यथा स्यात् फलभाक् प्रिये ! ॥ ६४ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधि।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति जपापुष्पञ्च वर्वरीम् ॥ ६५ ॥

अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि में जपापुष्प तथा काली तुलसी द्वारा यथाविधि देवी की अर्चना करनी चाहिए। ऐसी पूजा द्वारा इच्छानुसार सिद्धि मिल जाती है।

नैमित्तिक अथवा काम्यपूजा में अहोरात्र-पर्यन्त अथवा जब तक फल न मिले तब तक पूजन करना चाहिए। कभी भी दो बार पूजन न करे। हे प्रिये ! इस प्रकार से कार्य करने पर फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६४-६५ ॥

न चार्ककुसुमं दद्यात् तथा श्वेतापराजिताम्।
अर्घ्यं दद्याद् विशेषेण नित्यपूजासु सर्वदा ॥ ६६ ॥
अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवितसङ्ख्यया।
यस्तु सम्पूजयेद् देवीं महाष्टम्यां विशेषतः ॥ ६७ ॥
जन्मत्रयार्जितं पापं तस्य नश्यत्यसंशयम्।
ये जपन्ति महामायां ज्ञात्वा तत्त्वेन भैरवि ! ॥ ६८ ॥

आज्ञासिद्धिमवाप्यन्ते ध्रुवं यान्ति शिवालयम् ।
तारिणी यत्र पीठे तु शिलारूपेण तिष्ठति ।। ६९ ।।
तत्र यत्नेन गन्तव्यं फलसङ्ख्या न विद्यते ।
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तारिणी यत्र तिष्ठति ।। ७० ।।

नित्यपूजन के अनन्तर १०८ बार मन्त्र जपे । जो व्यक्ति महाष्टमी तिथि में विशेषतः देवीपूजन करता है, उसके त्रिजन्मार्जित पाप तत्काल विनष्ट हो जाते हैं । हे भैरवी ! जो व्यक्ति तत्त्व को जानकर महामाया का मन्त्र जपते हैं, वे व्यक्ति आज्ञासिद्धि प्राप्त करते हैं और शिवलोक में जाते हैं । जहाँ तारिणी देवी का शिलाविग्रह विद्यमान है, वहाँ यत्नपूर्वक जाकर तीन लाख मन्त्र का जप करे । इसका असीम फल मिलता है ।। ६७-७० ।।

निःस्पृहः स्थिरचित्तेन सिद्धिर्भवति तत्क्षणात् ।
असङ्ख्यानि च फलानि ह्यक्षतञ्च तथैव च ।। ७१ ।।
मधुना पायसैश्चैव क्षीरं साज्यञ्च शर्कराम् ।
बलिं दद्याच्च तारायै आसवञ्च प्रशस्यते ।। ७२ ।।
यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
तत्र गुडार्द्रकं दद्यात् तक्रं वा गुडमिश्रितम् ।। ७३ ।।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे त्यजेन्मधु ।
रम्भापुष्पं शालमत्स्यं जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।। ७४ ।।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे त्यजेन्मधु ।

निःस्पृह चित्त से स्थिर होकर तीन लाख जप करते ही साधक सिद्धि प्राप्त करता है । असंख्य फल, अक्षत, मधु, पायस, दुग्ध, चीनी तथा आसव द्वारा तारा को बलि देनी चाहिए । ब्राह्मण को चाहिए कि आसव के स्थान पर आदी (अदरख) से मिश्रित गुड़ अथवा तक्र में गुड़ मिलाकर काँसा अथवा ताँबें के पात्र में नारिकेल के जल और मधु के साथ रखते हुए तारा को निवेदित करे । केला के फूल, शालमत्स्य काँसे के पात्र में रखा हुआ नारियल का पानी तथा ताम्रपात्र स्थित मधु द्वारा मन्त्रवित् साधक हवन भी करे ।। ७१-७४ ।।

सर्वसिद्धिमनुप्राप्य चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।
तण्डुलं बिल्वपत्रञ्च दद्याच्च सहस्रकम् ।। ७५ ।।
लभते मञ्जुलां वाणीं महाष्टम्याञ्च साधकः ।
कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः ।। ७६ ।।

फलस्वरूप साधक समस्त मन्त्रसिद्धियों को प्राप्त कर लेता है और अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति करता है । विशेषतः महाष्टमी को कुलवार के दिन कुलाष्टमी

तिथि को आतप्त तण्डुल तथा बिल्वपत्र के द्वारा १००० बार आहुति प्रदान करे। इससे साधक कवित्वशक्ति तथा मधुर वाणी को प्राप्त करता है ॥७५-७६॥

योगिनीं पूजयेत्तत्र. प्रधानं कुलपूजनम् ।
महाविद्याञ्च सन्धार्य वासुदेवञ्च योऽर्चयेत् ॥ ७७ ॥
प्राप्नोति तत्फलं सम्यक् हरिसायुज्यतां व्रजेत् ।
वासुदेवो हरो ब्रह्मा तारिणीं प्रकृतिस्तथा ॥ ७८ ॥
एकमूर्त्तिः सदा चिन्त्या एकमूर्त्तिः सदा स्थिता ।
सुखमोक्षप्रदा देवी जयविद्याप्रदायिनी ॥ ७९ ॥
धनविद्यायशोलक्ष्मीराज्यभोगप्रदायिनी ।
तस्मात्तां पूजयेद् देवीं गन्धपुष्पैश्च धूपकैः ॥ ८० ॥
नैवेद्यैर्विविधैर्भोगैः पूजयेत् तारिणी सदा ।
आषाढे शयनं कुर्यात् सिंहे च परिवर्तनम् ॥ ८१ ॥

उक्त तिथि पर पूजाकाल में प्रधानतः योगिनी का पूजन करे। जो व्यक्ति महाविद्या की आराधना करने के पश्चात् वासुदेव की आराधना करते हैं, उन्हें हरिसायुज्य प्राप्त हो जाता है। वासुदेव, शिव, ब्रह्मा, तारिणी तथा प्रकृति में भी सर्वदा एक और अभिन्न सत्ता का ही चिन्तन करना चाहिए। वे सभी अभिन्न और एक हैं। तारिणीदेवी ही सुख-मोक्ष-जय-विद्या-धन-यश-लक्ष्मी तथा राजभोग दात्री हैं। अतः उन्हें सदा नैवेद्य, विभिन्न भोग्य पदार्थ, गन्धपुष्प तथा धूप-दीप आदि द्वारा पूजें। वे आषाढ़ मास में शयन करती हैं और भाद्रपद मास में करवट बदलती हैं ॥ ७७-८१ ॥

आश्विने बोधयेद् देवीं पशुपायसमोदकैः ।
रात्रौ देवीरोधनञ्च जायते सुरसुन्दरि ! ॥ ८२ ॥
दिवा प्रबोधयेद्वापि न तु रात्रौ कदाचन ।
शुक्लाष्टम्यां महाष्टम्यां घटाष्टम्यां विशेषतः ॥ ८३ ॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां देवीं सम्पूजयेत् प्रिये ! ।
अथ पीठार्चनं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने ! ॥ ८४ ॥

दिन में देवी का प्रबोधन करना चाहिए। रात्रि में कभी भी प्रबोधन नहीं करना चाहिए। आश्विन मास में प[illegible]पायस तथा मोदक के द्वारा देवी का बोधन (जागरण) कराये। रात्रि में उनको रोधन (शयन) कराये। हे प्रिये ! शुक्लाष्टमी, महाष्टमी, घटाष्टमी तथा माघ मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को विशेषतः देवीपूजन करे। हे कमलानने ! तदनन्तर पीठपूजन आदि करना चाहिए ॥ ८२-८४ ॥

(पीठपूजनम्)

पीठानां परमं पीठं कामरूपं महाफलम् ।
तत्र यः कुरुते पूजां सकृद्वापि महेश्वरि ! ॥ ८५ ॥
सफला सा ध्रुवं पूजा लक्ष्मीस्तस्य वसेद् गृहे ।
तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ ८६ ॥
तेषां फलं महादेवि ! बहु किं कथ्यते मया ।
यत्र कोटिगुणैः सार्द्धमाद्या वसति तारिणी ॥ ८७ ॥
यत् पीठं ब्रह्मणा प्रोक्तं गुप्तं सर्वसुखावहम् ।
ततो देवाश्च देव्यश्च मुनयश्चैव भावजाः ॥ ८८ ॥
सर्वे प्रादुर्भवन्त्यत्र तेन गुप्तं सदा कुरु ।
द्विविधं चैव तत् पीठं गुप्तं व्यक्तं महेश्वरि ! ॥ ८९ ॥
व्यक्ताद् गुह्यं महापुण्यं दुरापं साधकोत्तमैः ।
व्यक्तं सर्वत्र देवेशि ! लभते कुलसुन्दरैः ॥ ९० ॥

(पीठपूजा)

पीठस्थानों में कामरूप पीठ ही श्रेष्ठ है और महाफलदायक है । हे महेश्वरी ! जो एकबार भी कामरूप में देवी का पूजन करता है, उसका पूजन सफल हो जाता है और लक्ष्मीदेवी उसके गृह में निश्चय निवास करती हैं । कामरूप की तुलना में कामाख्या योनिमण्डल में अर्चना करने पर सौ गुना फल प्राप्त होता है ।

हे महादेवी ! कामाख्या योनिमण्डल की अर्चना का फल इससे अधिक है और क्या कहूँ । वहाँ तो अनन्तगुणयुक्ता तारिणी देवी स्वयं निवास करती हैं । इस सर्वसुखावह गुप्त पीठस्थान के सम्बन्ध में ब्रह्मा ने स्वयं भी कहा है । उसी पीठ से देव-देवी-मुनिगण का प्रादुर्भाव हुआ है । अतः इसे सर्वदा गोपनीय ही रखना चाहिए । हे महेश्वरी ! कामाख्या योनिपीठ दो प्रकार की है—गुप्त तथा व्यक्त । व्यक्त की तुलना में गुप्तपीठ अत्यन्त प्रभावशाली तथा पुण्यदायक है । यह उच्चतर साधकों के लिए भी दुर्लभ है । हे देवेशी ! कुलसाधकगण को व्यक्त योनिपीठ (कुलयुवती के रूप में) सर्वत्र ही प्राप्त हो जाती है ॥८५-९०॥

एकश्चेत् कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरवि ! ।
सर्व एव सुराः पूज्याः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ९१ ॥
एका चेद् युवती चैव पूजिता चावलोकिता ।
सर्व एव परा देवाः पूजिताः कुलभैरवि ! ॥ ९२ ॥
आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्णो विशेषतः ।
न पूजयति चेत् कान्तास्तदा विघ्नैर्विलिप्यते ॥ ९३ ॥

हे भैरवी ! यदि योनिपीठ में एक ही कुलशास्त्रज्ञ व्यक्ति हो, तब भी वह समस्त देवताओं के देवताओं द्वारा भी पूजनीय है। यह निःसंदिग्ध तथ्य है। हे कुलभैरवी ! यदि वहाँ एक कुलयुवती भी पूजित हो रही हो, उस स्थिति में वहाँ समस्त परादेवी पूजित हो रही हैं—यह समझना चाहिए।

तारिणी की पूजा के आदि, मध्य तथा अन्त में एक लाख जप पूर्ण न होने तक जो साधक कुलयुवती का पूजन नहीं करता, वह अनेक विघ्नों से घिर जाता है ॥ ९१-९३ ॥

पूर्वार्जितं फलं नास्ति का कथा परजन्मनि।
नरशक्तिं पक्षिशक्तिं पशुशक्तिञ्च भैरवि ! ॥ ९४ ॥
पूजयेद् द्विगुणं कर्म सगुणं साधयेद् यतः।
पुरश्चरणकाले तु यदि स्यात् पीठदर्शनम् ॥ ९५ ॥
तदा यत्र पीठपूजा मनसा न हि जायते।
देवीकोट्टे महाभागामुड्डीयाने च भैरवीम् ॥ ९६ ॥
योगनिद्रां कामरूपे महिषासुरमर्दिनीम्।
कात्यायनीं कामभूमौ कामाख्यां कामदायिनीम् ॥ ९७ ॥
जालन्धरे च पूर्णेशीं पूर्णशैले च चण्डिकाम्।
कामरूपे ततो देवि ! पूजा दिक्करवासिनी ॥ ९८ ॥

ऐसे व्यक्ति के पूर्वजन्म के पुण्यकर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इस जन्म के फल की तो बात ही क्या ? नरशक्ति, अश्वशक्ति तथा पशुशक्ति की द्विगुण पूजा करे। इस स्थिति से सगुण साधन की प्राप्ति होती है। यदि पुरश्चरण के समय भाग्यवशात् योनिपीठ का दर्शन प्राप्त हो जाता है, उस स्थिति में देवीकोट में महाभागा की, उड्डीयान में महाभैरवी की, कामरूप में योगनिद्रा की, कामभूमि में महिषासुरमर्दिनी तथा कात्यायनी की, कामाख्या में कामदायिनी की, जालन्धर में पूर्णेशी की तथा पूर्णशैल में चण्डिका की मानसिकी पूजा करे। हे देवेशी ! तदनन्तर कामरूप में दिक्करवासिनी की पूजा करने का विधान है ॥

अथवा कामरूपस्य दर्शनं यदि भाग्यतः।
तदा भगादिदेवीनां पूजा तत्र विधीयते ॥ ९९ ॥
यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिः प्रजायते।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ॥ १०० ॥
भगिनीं भगजिह्वाञ्च भगास्यां भगमालिनीम्।
भगदन्तां भगाक्षीञ्च भगकर्णां भगात्मिकाम् ॥ १०१ ॥
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम्।
सम्पूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च ॥ १०२ ॥

यदि भाग्य से पुरश्चरण के समय योनिपीठ परिलक्षित हो जाती है, उस स्थिति में योनिपीठ में इन देवियों का पूजन करना होगा—भगिनी, भगजिह्वा, भगास्या, भगमालिनी, भगदन्ता, भगाक्षी, भगकर्णा, भगात्मिका, भगनासा, भगस्तनी, भगस्था तथा भगसर्पिणी । तदनन्तर गन्ध आदि से इस योनिपीठ में गुरु की भी मानसिक पूजा करना उचित है ।। ९९-१०२ ।।

(शिवाबलिः)

नमस्कृत्य विधानेन स्वयमक्षोभितः प्रिये ! ।
शिवाबलिश्च दातव्यः पशुरूपा सनातनी ।। १०३ ।।
बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः ।
मांसप्रदानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ।। १०४ ।।
काली कालीति वक्तव्यं तद्रूपा शिवरूपिणी ।
पशुरूपधरा याति परिवारगणैः सह ।। १०५ ।।

(शिवाबलि)

हे प्रिये ! तत्पश्चात् विधानपूर्वक नमस्कार करके साधक स्वयं शान्तचित्त होकर पशुरूपा (शृगाली) सनातनी को शिवाबलि प्रदान करे । साधक बिल्वमूल में, प्रान्तर में अथवा श्मशान में सन्ध्यासमय काली-काली का उच्चारण करके मांस का नैवेद्य अर्पित करे । इसे शिवाबलि कहा जाता है । इस प्रकार 'काली-काली' का उच्चारण करने पर शिवारूपिणी (शृगाली) महामाया परिवार-वर्ग के साथ उस स्थान पर आ जाती हैं ।। १०३-१०५ ।।

भुक्त्वा रौति यदीशान्यां मुखमुत्तोल्य सुस्वरम् ।
तदैव सफलं तस्य नान्यथा कुलभूषणे ! ।। १०६ ।।
अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् ।
नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ।। १०७ ।।

हे कुलभूषणे ! यदि शिवागण बलि का भक्षण करके ईशानकोण की ओर मुख उठाकर सुस्वर में चीत्कार-ध्वनि करती हैं, उस स्थिति में यह शिवाबलि सफल है । यह कभी भी अन्यथा नहीं होता ।

शिवा को प्रतिदिन अन्नदान करने से उन्हें तुष्टि प्राप्त हो जाती है । प्रतिदिन नित्यश्राद्ध, सन्ध्या, वन्दना तथा तर्पण करना चाहिए ।। १०६-१०७ ।।

तत्रैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने ।
पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ।। १०८ ।।
शिवारावेण तस्मात्तु सर्वं नश्यति निश्चितम् ।
जपपूजाविधानन्तु यत्किञ्चित् सुकृतानि च ।। १०९ ।।

कुलसेवियों को नित्य कूलपूजन करना चाहिए । जो साधक पशुरूपा शिवा-देवी की निर्जन स्थान में प्रतिदिन अर्चना नहीं करता, उसका शिवारव के द्वारा समस्त विनाश होना निश्चित है । इसके अभाव में उसकी जपपूजा का तथा समस्त सुकृत का विनाश हो जाता है ॥१०८-१०९ ॥

गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ।
एकया भुज्यते यत्र शिवया देव ! भैरवि ! ॥ ११० ॥
तत्रैव सर्वदेवीनां प्रीतिः परमदुर्लभा ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं पूजनं महत् ॥ १११ ॥
राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ।
शुभाशुभाणि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ॥ ११२ ॥

साधक के जितने भी सुकृत हैं, उसे शिवा ले लेती हैं और साधक को शाप देकर निर्जन में रोदन करने लगती हैं । अतः हे भैरवी ! जहाँ एक भी शिवा का पूजन होता है, वहाँ परम दुर्लभ सभी देवियों की प्रसन्नता की वर्षा होती है । अतः सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा शिवार्चनारूपी कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए ।

राजभय उपस्थित होने पर, देशान्तर गमन अथवा अन्य किसी भी कारण से भय उपस्थित हो जाने पर भविष्यत् शुभाशुभ-निर्णयार्थ शिवा की प्रसन्नता के लिए बलि देनी चाहिए ॥ ११०-११२ ॥

गृह्ण देवि ! महाभागे ! शिवे कालाग्निरूपिणि ! ।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥ ११३ ॥
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनः प्रिये ! ।
यदि नो भुज्यते देवि ! तदा नैव शुभं भवेत् ॥ ११४ ॥
शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः ।
आचारनियमं देवि ! शृणुष्वावहिता ततः ॥ ११५ ॥

'गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपीणि ! । शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव' ॥ यह कहते हुए शिवाबलि प्रदान करे, जिससे साधक को अपने शुभाशुभ कर्मों के फल का ज्ञान हो सके । हे शिवे ! यदि शिवा इस बलि का भक्षण नहीं करती, उस स्थिति में कोई भी शुभफल नहीं होता । यदि शिवा समस्त बलि का भक्षण कर लें, उस अवस्था में साधक को शुभफल प्राप्त होता है । हे शिवे ! अब सावधान मन से प्रतिदिन की कुलाचार-विधि को सुनो ॥ ११३-११५ ॥

(दैनन्दिनस्य आचारः)

प्रातरुत्थाय मन्त्रज्ञः कुलवृक्षं प्रणम्य च ।
शिवपद्मे गुरुं ध्यात्वा तत्सुधाप्लावितं स्मरेत् ॥ ११६ ॥

(दैनन्दिन के आचार)

मन्त्र का ज्ञाता साधक प्रातः उठकर कुलवृक्ष (इसका वर्णन आगे वाले ११९वें श्लोक में अंकित है) को प्रणाम करे। तदनन्तर सहस्रार में गुरु का ध्यान करके सहस्रारच्युत सुधा द्वारा सर्वदेह के सिंचन होते रहने की भावना करे ॥ ११६ ॥

मानसैरुपचारैस्तु तमाराध्य निरामयः।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभावयेत् ॥ ११७ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां सुधाप्लावितविग्रहाम्।
तत्प्रभापटलव्याप्तं स्वशरीरं विचिन्तयेत् ॥ ११८ ॥
श्लेष्मातककरञ्जाख्यनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः।
बिल्वो वटोऽप्यशोकश्च इत्यष्टौ कुलपादपाः ॥ ११९ ॥

मानसिक पूजन द्वारा सहस्रार में स्थित गुरु का पूजन करना चाहिए। तदनन्तर कोटिसूर्यप्रभा युक्त तथा सुधाप्लावनरूपा मूलविद्यारूपिणी कुल-कुण्डलिनी का चिन्तन मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक करके उसकी दीप्ति से साधक स्वशरीर को परिव्याप्त समझे और स्वयं को उसकी प्रभा से प्रभान्वित हुआ मान ले।

श्लेष्मातक (लिसोड़ा), करंज, नीम, पीपल, कदम्ब, बेल, बरगद तथा अशोक—इनको कुलवृक्ष कहा जाता है ॥ ११७-११९ ॥

बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् ॥ १२० ॥

बालिका, यौवन से उन्मत्त, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सिता अथवा महादुष्टा रूपिणी चाहे जैसी नारी क्यों न हो, उसे शक्तिरूपिणी जानकर मन ही मन प्रणाम करना चाहिए ॥ १२० ॥

तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा।
सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥ १२१ ॥
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम्।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियं तथा ॥ १२२ ॥

कभी भी नारी पर प्रहार नहीं करना चाहिए। नारी-निन्दा भी वर्जित है। नारी के प्रति कुटिल अथवा अप्रिय व्यवहार का भी त्याग करना चाहिए। ऐसा न करने पर साधक की सिद्धियाँ विनष्ट हो जाती हैं। नारी-समूह को सदैव देवी के समान, प्राण के समान, भूषण के समान तथा संगिनी के समान माने। यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी इसी प्रकार समझे ॥ १२१-१२२ ॥

विपरीतरत्यासक्ता भाविता हृदयोपरि ।
तद्धस्तारचितं पुष्पं तद्धस्तारचितं जलम् ।। १२३ ।।
तद्धस्तारचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ।
अन्यमन्त्रपुरस्कारं निन्दाञ्चैव विवर्जयेत् ।। १२४ ।।

नारी का चिन्तन कुलकुण्डलिनी के समान विपरीत रति से आसक्त होकर ऊर्ध्व में अनाहतचक्र-पर्यन्त उत्थितरूपेण चिन्तन करे और वहाँ शिव से युक्त भावना करे । ऊर्ध्व से निम्नस्थ गति को स्वाभाविक रति कहा जाता है । निम्नस्थ केन्द्र से ऊर्ध्व की ओर गति को विपरीत रति कहते हैं। यहाँ मूलाधार से अनाहत की उर्ध्वगति को विपरीत रति कहा गया है। नारी के हाथ से सजाये गये पुष्प, नारी के हाथ से लाया गया जल, नारी के हाथ से रचित भोज्यपदार्थों को देवी-देवता को निवेदित करना चाहिए । अन्य मन्त्रों की निन्दा तथा प्रशंसा से भी विरत रहना चाहिए ।। १२३-१२४ ।।

एतदन्यतमं ध्यात्वा सोऽपि स्यात् फलपूर्णभाक् ।
न भोक्तव्यं न वा कार्यं न चारणमितस्ततः ।। १२५ ।।
भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा तथैव च ।
बलिदानं विना देवि ! हिंसां सर्वत्र वर्जयेत् ।। १२६ ।।

इस प्रकार से किसी भी नारी का चिन्तन करने पर साधक को पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ-वहाँ भोजन करना तथा व्यर्थ विचरण रूपी निष्फल कार्य न करे ।

अकारण प्राणियों की हिंसा तथा पशुहिंसा करना उचित नहीं है। हे देवी ! बलिदान के अतिरिक्त अकारण हिंसा सर्वदा वर्जित है ।। १२५-१२६ ।।

(समयाचारः)

अथोच्यते महादेवि ! समयाचारस्तत्त्वतः ।
श्रृणु देवि ! रहस्यं मे समयाचारलक्षणम् ।। १२७ ।।

(समयाचार)

हे महादेवी ! अब मैं तत्त्वतः समयाचार का वर्णन करता हूँ। हे देवी ! समायाचार का रहस्य तथा उसके लक्षण सुनो ।। १२७ ।।

येन विना न सिध्यन्ति मन्त्राः कल्पशतैरपि ।
मानवः कुलशास्त्राणां कुलाचारानुचारिणाम् ।। १२८ ।।
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ।
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा ।। १२९ ।।

समयाचार का सम्यक् रूप से प्रतिपालन न होने पर कुलशास्त्र-कथित कोई विषय अथवा कुलाचारी समुदाय का कोई भी मन्त्र सिद्धि नहीं देता।

साधक को सर्वदा उदारचित्त तथा वैष्णवाचारपरायण होना चाहिए। दूसरों के द्वारा अपनी निन्दा के प्रति सहिष्णु होना चाहिए। सर्वदा परोपकार में निरत रहना चाहिए ॥ १२९ ॥

पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे।
चतुष्पथे सभामध्ये यदि दैवात् गतिर्भवेत् ॥ १३० ॥
क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम्।
गृध्रं दृष्ट्वा महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः ॥ १३१ ॥
क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम्।
कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च ॥ १३२ ॥
कृशोदरि! महाचण्डे! मुक्तकेशि! बलिप्रिये!।
कुलाचारप्रसन्नास्ये! नमस्ते शङ्करप्रिये! ॥ १३३ ॥

यदि दैववशात् कभी पर्वत, अरण्य, निर्जनस्थान, शून्यमण्डप, चौराहा अथवा सभा में जाना पड़े, उस स्थिति में क्षण-पर्यन्त देवी का ध्यान करके मन्त्र जप करते हुए तारिणी को प्रणाम करके निश्चिन्त होकर गन्तव्य स्थल की ओर जाये। गीध पक्षी के दर्शन होने पर मन ही मन महाकाली को नमस्कार करे। यमदूतिकारूपी जम्बुकी के दिखलायी देने पर मन ही मन क्षेमंकरी को नमस्कार करे। कुरर पक्षी, बाज, भूकाक और काले बिलाव का दर्शन होने पर मन ही मन क्षेमंकरी का ध्यान करके १३३वें श्लोक का पाठ करे ॥ १३०-१३३ ॥

श्मशानञ्च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन्।
प्रणम्यानेन मन्त्रेण मन्त्री मन्त्रफलं लभेत् ॥ १३४ ॥

श्मशान अथवा शव का दर्शन होने पर (श्मशान में) उसकी प्रदक्षिणा करे। और—

घोरदंष्ट्रे! करालास्ये! किनिशब्दप्रणादिनि!।
घुरघोररवास्फारे! नमस्ते चितिवासिनि! ॥ १३५ ॥

इस मन्त्र से देवी को प्रणाम करे। इससे मन्त्रसाधक शीघ्र मन्त्रफल को प्राप्त कर लेता है ॥ १३५ ॥

रक्तपुष्पां रक्तवस्त्रां विलोक्य त्रिपुरात्मिकाम्।
प्रणम्य दण्डवद् भूमाविमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १३६ ॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशे! त्रिपुरे! भयनाशिनि!।
भाग्योदयसमुत्पन्ने! नमस्ते वरवर्णिनि! ॥ १३७ ॥

रक्तपुष्पा तथा रक्तवस्त्रयुता त्रिपुरात्मिका नारी (जिसे त्रिपुरामन्त्र सिद्ध हो उसे त्रिपुरात्मिका नारी कहते हैं।) का दर्शन करने पर मन ही मन दण्डवत् प्रणाम करते हुये १३७वाँ श्लोक पढ़े ॥ १३६-१३७ ॥

कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम् ।
हस्ताश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपूरुषान् ॥ १३८ ॥
महिषं कुलनाथञ्च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ।
जय देवि जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते ! ॥ १३९ ॥
भक्तेभ्यो वरदे ! देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तु ते ।
मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यमांसं वरस्त्रियम् ॥ १४० ॥
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृशेन्मनुम् ।
रोगविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये ॥ १४१ ॥
नमामि वरदे देवि ! मुण्डमालाविभूषिते ! ।
कुलभक्तप्रसन्नास्ये ! शङ्करप्राणवल्लभे ! ॥ १४२ ॥
करालवदने ! श्यामे ! समस्ते सुरसुन्दरि ! ।
रक्तमांससमाकीर्णवदने ! त्वां नमाम्यहम् ॥ १४३ ॥

मार्ग में कालावस्त्र, कालापुष्प, राजा, राजपुत्र, हाथी, अश्व, रथ, शस्त्र, अस्त्र, वीरपुरुष महिष अथवा शिवविग्रह देखने पर इस मन्त्र का जप करे ।

जयदेवि ! जगद्धात्रि ! त्रिपुराद्ये ! त्रिदैवते ! ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि ! महिषघ्नि ! नमोऽस्तु ते ॥

मद्य का पात्र, मछली, मांस तथा उत्तम स्त्री का दर्शन करने पर निम्नलिखित मन्त्र से भैरवी देवी को प्रणाम करते हुए मूलमन्त्र का उच्चारण करे । प्रणाम मंत्र—'रोगविघ्नविनाशाय……………से लेकर १४३वें श्लोक तक' ॥ १३८-१४३ ॥

एतेषां दर्शनाद्देवि ! यदि नैवं प्रकुर्वते ।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते ॥ १४४ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये पुरश्चरणप्रकरणं नाम एकादशः पटलः ॥

हे देवी ! यदि उक्त वस्तुओं को देखने पर भी साधक शक्तिमन्त्र का उच्चारण कर उन्हें प्रणाम नहीं करता, तो उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १४४ ॥

एकादश पटल समाप्त ।

द्वादशः पटलः

(काम्यानुष्ठाननिर्णयः)

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् ! देवदेवेश ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि षट्कर्मसिद्धिलक्षणम् ।। १ ।।

देवी कहती हैं—हे देवदेवेश ! हे सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! अब षट्कर्म सिद्धि के लक्षणों को सुनने की इच्छा है ।। १ ।।

श्री ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सुन्दरि ! ।
सिद्धमन्त्रैः प्रकुर्वीत काम्यकर्माणि नान्यथा ।। २ ।।
सिद्धलक्षं यदा देवि ! उच्यते तदशेषतः ।
मनोरथानामक्लेशसिद्धिः सिद्धिश्च ईरिता ।। ३ ।।

ईश्वर कहते हैं—हे देवी ! हे सुन्दरी ! तुमने मुझसे जो पूछा, उसे कहता हूँ, श्रवण करो । केवल सिद्धमन्त्र के माध्यम से काम्य कर्मों को करे । इससे विपरीत आचरण नहीं करे । अर्थात् असिद्ध मन्त्र के द्वारा कभी भी काम्यकर्म करना उचित नहीं है ।

अब मैं विशेषतः मन्त्रसिद्धि का वर्णन करता हूँ । बिना प्रयास के मनोरथ सिद्धि को मन्त्रसिद्धि कहते हैं ।। २-३ ।।

ख्यातिर्भूषणवाहादिलाभः सुचिरजीविता ।
आरोग्यमतिसंवादं सहिष्णुत्वं कृतज्ञता ।। ४ ।।
प्रत्यक्षसिद्धयः प्रोक्ताः सिद्धिमन्त्रस्य भामिनि ! ।
सिद्धमन्त्रेण कर्त्तव्याः प्रयोगा नान्यथा प्रिये ! ।। ५ ।।

मन्त्रसिद्धि से प्रसिद्धि, भूषण, वाहन, अतिदीर्घ जीवन, आरोग्य, परस्पर बातचीत का सुख, सहिष्णुता तथा कृतज्ञता प्राप्त हो जाती है । हे भामिनी ! इन मंत्रों की प्रत्यक्ष सिद्धि होती है । सिद्धमन्त्र से काम्यकर्म का अनुष्ठान करे । हे प्रिये ! इसके विपरीत कभी न करे ।। ४-५ ।।

होमस्तर्पणपूजा च भावना जप एव हि ।
मन्त्रस्य चरणञ्चैव मारणोच्चाटने तथा ।। ६ ।।
एतानि काम्यकर्माणि प्रयोगेण समाचरेत् ।
शान्ति पुष्टि तथा वश्यमाकर्षणचतुष्टयम् ।। ७ ।।

षट्कर्माणि प्रयोक्तानि निग्रहे नियमं तथा।
रोगकृत्याग्रहादीनां विनाशः शान्तिरीरिता ॥ ८ ॥
पुष्टिर्धनजनादीनां ज्ञानादीनाञ्च कथ्यते।
जनसंवलनं वश्यमाकर्षणात्मसात्कृतम् ॥ ९ ॥

काम्य कर्मानुष्ठान के प्रयोग में, मारण-उच्चाटन अथवा मन्त्र के अन्य काम्य आचरण में सर्वदा होम-तर्पण-पूजा-ध्यान तथा जप करे। शान्ति-पुष्टि-वशीकरण तथा आकर्षण कार्य में भी उक्त नियमों का पालन करना चाहिए।

निग्रहकरण तथा निधन भी षट्कर्मों में ही परिगणित है। रोगाक्रमण-कृत्या (आभिचारिक कर्म) अथवा ग्रहों के खराब प्रभाव का विनाश करने के लिए जो कार्य किया जाता है, उसे शान्तिकर्म कहते हैं।

धन-जन-ज्ञान-विद्या-लोकप्रियता आदि की वृद्धि हेतु किये गये कर्म को पुष्टिकर्म कहते हैं। जनगण के आकर्षण को वशीकरण, आकर्षण तथा आत्मसात् करना कहते हैं ।। ६-९ ॥

उच्चाटनादिकरणं निग्रहः परिकीर्त्तितः।
जनानां प्राणहरणं मारणं परिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

उच्चाटन आदि कार्यों को निग्रहकरण कहते हैं। लोगों के प्राण लेने वाले कार्य को मारण कहा जाता है ॥ १० ॥

ऋतु-निर्णय

सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने ॥ ११ ॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाद्यं शरद्वसन्तशैशिराः।
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वशकर्मणि ॥ १२ ॥

सूर्योदय से प्रारम्भ करके प्रत्येक चार घण्टे की एक-एक ऋतु होती है। अर्थात् सूर्योदय के प्रथम चार घण्टे में वसन्त, तदनन्तर चार घण्टा ग्रीष्म, तत्पश्चात् चार घण्टा वर्षा, तत्पश्चात् चार घण्टा शरत्, तदनन्तर चार घण्टा हेमन्त और अन्तिम चार घण्टे में शिशिर ऋतु होती है। इस प्रकार से सभी ऋतु होते हैं। हेमन्त में शान्तिकर्म तथा वसन्त में वशीकरण कर्म करें ॥११-१२॥

शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयः शरन्मारणकर्मणि ॥ १३ ॥

शीतऋतु में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन और शरद्ऋतु में मारणकर्म किया जाता है ॥ १३ ॥

षट्कर्म के समय देवी का वर्ण

वश्ये चाकर्षणे स्तम्भे रक्तवर्णं विभावयेत्।
निर्वशीकरणे शान्तौ सितञ्च परिभावयेत् ॥ १४ ॥

पीतं स्तम्भनकार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मरेत् ।
उन्मादे शुक्लगोपाभं कृष्णवर्णन्तु मारणे ॥ १५ ॥

वशीकरण, आकर्षण तथा स्तम्भन के लिए देवी के रक्तवर्ण रूप का ध्यान करना चाहिए। शान्ति के लिए तथा वशीकरण को नष्ट करने के लिए देवी की श्वेतवर्णरूपा धारणा करे।

स्तम्भनार्थ देवी का पीतवर्णा तथा उच्चाटनार्थ देवी का धूम्रवर्णा ध्यान करे। उन्मादकार्य में देवी का गोपकीटवर्णा (वीरबहूटी कीड़े के रंगवाली) और मारणार्थ कृष्णवर्णा ध्यान करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

देवी के अवस्थान की स्थिति

उत्थितं मारणे ध्यायेत् सुप्तमुच्चाटने तथा ।
उपविष्टं सुरेशानि ! वश्यादौ परिचिन्तयेत् ॥ १६ ॥
आसीनं श्वेतवर्णस्तु शान्तिके परिचिन्तयेत् ।
यानमार्गे स्थितं कृष्णं तामसं परिकीर्त्तितम् ॥ १७ ॥
सात्त्विके मोक्षलाभानां राजसि राज्यमिच्छताम् ।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १८ ॥
मारणे विषसंहारे ग्रहभूतनिवारणे ।
उच्चाटने च विद्वेषे प्रभावस्तु प्रपूजयेत् ॥ १९ ॥

हे सुरेशानी ! मारणार्थ देवी की खड़ी हुई स्थिति की धारणा करे। उच्चाटन में सुप्ता तथा वशीकरणादि के लिए देवी की बैठी हुई स्थिति की धारणा करे।

शान्तिकार्य में देवी की श्वेतवर्णा तथा बैठी हुई धारणा करे। तामसकार्य में देवी चल रही हैं और उनका रूप कृष्णवर्णा है, ऐसा ध्यान करना चाहिए।

सत्त्वगुणसम्पन्न व्यक्ति मोक्षलाभार्थ पूजा करता है। रजोगुणी राज्यलाभार्थ और तमोगुणी शत्रु-व्याधि–विष-ग्रहभूतप्रभावनाशार्थ अथवा उच्चाटन-विद्वेषणार्थ देवी का पूजन करते हैं ॥ १६-१९ ॥

षट्कर्म में मन्त्र

अन्ते नाम भवेन्मन्त्रं पल्लवं परिकीर्त्तितः ।
मन्त्रान्ते नामसंस्थानं योग इत्यभिधीयते ॥ २० ॥
शान्तिके पौष्टिके वक्ष्ये प्रायश्चित्ते विशोधने ।
मोहने दीपने योगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २१ ॥

मन्त्र के अन्त में साध्य व्यक्ति का नाम लगाने से वह पल्लव मन्त्र कहलाता है। मन्त्र के अन्त में साध्य का नाम युक्त करने की क्रिया को योग कहते हैं।

समस्त शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित्त, विशोधन, मोहन तथा दीपन के मन्त्रान्त में साध्य व्यक्ति का नाम जोड़कर कार्य करे ॥ २०-२१ ॥

स्तम्भनोच्चाटनोच्छेदविद्वेषे च स चोच्यते ।
मन्त्राभिमुख्यकरणे सर्वपापनिवारणे ॥ २२ ॥
ज्वरग्रहारिष्टकृत्याशान्तिके च स चोच्यते ।
सम्मोहने स एवाथ मन्त्राणामक्षराणि च ॥ २३ ॥
एकैकान्तरितं यत्तु ग्रथनं तत् प्रकीर्त्तितम् ।
तच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यन्ते सदा मनुः ॥ २४ ॥

स्तम्भन, उच्चाटन, विद्वेषण, उच्छेदकरण, आकर्षण, पाप-निवारण, ज्वर, ग्रहों का अरिष्ट-निवारण, कृत्या-नाशकरण, शान्तिकार्य तथा सम्मोहन मन्त्रों के अन्त में साध्य व्यक्ति का नाम जोड़कर कार्य करे । जब मन्त्र का एक अक्षर—साध्य व्यक्ति के नाम का एक अक्षर पुनः मन्त्र का एक अक्षर और साध्य के नाम का एक अक्षर—इस प्रकार से मन्त्राक्षर तथा साध्य व्यक्ति के नामाक्षर को रखा जाता है, तब इसे ग्रथन कहते हैं । शान्तिकर्म में इसी प्रकार मन्त्राक्षर एवं साध्यनामाक्षर को ग्रथित करना चाहिए ॥ २२-२४ ॥

तत् सम्पुटो भवेद् यत्तु यामलं परिभाषितम् ।
स्तम्भो मृत्युञ्जयोद्दिष्टो रक्षणादिषु सम्पुटे ॥ २५ ॥
द्वित्रिमन्त्राक्षरं तस्य मध्ये नामाक्षरं क्रमात् ।
ग्रथ्यते स विदर्भस्तु वश्याकर्षणपौष्टिके ॥ २६ ॥

साध्य नाम के आदि तथा अन्त में मन्त्र को सम्पुटित करना ही यामल है । स्तम्भन, मृत्युंजय, रक्षण आदि में सम्पुटित यामल मन्त्र ही व्यवहृत करे ।

जब मन्त्र के दो अथवा तीन अक्षर के पश्चात् क्रमशः साध्यव्यक्ति के दो अथवा तीन नामाक्षर को जोड़ा जाता है, तब उसे विदर्भ कहते हैं । वशीकरण, आकर्षण तथा पौष्टिक में विदर्भ मन्त्र प्रयुक्त किया जाता है ॥ २५-२६ ॥

एवं योगक्रमः प्रोक्तः कर्मकाले मनीषिभिः ।
वह्निकार्ये जपेत् स्वाहा नमः सर्वत्र पूजने ॥ २७ ॥
शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकर्षोच्चाटनमारणे ।
स्वधा स्वाहा वषट् हूञ्च वौषट् फडिति योजयेत् ॥ २८ ॥

मनीषी साधक षट्कर्म के लिए इसी प्रकार से मन्त्र का प्रयोग करते हैं । होम में मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाये और पूजनार्थ मन्त्र के अन्त में नमः शब्द लगाना चाहिए । शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, द्वेष, आकर्षण, उच्चाटन, मारण में क्रमशः स्वधा, स्वाहा, वषट्, हूँ, वौषट्, फट् को मन्त्र के अन्त में लगाये ॥ २७ ॥

षट्कर्म में आसन विधान

पद्मासनं पौष्टिके तु शान्तिके स्वस्तिकासनम् ।
आकृष्टे पार्ष्णिकं तद्वद् विशेषे शत्रुनिग्रहे ॥ २९ ॥
अर्द्धस्वस्तिकमुच्चाटे मारणादौ प्रशस्यते ।

पुष्टिकर्मार्थ पद्मासन, शान्तिकर्म हेतु स्वस्तिकासन, आकर्षण तथा शत्रुनिग्रहार्थ पार्ष्णिक आसन, उच्चाटन एवं मारणादि कर्म के लिए अर्द्धस्वस्तिकासन का प्रयोग करे ॥ २९ ॥

देवध्यान

शान्तिपौष्टिकवश्येषु सुन्दरि ! शोभनाशया ॥ ३० ॥
सर्वाभरणसन्दीप्ता प्राप्तकाममनोरथा ।
ध्यातव्या देवता सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजा ॥ ३१ ॥

शान्ति-पुष्टिकर्म में देवी का अत्यन्त सुन्दर, सुशोभना, उदारहृदया, सभी आभरणों से दीप्ता, प्राप्तकाममनोरथा, सुप्रसन्ना मुखकमल का ध्यान करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

आकर्षणे वरारोहा प्रसारणे प्रशस्यते ।
साध्यस्याकर्षणे द्वेषे भर्त्स्यमानो जनैरिह ॥ ३२ ॥
ताड्यमानो यमैर्दण्डैर्दर्शितस्तत्त्वकेन तु ।
उलूकवायसारिष्टेर्ग्रस्तमुच्चाटने रिपुम् ॥ ३३ ॥
स्तम्भने शिलयाक्रान्तं कृष्ये पर्णादिवत् स्मरेत् ।
व्याप्तश्च तक्षकै राजपुरुषस्य वपुर्यथा ॥ ३४ ॥
व्याघ्रेण हिंस्रकैर्वापि हन्यते मारणे रिपुः ।
जपञ्च कुरुते सम्यक् सन्दष्टौष्टपुटः क्रुधा ॥ ३५ ॥

आकर्षण में देवी को हाथ फैलाये हुए आकर्षणकारिणी तथा भर्त्स्यमानारूप से ध्यान करे । विद्वेषणार्थ देवी का ध्यान भर्त्सनाकारिणीरूप से करे ।

क्रूर कर्म के लिए यह ध्यान करना चाहिए कि देवी यमदण्ड द्वारा शत्रु को ताड़ित कर रही हैं । उच्चाटन कर्म में शत्रु तो उल्लू, काक तथा विविध अरिष्ट अमंगल द्वारा घिरा हुआ है, यह धारणा करे । स्तम्भन में शत्रु को शिला से आक्रान्त समझकर धारणा करना चाहिए । आकर्षण में अभीष्ट व्यक्ति को पत्ते के समान मानकर धारणा करे । मारण में शत्रु को सर्पपरिवेष्टितराज पुरुष द्वारा व्यापादित—व्याघ्र अथवा अन्य हिंसक जन्तुओं द्वारा निहत होते कल्पना करे । मारणार्थ जप करते समय दाँतों से ओठों को दबाकर क्रोध में जप करना चाहिए ॥ ३२-३५ ॥

तिथि एवं वार निर्णय

कर्म कुर्याद् यथान्यायं मन्त्री क्रूरेषु कर्मसु ।
पौष्टिकादीनि कर्माणि यद्वारतिथियोगतः ॥ ३६ ॥
प्रयोक्तव्यानि विधिना तच्च सम्प्रोच्यतेऽधुना ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥ ३७ ॥
बुधेज्यवारसंयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता ।
नवमी पौष्टिके शस्ता ह्यष्टमी नवमी तथा ॥ ३८ ॥
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रादिसंयुता ।
आकर्षणेऽप्यमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा ॥ ३९ ॥
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि ।
कृष्णा चतुर्दशी तद्वदटुष्टमन्दवारकाः ॥ ४० ॥

क्रूर कर्म के करते समय सर्वदा नियम से कार्य करे । पुष्टि आदि अन्य षट्कर्म कब करना चाहिए, वह कहता हूँ । द्वितीया-तृतीया-पंचमी अथवा सप्तमी पर पड़ने वाले बुधवार अथवा गुरुवार के दिन शान्तिकर्म करे ।

अष्टमी-नवमी-दशमी-एकादशी को जब रविवार अथवा शुक्रवार पड़े, तब पुष्टिकर्म करना उचित है । प्रतिपदा, नवमी तथा अमावस्या के दिन आकर्षण-कार्य करे ।

शनि अथवा मंगल युक्त पूर्णिमा अथवा कृष्णा चतुर्दशी युक्त मंगल एवं शनिवार विद्वेषणार्थ प्रशस्त हैं ॥ ३६-४० ॥

उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः ।
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा ह्यमावस्या तथैव च ॥ ४१ ॥
मन्दभौमदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ।
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा ॥ ४२ ॥
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ।
शुभग्रहोदये कुर्यात् शुभानि च शुभोदये ॥ ४३ ॥

उच्चाटनकार्य-सम्पादनार्थ उक्त तिथियों तथा प्रदोषकाल में कार्य करना विशेष लाभकारी होता है । मारण कर्म कृष्णपक्षीय चतुर्दशी, अष्टमी तथा अमावस्या को जब शनि अथवा मंगलवार पड़े तब करना चाहिए । पंचमी, दशमी अथवा पूर्णिमा को जब सोम अथवा बुधवार पड़े, तब स्तम्भनकर्म करना शुभ होता है । शुभ तिथि को शुभ कार्य का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ४१-४३ ॥

तर्पण

रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ।
मधुना तर्पणं प्रोक्तं सर्वकामप्रपूरकम् ।। ४४ ।।
मन्त्रसिद्धिकरं देवि ! महापातकनाशनम् ।
कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं हि तर्पयेत् ।। ४५ ।।
वशीकृत्य नृपान् सर्वान् भोगी स्यात् यावदायुषम् ।
घृतैः पूर्णायुषः सिद्‌ध्यै दुग्धैरारोग्यसिद्धये ।। ४६ ।।

शहद के द्वारा तर्पण करने पर सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । हे देवी ! शहद के द्वारा तर्पण-क्रिया महान् पापों का नाश करके मन्त्रसिद्धि देती है । कर्पूर-मिश्रित जल द्वारा भी तर्पण करे । इससे नृपति भी वश में हो जाते हैं और साधक को जीवन-पर्यन्त भोगसुख मिलता है । घृत के द्वारा तर्पण करने पर साधक को पूर्णायु मिलती है । रोगों से छुटकारा पाने के लिए सदा दुग्ध के द्वारा तर्पण करे ।। ४४-४६ ।।

अगुरुमिश्रितैस्तोयैः सर्वकालं सुखी भवेत् ।
नारिकेलोदकैर्मिश्रैस्तोयैः सर्वार्थसिद्धये ।। ४७ ।।
मरीचमिश्रितैरुष्णतोयैः शत्रून् विनाशयेत् ।
केवलैरुष्णतोयैस्तु शत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात् ।। ४८ ।।
ज्वरारिष्टो भवेत्तेन दुग्धसेकात् शमं नयेत् ।

अगुरु से मिश्रित जल से तर्पण समस्त सुख देता है । नारियल के जल से मिश्रित जल द्वारा किया तर्पण सर्वसिद्धिदाता है ।

गरम पानी में मिरिच का मिश्रण करके तर्पण करे । इससे तत्क्षण शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है ।

जब शत्रु को ज्वर तथा मृत्युभय, अमंगल उपस्थित हो जाय तो दुग्ध से तर्पण करने पर यह दोष समाप्त हो जाता है ।। ४७-४८ ।।

जप-विधान

हविष्याशी मुक्तकेशो जपादयुतमादरात् ।। ४९ ।।

हविष्याशी होकर खुले केशों वाली स्थिति में रहकर १० सहस्र मन्त्र का जप करना चाहिए ।। ४९ ।।

गद्यपद्यमयी वाणी तस्य सर्वविधा भवेत् ।
उच्चाटयति पिङ्गाक्षि ! सन्त्रासयति केकरा ।। ५० ।।

इस प्रकार के जप द्वारा साधक गद्य-पद्यमयी वाणी प्राप्त करता है । जप-काल में देवी का चिन्तन पिंगलवर्ण चक्षुयुक्त रूप में करे, इससे उच्चाटन सिद्ध

होता है। जब संत्रासन कर्म सिद्ध करना हो, उस स्थिति में देवी के नेत्र ऊर्ध्व की ओर देख रहे हैं, यह चिन्तन करे॥ ५०-५१॥

विद्रावयति मुक्ता स्यात् सन्त्रासयति घूर्णिता।
सङ्क्षोभयति सङ्क्रुद्धा सन्तापयति ह्युन्नता॥ ५१॥

जपकाल में देवी का उन्मुक्त स्वरूप चिन्तन करने से द्रावण सिद्ध होता है। उनके घूरते हुए नेत्रों का चिन्तन करने पर संत्रासन कर्म की सिद्धि होती है। क्रोधान्विता देवी का चिन्तन करने पर संक्षोभन तथा क्रुद्धा एवं उन्नतदेहा चिन्तन करने पर सन्तापन कार्य की सिद्धि होती है॥ ५१॥

सङ्कोचयति संरुद्धो पूरकं वा प्रबोधयेत्।
अत्र सर्वं प्रकर्त्तव्यं भावनामात्रचिन्तनम्॥ ५२॥
शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकं नरः।
कृत्वा पश्यति यं मन्त्रं तं कुर्याद्दासवज्जनम्॥ ५३॥

जप के समय देवी का चिन्तन अवरुद्धारूपेण करने पर संकोचसाधन सिद्ध होता है। इससे विपरीत अनवरुद्धारूपेण चिन्तन करने पर संकोचसाधन विदूरित हो जाता है। केवल चिन्तन के ही द्वारा जपकाल में सभी कार्य सिद्ध होने लगते हैं।

१०० बार मन्त्र जप करके गोरोचन के द्वारा तिलक करे। तत्पश्चात् साधक जिसे भी देखेगा, वह दास के समान उसका अनुगामी हो जाता है॥ ५२-५३॥

पुष्करिण्या जलेऽगाधे यष्टिकाष्ठं तमोग्रहे।
दन्तेनानीय तद्वर्णं कीलकं तेन कारयेत्॥ ५४॥
तेन मधुघृताक्तेन पद्मिनीपद्मपत्रके।
लिखेत् सूत्रावलीमध्ये मूलमन्त्रविदर्भितम्॥ ५५॥
तत्कुण्डे चतुरस्रे तु निक्षिप्य जुहुयादपि।
सहस्रं क्षीरनीराक्तं पद्मानां लोहितत्विषाम्॥ ५६॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पद्मयुग्मं तथैव च।
महापद्मे पदं ब्रूयात् पद्मावति पदं ततः॥ ५७॥
माया स्वाहा च मन्त्रेण यथापूर्वं बलिं हरेत्।
एवं यः कुरुते कर्म स स्यात् द्रुतकविर्वरः॥ ५८॥

पुष्करिणी सरोवर के अगाध जल में उग्र ग्रह का यष्टिकाष्ठ को दाँत से पकड़ कर लाकर उसके द्वारा शीघ्र कीलक करना चाहिए। (कल्पना करे कि यष्टिकाष्ठदन्त में वह उग्रग्रह फँसा है)। उसे मधु-घृत से लिप्त करके पद्मिनी के पद्मपत्र सूत्रावलि में मूल मंत्र को विदर्भित करके लिखे (विदर्भित करना २६वें

श्लोक में अंकित है)। उसे कुण्ड तथा चतुरस्र में निक्षेप करके होम करे। क्षीर एवं जल द्वारा लिप्त करके रक्ताभ पद्मपत्र (कमल की पंखुड़ी) द्वारा १००० होम करना चाहिए। पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करे। तदनन्तर दो बार 'पद्मे पद्मे' कहे। तदनन्तर 'महापद्मे' कहे। इसके पश्चात् 'पद्मावति' उसके बाद 'ह्रीं' तथा 'स्वाहा' कहे। सब मिलाकर मन्त्र है 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति ह्रीं स्वाहा'। इसके द्वारा पहले कही गयी विधि से बलि दे। ऐसा करने वाला शीघ्र ही कविश्रेष्ठ हो जाता है ॥ ५४-५८ ॥

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत्।
राजानं जपमात्रेण बलिना सकलं जगत् ॥ ५९ ॥
रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम्।
मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ॥ ६० ॥

विशेष-विशेष बलि देकर राजपत्नी को भी वशीभूत कर सकते हैं। केवल मन्त्रजप द्वारा राजा तथा बलि के द्वारा समस्त जगत् वशीभूत हो जाता है।

रम्भा (केला), चमेली, बिजौरानींबू सुगन्धद्रव्य मिश्रित करके प्रदान करे। अष्टमीतिथि को इन सब द्रव्यों द्वारा विशेष बलि देनी चाहिए ॥५९-६०॥

प्रयोगे बालमन्त्रोऽयं प्रयोगात् साधयेत् यदि।
अर्द्धरात्रे ततो नित्यं बलिं दद्याच्चतुष्पथे ॥ ६१ ॥

इस मन्त्र को प्रयोग द्वारा सिद्ध करने के लिए अर्धरात्रि में चौराहे पर नित्य बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

परसैन्यग्रहारिष्टरोगकृत्यानिवारणम्।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम् ॥ ६२ ॥
विकटदंष्ट्रे परं पक्षं मोहय द्वयमुच्चरेत्।
मारय खादय द्वन्द्वं हिंस द्वयं वदेत्ततः ॥ ६३ ॥
यो मां हिंसितुमुद्यतो योगिनीचक्रै-
स्तान् छेदय हूँ फट् स्वाहा।
परविद्यामाकर्षय आकर्षय छेदय छेदय
कपाले गृह्ण गृह्ण स्वाहा ॥ ६४ ॥

शत्रुसैन्यनिरोधार्थ, ग्रहारिष्ट तथा रोगकृत्यादि निवारणार्थ यह मन्त्र जपें—'ॐ उग्रतारे विकटदंष्ट्रे परपक्षं मोहय मोहय मारय मारय खादय खादय हिंस हिंस यो मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान् छेदय हूँ फट् स्वाहा परविद्यामाकर्षय आकर्षय छेदय छेदय कपाले गृह्ण गृह्ण स्वाहा' ॥ ६२-६४ ॥

अथोच्यते महादेवि ! निग्रहाद्युपयोगतः।
श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि ॥ ६५ ॥

कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयाद्रक्ततन्तुना ।
शताभिमन्त्रितं देवि ! निक्षिपेद् वैरिवेश्मनि ।। ६६ ।।
सप्ताहाभ्यन्तरे तेषामुच्चाटनमिदं महत् ।
नरास्थिन विलिखेन्मत्रं क्षीरयुक्तहरिद्रया ।। ६७ ।।
सहस्रं परिसञ्जप्य निशायां शनिवासरे ।
निक्षिप्यते यस्य गेहे मृत्युस्तस्य द्विमासतः ।। ६८ ।।

हे महादेवी ! अब निग्रह आदि उपायों को सुनो । मंगलवार की रात्रि को श्मशान की राख लाकर उसे कृष्णवर्ण वस्त्र से लपेटकर तत्पश्चात् इसे रक्तसूत्र से बाँधकर १०० बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करते हुए शत्रु के घर में फेंक दें । एक सप्ताह में ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है । हल्दी-मिश्रित दूध द्वारा मनुष्य की हड्डी में मन्त्र लिखकर उसे १००० बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । उसे शनिवार को जिसके घर में फेंका जाता है, उसकी दो महीने में मृत्यु हो जाती है ।। ६५-६८ ।।

क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्यात् जीवहानिस्तुरङ्गमे ।
धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयः ।। ६९ ।।

इसी प्रकार मन्त्र से अभिमन्त्रित यह अस्थि यदि खेत में फेंक दी जाती है, तब खेती की हानि, अश्वशाला में फेंकने पर घोड़ों का नाश, धनागार में फेंकने से धननाश और ग्राम में फेंकने पर ग्रामनाश हो जाता है ।। ६९ ।।

क्षीरस्तु श्येनविट्युक्तो विड्वा लवणसंयुतः ।
द्वेषे तु विलिखेन्मत्रं प्रेतकर्पटके सुधीः ।। ७० ।।
द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम तत्र द्वेषो महान् भवेत् ।
मन्त्रं लिखेन्महादेवि ! हल्लेखारेफमध्यतः ।। ७१ ।।
अमुकं मारय मारय लिखित्वा सहस्रं परिजप्य च ।
द्वेषे त्वमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु कुरु इत्यास्ते जपं पार्वति ! ।।७२।।

दुग्ध के साथ बाज पक्षी की बीट अथवा विरिया नमक को मिलाकर मृतक मनुष्य की कपालास्थि पर विद्वेषणार्थ मन्त्र द्वारा साधक जिस व्यक्ति से जिसका विद्वेषण कराना है, उन दोनों का नाम लिखे । इससे उन दोनों के बीच तीव्र द्वेष हो जाता है। हे महादेवी ! मन्त्र में 'ह्री रं' लिखकर 'अमुकं मारय मारय' (अमुक के स्थान पर नाम लिखे) लिखे । मन्त्र के अन्त में पुनः 'ह्री रं' लिखकर इस मन्त्र का १००० जप करे । विद्वेषणार्थ दोनों व्यक्ति का नाम लिखे 'अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु कुरु' लिखे । अर्थात् 'ह्रीं रं अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु कुरु ह्रीं रं' ।। ७०-७२ ।।

उच्चाटनपदं प्रोक्तं पिङ्गाख्यं तदनन्तरम् ।
षट्कूटमन्त्रमुच्चार्य साध्यसंज्ञान्वितं पुनः ।। ७३ ।।
रिपुर्देशान्तरं याति काकपक्षी इवापरः ।
परमन्त्रवीर्यहानिप्रकारं शृणु कथ्यते ।। ७४ ।।
वह्निकूटे रिपोर्विद्यां लिखित्वा पत्रकेऽमले ।
श्मशाने मन्त्रमुच्चार्य पुटीकृत्य विदर्भ्य च ।। ७५ ।।
सहस्रनामभिर्जप्त्वा विद्या न च फलप्रदा ।
सिद्धयश्च विनश्यन्ति देवानामपि दुर्लभा ।। ७६ ।।
यन्मनुं तन्मनुं दिव्यं नरोदितः शशी यथा ।
क्षणे क्षणे तु तेजस्वी रिपुदृष्टिगतोऽपि च ।। ७७ ।।

प्रथमतः 'उच्चाटय' लगाये, तदनन्तर 'पिङ्ग' शब्द लगाये, तदनन्तर षट्कूट मन्त्र का उच्चारण करके पुनः शत्रु के नाम का उच्चारण करना चाहिए । इससे शत्रु भी काक पक्षी के समान अन्य देश में चला जाता है । अब दूसरों के द्वारा किये गये मन्त्र-प्रयोग को नष्ट करने के उपाय को कहते हैं, सुनो । वह्निकूट में शत्रुविद्या को निर्मल पत्र पर लिखे । श्मशान में मन्त्रोच्चारण करे । अब उस मन्त्र को २६वें श्लोक के अनुसार पुटित तथा विदर्भित करके सहस्र बार जप करे । अब शत्रुविद्या फलप्रदा नहीं रह जाती । शत्रु की दुर्लभ सिद्धि भी विनष्ट हो जाती है । यह मन्त्र दिव्य नवोदित चन्द्र के समान तेजस्वी होता जाता है ।। ७३-७७ ।।

रक्षा तथा शान्ति कवच

शान्तिकादौ लिखेन्मन्त्रं कथ्यते शृणु सुन्दरि ! ।
योनियुग्मे लिखेन्मत्रं मन्त्री हेमशलाकया ।। ७८ ।।

हे सुन्दरी ! शान्ति आदि कर्म के यन्त्र लिखने की प्रणाली कही जा रही है, उसे सुनो । मन्त्रसाधक पुरुष स्वर्ण की शलाका से एक-दूसरे के भीतर सन्निहित दो योनियन्त्र अंकित करे ।। ७८ ।।

क्लीबहीनान् दीर्घवर्णान् षट्कोणे विलिखेत्ततः ।
अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ।। ७९ ।।
अष्टवज्र भूपुरे च लिखेत्तत् साधकोत्तमः ।
सुवर्णपट्टभूर्जे वा रौप्ये वाप्यथ सुव्रते ! ।। ८० ।।
विलिखेद्धेमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम् ।
दूर्वाकाण्डेन वा लेख्यं दशमूलेन वा पुनः ।। ८१ ।।

तत्पश्चात् इस योनियन्त्र के बहिर्भाग में अष्टदल पद्म और उसके भी बाहर (एक के बाद एक) दो भूपुर अंकित करे । इस योनियन्त्र के षट्कोण

में आ ई ऊ ऐ औ अः अक्षर लिखे । तदनन्तर भूपुरद्वय के अष्टकोणों में अष्टवज्र का अंकन करे । हे सुव्रते ! साधकोत्तम को स्वर्ण, रौप्य (चाँदी) अथवा भोजपत्र पर हेमलेखनी (स्वर्णशलाका), दूर्वा की नोंक, अथवा दशमूल की कलम से अष्टगंध के घोल की स्याही द्वारा यह यन्त्र अंकित करना चाहिए ॥ ७९-८१ ॥

वेष्टितं पीतवस्त्रेण यत्नेन परिवेष्टयेत् ।
बध्नीयात् पट्टसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणम् ॥ ८२ ॥

तदनन्तर इस यन्त्र को प्रयत्नपूर्वक पीले वस्त्र से बाँध देना चाहिए । रेशमी सूत्र द्वारा बाँधकर बच्चे के गले का कण्ठभूषण जैसा बना लेना चाहिए (अर्थात् यह बच्चों के गले में बाँधा जा सकता है) ॥ ८२ ॥

स्त्रीणां वामभुजे चैवमन्येषां दक्षिणे भुजे ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत् ॥ ८३ ॥

इस कवच को स्त्री वाम भुजा में बाँध सकती है, परन्तु पुरुष सर्वदा दक्षिण भुजा में ही बाँधे । इस यन्त्र के प्रभाव से वन्ध्या को भी पुत्रप्राप्ति हो जाती है और निर्धन भी धनवान् हो जाता है ॥ ८३ ॥

इयं रक्षा पुरा बद्धा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः ।
प्रीत्यर्थं तारिणीदेव्याः सङ्ग्रामे जयकाङ्क्षिभिः ॥ ८४ ॥
कालिकामन्त्रतन्त्रोक्तान् प्रयोगानपि चाचरेत् ।
अत्रोक्तान् सम्यक् तत्रापि प्रयोगानपि चाचरेत् ॥ ८५ ॥

प्राचीन काल में गौतमादि मुनिगण इसी रक्षामन्त्र को बाँध कर ज्ञान प्राप्त कर सके थे । संग्राम में जयाकांक्षी व्यक्ति भी तारिणीदेवी की प्रसन्नता के लिए इस रक्षायन्त्र को अवश्य बाँधें ।

शान्ति-पुष्टि-रक्षा आदि कार्य में (यन्त्र के साथ) कालिका मन्त्र का प्रयोग भी करना चाहिए ॥ ८४-८५ ॥

यथा बालकसंस्कारो शृणु पर्वतनन्दिनि ! ।
सव्येन मधुलाजाभ्यां जिह्वायां बालकस्य च ॥ ८६ ॥
नाडिच्छेदात् तथा पूर्वं लिखेत् स्वर्णशलाकया ।
मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री ओष्ठे वा श्वेतदूर्वया ॥ ८७ ॥

हे पर्वतनन्दिनी ! अब उत्पन्न हुए बालक की संस्कार-विधि को सुनो । नाडीच्छेदन के पश्चात् मन्त्रसाधक दाहिने हाथ में सुवर्ण की शलाका अथवा दूर्वा लेकर मधु तथा लावा के घोल की स्याही से बालक की जिह्वा के अगले सिरे पर मूलमन्त्र को लिखे ॥ ८६-८७ ॥

वाक्योच्चारणमात्रेण वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् ।
मन्त्रमुच्चार्य प्रत्येकं पङ्क्ति कुर्यात् सुशोभनाम् ।। ८८ ।।

अब वह बालक जब से बोलने लगता है, तभी से तेजी से वाग्मिता और कवित्व शक्ति प्राप्त कर लेता है। मन्त्र का उच्चारण करते हुए सुशोभन रूप से बालक की जीभ के अगले भाग पर यह मन्त्र लिखे ।। ८८ ।।

आदौ संस्कारं कर्त्तव्यं तदन्ते विलिखेन्मनुम् ।
गन्धचन्दनपुष्पैश्च तदन्ते पूजयेच्छिवाम् ।। ८९ ।।

प्रथमतः उत्पन्न बालक का संस्कार करना चाहिए। तदनन्तर उसकी जिह्वा पर मन्त्र लिखे। तदनन्तर गन्ध-चन्दन-पुष्प द्वारा शिवा का पूजन करे ।। ८९ ।।

पितुर्भ्राता लिखेन्मन्त्रं मातुर्भ्राता तथैव च ।
पिता चैव लिखेन्मन्त्रं नान्य एव कदाचन ।। ९० ।।

बालक की जिह्वा पर पिता, पिता के भाई अथवा मामा के अतिरिक्त अन्य किसी को मन्त्र लिखना उचित नहीं है ।। ९० ।।

मातुः क्रोडे तु संस्थाप्य वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ।
शान्ति कुर्यात् बालकस्य ब्राह्मणैः सह संयुतः ।। ९१ ।।

बालक को वस्त्र से आच्छादित करके उसकी माता की गोद में सुलाये, तब ब्राह्मण के साथ बालक की शान्ति का विधान करे ।। ९१ ।।

इमं पुत्रं कामयतः कामजातमिहैव हि ।
देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं सज्जन्म च ।। ९२ ।।

शिवशान्तिस्तारायै शवेभ्यस्तारायै । रुद्रेभ्यस्तारायै शिवाय सेवय यशसे ।। ९३ ।।

।। इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये देवीश्वरसंवादे
काम्यानुष्ठाननिर्णयो नाम द्वादशः पटलः ।।

पुत्रकामी देवताओं का पोषण करते हैं। यह समस्त सत्जन्म है। शिवशान्ति तारा ही है। शव भी तारा ही है। रुद्र भी तारा है। यशार्थ शिव का सेवन करो ।। ९२-९३ ।।

। द्वादश पटल समाप्त ।

त्रयोदशः पटलः

(महाचीनप्रकरणम्)

श्रीदेव्युवाच—

महाचीनक्रमं देव ! कथितं भुवि दुर्लभम् ।
गान्धर्वञ्च महाचीनं यद्यद्गुप्ततरं महत् ॥ १ ॥
महाचीनक्रमं देव ! सूचितं न प्रकाशितम् ।
कथयस्व तदिदानीं यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ २ ॥

(महाचीनाचार)

देवी कहती हैं—हे देव ! पृथ्वी पर अत्यन्त दुर्लभ महाचीन-विधि का उल्लेख प्राप्त होता है । गन्धर्व तथा महाचीन तन्त्र में कथित होने पर भी यह अधिकतः गोपनीय है । महत् महाचीनक्रम की केवल सूचना ही प्राप्त होती है । वह यथाविधि प्रकाशित नहीं है । हे देव ! यदि मेरे प्रति आपका स्नेह है, तो उस स्थिति में उसका उपदेश प्रदान कीजिये ॥ १-२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

महाचीनक्रमं देवि ! सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
न वक्तव्यं त्रिभुवने शुद्धाभावेन भामिनि ! ॥ ३ ॥
केचिद्देवा नराः केचिद् दानवा यक्षराक्षसाः ।
नागलोकाः किन्नराश्च गन्धर्वाप्सरसाङ्गनाः ॥ ४ ॥
ये वा पशुमृगाः पक्षा ये केचिज्जीवजातयः ।
एते जरद्गवाः सर्वे परस्परखलात्मकाः ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे देवी ! समस्त तन्त्रों में महाचीनाचार गोपित है । हे भामिनी ! शुद्धि की अप्राप्यता के कारण इसे कहा नहीं जाता ।

देव, दानव, यक्ष, राक्षस, नागलोकवासी, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सरागण, पशु-पक्षी एवं मृगादि जीव भी परस्परतः एक-दूसरे के प्रति हिंसक भावना रखते हैं ॥ ३-५ ॥

कुकल्पनरताः सर्वे कुमार्गदर्शनोत्सुकाः ।
एतेषु कोऽपि विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चिन्मुखम् ॥ ६ ॥
न जानाति महादेवी कथं तत् कथयामि ते ।
नित्यमुक्तस्वभावो यस्तदर्थमिदमीरितम् ॥ ७ ॥
क्षमस्व देवि ! चार्वङ्गि ! वक्तव्यं किं त्वयानघे ! ॥ ८ ॥

ये सभी कुत्सित कल्पनारत रहते हैं और सदा कुमार्गदर्शनोत्सुक हैं। किसी को भी चिन्मय आनन्दस्वरूप ब्रह्मज्ञान नहीं है। हे महादेवी ! जो नित्य-मुक्तस्वभाव युक्त हैं, जिनके लिए नित्यमुक्त चित्स्वरूप ही काम्य है, उस ब्रह्मविद्या को कैसे कहा जा सकेगा ? हे देवी ! हे सुन्दर अंगों वाली ! मुझे क्षमा करो ! इसके अतिरिक्त और कोई प्रश्न करो ॥ ६-८ ॥

श्रीदेव्युवाच—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते गुरुरूपिणे।
नमस्ते वरद ! स्वामिन् ! करुणानिधये नमः ॥ ९ ॥
नान्यदेवरता ये च ये वा तत्पदकाङ्क्षिणः।
तेषामेवाधिकफलं मद्भक्तानां व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
सिंहव्याघ्रादयो ये च ये च विघ्नानुकारिणः।
रिपवश्च तथा सर्पाः ये चान्ये दुष्टजन्तवः ॥ ११ ॥
ते सर्वे विलयं यान्ति पतङ्ग इव पावके।
देहे दीपशिखाकारं हन्यते दुष्टजन्तुभिः ॥ १२ ॥

देवी कहती हैं—मैं शिवरूपी आपको नमस्कार करती हूँ। गुरुरूपी आपको नमस्कार है। वरद शिवरूपी स्वामी को नमस्कार है। करुणासागर आपको नमस्कार है।

जो अन्य देवताओं के उपासक हैं अथवा जो देवपद की इच्छा रखते हैं, उनकी तुलना में मेरे भक्तगण अधिक फल प्राप्त कर लेते हैं। मेरे भक्तों के विघ्नकारक सिंह, व्याघ्र, सर्प प्रभृति दुष्ट प्राणी तथा शत्रुगण उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि में कीट-पतंग भस्म हो जाते हैं। देहस्थित दीपशिखा-कृति चैतन्यमयी को दुष्टगण नहीं जान सकते ॥ ९-१२ ॥

केवलं प्रेमभावेन त्वयैवं कथितं प्रभो !।
किं वा शिवमये पूत्वा आसने पञ्चदेवताः ॥ १३ ॥
पृथिवी जलतां याति जलं तेजोमयं भवेत्।
तेजो वायुस्तथा सर्वमाकाशं तत्प्रकाशकम् ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! उस सम्बन्ध का उपदेश केवल प्रेम के कारण आप देते हैं। अथवा पंचभूतों को शिवासन पर प्रतिष्ठित करके पूजन करने पर पृथ्वी जल में जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में विलीन हो जाता है, जो परमाशक्ति का प्रकाशक है ॥ १३-१४ ॥

दानवा राक्षसा यक्षा ये चान्ये देवतागणाः।
राजानश्च तथा चान्ये सर्वे त्वत्पदवर्त्तिनः ॥ १५ ॥

आज्ञां भजन्ति गन्धर्वाः के पुनर्नरपुङ्गवाः ।
यत्र यत्र भवेद् वाञ्छा तत्तत् सिद्धिः करे स्थिता ॥ १६ ॥
सदा तां गोपितां वाणीं भयाद्भवति निश्चला ।
द्वन्द्वभावं परित्यज्य किमन्यद् बहुजल्पितैः ॥ १७ ॥

दानव, राक्षस, यक्ष, अन्य देवता, राजा अथवा अन्य सभी कोई उसी परमाशक्ति के अधीन हैं। उसी परमाशक्ति की आज्ञा का पालन गन्धर्व भी करते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या है? उनकी आराधना करने पर जिस क्षण इच्छा का उदय होता है, उसी क्षण इच्छा की पूर्ति हो जाती है। इस सम्बन्ध में सन्देह का त्याग कर दे ॥ १५-१७ ॥

मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ।
अन्ते च जायते गौरीलोके शिव इवापरः ॥ १८ ॥
सिद्धभावस्तु भक्त्या यः कथयस्व ममाग्रतः ।
न वक्तव्यमभक्ताय परभक्ताय पापिने ॥ १९ ॥

उस परमाशक्ति की आराधना से मोक्षार्थी को मोक्ष, धनार्थी को धन मिलता है। मृत्यु के पश्चात् साधक शिवतुल्य होकर गौरीलोक में जाता है।

जिस भक्तियुक्त भाव के द्वारा उस परमाशक्ति की प्राप्ति होती है, उसे कृपा करके कहिए। इसका प्रकाशन भक्तिहीन तथा अन्य देवता के भक्तों के के सम्मुख, किंवा पापियों से नहीं करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

महाचीनक्रमं देवि ! विविधं कथितं भुवि ।
स्नानादिमानसं शौचं मानसं प्रवरो जपः ॥ २० ॥
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ।
सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥ २१ ॥
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ।
वस्त्रासनस्थानगेहे देहस्पर्शादिवारिणः ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे देवी ! पृथ्वी में विविध प्रकार की महाचीन पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है। इस पद्धति के अनुसार स्नान आदि समस्त बाह्य शौच वर्जनीय हैं। केवल मानसिक शौच ही एकमात्र शौच तथा पवित्रता का साधन है। मानसिक जप ही श्रेष्ठ जप है।

इस विधि के अनुसार मानसपूजन ही श्रेष्ठ पूजन है और मानसिक तर्पण को ही तर्पण मानते हैं। इस मत के अनुसार आराधनार्थ सभी काल (समय) श्रेष्ठ हैं और कोई भी काल अशुभ नहीं है। इस साधना के लिए दिन-रात

सन्ध्या अथवा महानिशा का कोई भी नियम नहीं है। वस्त्र-आसन-स्थान-गृह अथवा देहस्पर्शजनित अशुद्धि आदि का भी कोई नियम नहीं है॥ २०-२२॥

शुद्धिं न चाचरेदत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत्।
नात्र शुद्धेरपेक्षास्ति न चामेध्यादिदूषणम्॥ २३॥

इस विधि के अनुसार कोई भी शुद्धि आदि आवश्यक नहीं है। केवल मन को वासनाहीन तथा निर्विकल्प कर लेना चाहिए॥ २३॥

य एनं चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिदम्।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते॥ २४॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः॥ २५॥
सर्वदा पूजयेद्देवीमस्नातः कृतभोजनः।
महानिश्यशुचौ देहे बलिं मन्त्रेण दापयेत्॥ २६॥

जो मन्त्रसाधक इस प्रकार से महाशक्ति का चिन्तन करते हैं, उनकी समस्त कामनाएँ सफल होती हैं और सभास्थल में उन्मुक्त रूप से गद्य-पद्यमयी वाणी उसके मुख से निकलने लगती है।

उस साधक का दर्शन करने मात्र से प्रतिपक्ष निष्प्रभ हो जाता है। राजा भी उसके दासत्व को स्वीकार करते हैं, अन्य लोगों की तो बात ही क्या है।

स्नान किये बिना तथा भोजन के अन्त में देवी का पूजन करे। महानिशा में अपवित्र देहयुक्त स्थिति में ही मूलमन्त्र द्वारा बलि प्रदान करे॥ २४-२६॥

स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः।
जपस्थाने महाशङ्ख निवेश्योर्द्ध्वं जपं चरेत्॥ २७॥
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र कुत्रापि भूतले।
भक्ष्यास्ताम्बूलमत्स्याश्च भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि॥ २८॥
मत्स्यमांसदधिक्षौद्रभक्ष्यद्रव्यं यथेप्सितम्।
भक्ताद्यशेषरूपाणि भुक्त्वा भोगांश्चरेज्जपम्॥ २९॥

कभी भी स्त्री-समूह से द्वेष नहीं करना चाहिए। विशेषतया उनकी पूजा करे। जपस्थान में महाशंख (नरकपालास्थि) रखकर उसके ऊपर बैठकर जप करे।

स्त्रीगमन करके, स्त्री का स्पर्श करके अथवा दर्शन करके समस्त साधना करे। ताम्बूल, मछली तथा अन्यान्य द्रव्य का यथारुचि भक्षण करे।

मत्स्य-मांस-दधि-मधु आदि तथा अन्य प्रकार के भोज्यद्रव्य का यथारुचि आहार करके तब जप में लगे॥ २७-२९॥

दिक्कालनियमो नात्र नित्यापि नियमो न च ।
न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ॥ ३० ॥
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने ।
नाधर्मो विद्यते देवि ! किन्तु धर्मो महान् भवेत् ॥ ३१ ॥
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद् हृष्टमानसः ।
कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टो येन केनचित् ॥ ३२ ॥

इस मार्ग में दिशा तथा काल आदि का कोई नियम नहीं है । नित्यकर्म भी अपेक्षित नहीं है । जप-पूजा-बलि आदि में भी काल-अकाल आदि की बाध्यता नहीं है । महाशक्ति के महामन्त्र के साधनार्थ इस महाचीनाचार में सब कुछ अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहिए । किसी भी रूप से इस साधन में प्रवृत्त होकर सर्वदा सन्तुष्ट रहना होगा और स्वयं को कृतकृत्य मानना होगा ॥ ३०-३२ ॥

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः ।
तदावादीत् सुसिद्धान्तो हतः क्षितितलं विशेत् ॥ ३३ ॥
पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः ।
कवितां लभते सोऽपि ह्यमृतत्वञ्च गच्छति ॥ ३४ ॥
पद्म दृष्ट्वा तथा निम्बं खञ्जनं शिखरं तथा ।
चामरं रविबिम्बञ्च तिलपुष्पं सरोवरम् ॥ ३५ ॥
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः ।
सुखप्रसादं सुमुखं सहास्यञ्च सुलोचनम् ॥ ३६ ॥
सुकेशं सुगतिं गन्धं सुजनं सुखमेव च ।
लभते च यथासौख्यं शृणु पार्वति ! सादरम् ॥ ३७ ॥
महाचीनक्रमं देवि ! ध्यात्वा तत्र प्रपूज्य च ।
तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः ॥ ३८ ॥

यदि पृथ्वी को ऋतुमती जानकर साधक प्रतिदिन १००० जप करता है, तब वाद-विवाद में उससे विपक्ष पूर्णतः पराजित हो जाता है । यदि कुलयुवती के स्तनों पर हाथ रखकर साधक संयत और निर्भयचित्त से महामाया का साध्यमन्त्र जपे, तब उसे कवित्वशक्ति एवं अमृतत्व मिल जाता है ।

हे पार्वती ! यदि साधक कुलयुवती के स्तनद्वय, योनि, नयनद्वय, मुख-मण्डल, केशराशि, मस्तक, नाभिदेश का दर्शन करके १००८ मन्त्र जपता है, उस स्थिति में उसे सुख, प्रसन्नता, सुन्दर नेत्र, सुमधुर वाणी, मन्द हास्य युक्त मुख, सुकेश, सुगति, सुगन्ध, सुजन साहचर्य तथा सुख प्राप्त होता है ।

हे देवी ! महाचीनद्रुम (नवकुलयुवती) का ध्यान तथा पूजन करे ।

इस कुलयुवती के रजःरक्त द्वारा भक्तिपूर्वक महाशक्ति का पूजन करे ॥ ३३-३८ ॥

स भवेत् कुलदेवश्च कुलद्रुमगतः शुचिः ।
ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि ॥ ३९ ॥
तत्सुधासारसारेण तर्पयेन्मातृकानने ।
स भवेत् साधकश्रेष्ठो मातृणाञ्च भवेत् प्रियः ॥ ४० ॥
महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः ।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर इन कुलयुवती का संग करने पर साधक स्वयं शिवतुल्य हो जाता है । सहस्रारपद्म में यथाविधि देवी का परमशिव के साथ संयुक्त ध्यान करे । तदनन्तर इस शिवशक्तिसंयोग से उत्पन्न सहस्रपद्म से निःसृत अमृतधारा द्वारा मातृका के मुख में तर्पण करे । ऐसा करने पर साधक तारिणी देवी का प्रिय तथा साधकों में अग्रणी हो जाता है ।

यदि साधक रात्रि में कुलयुवती का आलिंगन करके मन्त्रजप करता है, उस स्थिति में साधक स्वयं कल्पलता के समान हो जाता है ॥ ३९-४१ ॥

तिथिक्रमेण सङ्ख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि ।
तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्रजपमानतः ॥ ४२ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि जप्यते ।
तदैव महतीसिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥ ४३ ॥

जिस तिथि से जप का प्रारम्भ करे, उस तिथि के अनुरूप संख्या में उतनी ही कुलयुवतियों द्वारा परिवेष्टित होकर साधक को एक सहस्र जप करना चाहिए (जैसे यदि द्वितीया से जप प्रारम्भ करे तब दो कुलयुवती, तृतीया से जप प्रारम्भ करने पर तीन कुलयुवती) । इस प्रकार से जप करने पर एक मास में सिद्धि मिल जाती है ।

अष्टमी तथा चतुर्दशी को २ हजार जप करने पर देवदुर्लभ महान् सिद्धि मिलती है ॥ ४२-४३ ॥

तत्पार्श्वे साध्यमाख्यातं ताडयेदिष्टवृष्टिभिः ।
तत्र गच्छति कामार्त्ता यत्र तिष्ठति साधकः ॥ ४४ ॥
महाचीनद्रुमरसेनाक्तं पिण्डं विधाय च ।
यन्नाम्ना दीयते देवि ! सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥
महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन तु यत् फलम् ।
तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः ॥ ४६ ॥

इस सिद्धि के प्रभाव से जिस नारी के नाम को जोड़ कर जप किया जायेगा, वह नारी कामार्त्ता होकर साधक के पास आ जाती है।

हे देवी ! कुलयुवती के रजः के द्वारा जिसके नाम से पिण्ड दिया जायेगा, वह व्यक्ति शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

कुलयुवती का आलिंगन करने पर जो फल मिलता है, शवसाधना द्वारा उसका सोलहवाँ भाग भी फल प्राप्त नहीं होता ॥ ४४-४६ ॥

शवासनाधिकफलं लतागेहे प्रवेशनम्।
अद्‌भुतः स सदा देवि ! साधको भुवि दुर्लभः ॥ ४७ ॥

कुलयुवती (लतागेह) के साथ रतिक्रिया से शवासन की तुलना में अधिक फल की प्राप्ति होती है। हे देवी ! महाचीनाचार का साधक पृथ्वी पर अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४७ ॥

यया कयापि दृष्टया वा यः को वा भुवि दृश्यते।
सोऽपि दासो भवेत् सद्यो येन वा दृश्यते भुवि ॥ ४८ ॥
एतत् प्रकाशनाद्देवि ! मृत्युर्भवति नान्यथा।
महाभूतगणैः सार्द्धं तस्य सर्वं हराम्यहम् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये महाचीनाचारप्रकरणं नाम त्रयोदशः पटलः ॥

यदि वह साधक किसी व्यक्ति के प्रति दृष्टिपात करता है, उस स्थिति में वह व्यक्ति साधक का दासत्व स्वीकार करने लगता है। जो कुछ भी पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होता है, वह सब साधक के वश में आ जाता है।

हे देवी ! इस साधन-पद्धति का प्रकाशन करने पर साधक की मृत्यु हो जाती है। जो व्यक्ति इस साधन-पद्धति अथवा इस मार्ग के साधक की निन्दा करता है, मैं उसकी हानि महाभूतगण के साथ करता हूँ ॥ ४८-४९ ॥

॥ तेरहवां पटल समाप्त ॥

चतुर्दशः पटलः

(सिद्धिमन्त्रः)

श्री देव्युवाच—

शम्भो ! सर्वविचारवर्यचतुरः सर्वागमानां निधि-
स्त्वं देवः सदसत्फलैकनिपुणस्त्वं ब्रह्मवेद्यो विभुः।
सर्वं वेत्सि महेश ! यन्न भवता ज्ञातस्तु विश्वान्तरे,
तन्नैवास्ति न जायते मम पुनर्वाच्यं विचार्यं गुरो ! ॥ १ ॥

(सिद्धिमन्त्र)

देवी कहती हैं—हे प्रभु ! आप समस्त श्रेष्ठतम विचार करने में पारंगत हैं। आप सभी आगमों के विविधरूप के ज्ञाता हैं। आप सभी सत्फल तथा असत्फल देने में दक्ष हैं। आप हैं ब्रह्मवेद्य विभु। हे महेश ! आप सर्वज्ञ हैं। आप जिसे नहीं जानते, वह विश्व में है ही नहीं और हो भी नहीं सकता। हे गुरो ! वह मैं विचार करना नहीं चाहती ॥ १ ॥

यदुक्तो भवता मन्त्रस्तत् सर्वं दुःखसिद्धिदम्।
विना दुःखैर्विना जापैस्तत्सिद्धिं ब्रूहि सत्वरम् ॥ २ ॥

आप जिन मंत्रों का उपदेश देते हैं, वे सभी दुःख झेलने पर, श्रम करने पर ही सिद्धि देते हैं। जिस मंत्र की सिद्धि दुःख के बिना और जप के बिना होती है, कृपया उसे कहिये ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच—

विना दुःखैर्विना जापैर्विना पुण्यस्त्रिया पुनः।
मन्त्रसिद्धिं प्रवक्ष्यामि शृणु पर्वतनन्दिनि ! ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पर्वतनन्दिनी ! बिना दुःख, बिना जप, बिना पुण्य, स्त्री आदि के ही मन्त्रसिद्धि-विधि को मैं कहता हूँ। तुम सुनो ॥ ३ ॥

येनानुष्ठितमात्रेण भोगमोक्षमवाप्नुयात्।
न वक्तुमुचितं लोके तव स्नेहादिहोच्यते ॥ ४ ॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुरुसिद्धिपुरःसरम्।
गोपितं सर्वतन्त्रेषु हीद नीं प्रकटीकृतम् ॥ ५ ॥
रहस्यैर्मन्त्रसिद्धेस्तु पुरश्चर्यादिकं विना।
एतत्प्रकाशनाल्लोके महाहानिः पदे पदे ॥ ६ ॥

जिसका केवल अनुष्ठान करने से ही मानव को भोग-मोक्ष मिलता है, उसे जनसामान्य के सम्मुख प्रकट करना उचित नहीं है, तब भी तुम्हारे प्रेम के कारण उसे कहता हूँ। तुम जिस लिये जिज्ञासा कर रही हो, उस हेतु मैं गुरु-सिद्धिपूर्वक मन्त्रसिद्धि का वर्णन करता हूँ। यह यद्यपि सर्वतन्त्रों में गुप्त है, तब भी इसे यहाँ प्रकट किया जा रहा है।

यह पुरश्चरण आदि के बिना मन्त्रसिद्धि का रहस्य है। इसे सामान्य लोगों के सम्मुख प्रकट करने पर प्रत्येक पग पर महान् हानि होगी ॥ ४-६ ॥

शिरसि लिखितभानुं पञ्चमान्त्यस्वराढ्यं,
द्वितयमिदमपूर्वं बीजमुग्रप्रभायाः।
क्षणमपि स्वमनीषां मङ्गलान्तर्विभाव्य,
क्षपयति दुरदृष्टं वादिराड् जायते सः ॥ ७ ॥
स जयति रिपुवर्गान् वादिनश्चापि वादे,
रमयति रमणीनां चित्तमुर्व्यां चिरायुः।
कलयति कविराजैरप्यदृष्टं सुकाव्यं,
मधुमतिरपि हेया किं पुनः सिद्धसङ्घाः ॥ ८ ॥

मस्तक पर भानु वर्ण (बिन्दु ˙) लिखने पर उसे पञ्चम्यन्त षष्ठ स्वर के द्वारा युक्त करने पर यह अपूर्व उग्र प्रभाव का द्वितीय बीज हो जाता है। जो एक क्षण के लिए भी मन में इसकी भावना करते हैं, वे अदृष्ट-समूह का नाश करते हैं और वादियों के सम्राट् होकर जन्म लेते हैं। वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। वाद-विवाद में विजयी होते हैं। रमणीगण के चित्त को आनन्द प्रदान करते हैं और दीर्घायु होते हैं। कविगण अतुलनीय काव्य-रचना करने में समर्थ हो जाते हैं। इसके समक्ष मधुमती विद्या भी तुच्छ है, सिद्धों की तो बात ही क्या? ॥ ७-८ ॥

वर्द्धयेत् कविशक्तिञ्च ह्यदृष्टा चाप्यविश्रुता।
तदाज्ञावर्त्तिनो देवाः के पुनर्विघ्नकारकाः ॥ ९ ॥
कुलयुवतिसुयोनौ मन्त्रवर्णान् विलिख्य,
निखिलनिगममन्त्रान् सुप्तदोषादिदुष्टान्।
विदितगुरुकुलान्तर्बाह्यवर्त्मान् विधिज्ञो,
मनुपुटितपटीयान् साधयेत् शान्तचेताः ॥ १० ॥
कुलपथमनुसन्ध्यं यश्चितायां स्वभूमौ,
तव जननि! जनो यस्तर्पयेत्तीर्थतोयैः।
रुधिरवरसुपुष्पैर्गन्धमाल्यानुलेपै
रचितयुवतिवेशस्तद्धिया ध्यायते यः ॥ ११ ॥

यह विद्या दृष्ट तथा श्रुत न होने पर भी कवित्व-शक्ति को बढ़ाती रहती है। इसकी आज्ञा का पालन देवगण भी करते हैं। इस विद्या में कोई भी देवता विघ्न नहीं कर सकते। गुरुकुलान्तवेत्ता, विधिज्ञ, मन्त्रों के पुटीकरण में दक्ष, शान्तचेता साधक कुलयुवती की सुयोनि पर मन्त्रवर्ण लिखे। इस प्रकार से सुप्त, दोषों से युक्त, दुष्ट आदि समस्त निगमोक्त मन्त्रों का साधन सम्पन्न हो सकता है। इसमें बाह्य साधन भी हो सकते हैं।

हे जननी! जो व्यक्ति अपनी ही भूमि में, चिता में कुलपथ का अनुसरण करता है, जो व्यक्ति तीर्थजल से तुम्हारा तर्पण करता है, जो व्यक्ति युवती की वेश-रचना करके युवती-बुद्धि से गन्ध-माला-अनुलेपन-रुधिर-श्रेष्ठ मनोहर पुष्प द्वारा तुम्हारी अर्चना करता है ॥ ९-११ ॥

परिचरति समन्त्रैर्न्यासपूर्वैः प्रसिद्धै-
स्तव परिजनजालैर्योनिचक्रे प्रपूज्य।
सुविमलकुलजां तां ह्रीघृणावर्जिताञ्च,
स्वयमपि विजिताङ्गः क्षोभकृद्योगिनीशः ॥ १२ ॥

और जो व्यक्ति योनिचक्र में तुम्हारे परिजनों के साथ न्यासपूर्वक मन्त्र-समूहों के द्वारा पूजा करता है, जो व्यक्ति निर्मल कुलोत्पन्न लज्जा-घृणारहित उस कुलयुवती की अर्चना करता है (जिसकी योनि पर मन्त्र अंकित किया गया) वह व्यक्ति इन्द्रियजयी होकर क्षोभकारी योगिनियों का अधीश्वर हो जाता है ॥ १२ ॥

पशुरिव कुलचक्रं संस्पृशन् मध्यभागं,
सुरतरुसुरनाथः शापदृष्ट्वा मनुष्यः।
कुलपथि कुलनाथस्तद्द्वयं योजयित्वा,
मनुपुटितविमृष्यं योजयेत् तद्बहिर्यः ॥ १३ ॥

जो कुलचक्र के (योनि के) मध्यभाग को पशु के समान (कामभाव से) स्पर्श करके वहाँ उस मन्त्रद्वय को अंकित करते हैं, वे पापदृष्टि से सम्पन्न होने पर भी कुलमार्ग में कुलनाथ तथा सुरनाथ होकर कल्पतरु के समान अवस्थित हो जाते हैं ॥ १३ ॥

जननि! तव विलासं कोविद कामरूपं,
कुमतिरहितचेतः संलिखेत्तां त्रिधारे।
विगतभयविषादध्वान्तजालैः सुधांशु-
स्तव चरणतलान्तर्धूलिजालैर्विशालैः ॥ १४ ॥

हे जननी! आपका विलासस्थान कामरूप है। वही पण्डितों की भी विलासभूमि है। चित्त को बुरे विचारों से रहित करके उसी त्रिधारा योनि

पर लिखे। जैसे चन्द्रमा अंधकारसे ढँक जाता है, उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति आपके चरणतल में स्थित विशाल धूलिराशि से आवृत होकर स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

परिकल्पितशारीरो यद्धर्मभिर्देवपूज्यैः।
परिचरति स विज्ञो मोक्षचर्याधिपः सन् ॥ १५ ॥

वह विद्वान् धार्मिक व्यक्ति देवाधिदेव के समान उत्तम देह प्राप्त करके मोक्षाचारियों का अधिपति बन जाता है ॥ १५ ॥

मदनमदवधूनां बीजमुद्धृत्य शक्ति-
स्तदनु कठिनबीजं लोकधात्रीं तदन्तः।
यदि जपति तदन्तर्भावमासाद्य सद्यः,
सुरनगरगतैस्तैः सिद्धवृन्दैः स पूज्यः ॥ १६ ॥
शिवभृगुमथ पृथ्वीशक्तियुक्तं सुसिद्धं,
हरिहरचतुरास्यः स्वस्वभूमिप्रसूतिम्।
परमत्रिदशयज्ञक्षोभकृत् कामिनीना-
मधिपतिरपि वाचां भूपतिः सार्वभौमः ॥ १७ ॥

कामदेव-मद से मत्त वधूबीज का उद्धार करके उसके अनन्तर शक्ति-बीज का उद्धार करे। उसके मध्य कठिन बीज युक्त करके उसके अन्तर्निहित भाव को ग्रहण करके लोकधात्री के मन्त्र का जप करे। ऐसा साधक तत्काल सुरनगरस्थित सिद्धवृन्द द्वारा पूज्य हो जाता है। वे शिव-गुरु-मदन तथा पृथ्वी के समान शक्तिधारी, सिद्ध हरि-हर तथा ब्रह्मा के समान ऐश्वर्य युक्त अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के समान परम पुरुष ऐश्वर्ययुक्त हो जाते हैं। स्त्रीगण के मन को आकृष्ट करने वाले, वाणी के अधिपति तथा सार्वभौम भूपति हो जाते हैं ॥ १६-१७ ॥

भृगुमदकठिनाधः कामबीजं तदग्रे,
भुवनभयविनाशक्षोभिणीं योजयित्वा।
जपति यदि सकृद्वा चिन्त्यते वीरसिंह,
कुलयुवतिकुलान्तक्षोभकृत् कामभावात् ॥ १८ ॥

यदि भृगुबीज, मद तथा कठिन बीज के अधोभाग में कामबीज का, उसके आगे भुवनभयविनाशी क्षोभिणी बीज का योग करके जप किया जाये अथवा एक बार भी भावना की जाये, उस स्थिति में वह वीरश्रेष्ठ कामभावहेतु सम्पूर्ण कुलयुवतियों को आकृष्ट करने वाला हो जाता है ॥ १८ ॥

मदनमदतलाधः शक्तिबीजं नियोज्य,
स्मरहरहरिरूपी कामरूपः कुबेरः।

रिपुकुलहरिणाक्षीलोचनाम्भोजविप्रुड्-
गिरिशनयनसेकात् खण्डिताशेषतापः ।। १९ ।।

जो मदन तथा मदतल के अधोदेश में शक्तिबीज का योग करके जप करते हैं वे हर तथा हररूपी हैं। वे कामरूप कुबेर हैं। वे शत्रुकुल की हरिणाक्षी स्त्री-समूह के नयनपद्म के जलबिन्दु के सेचनकारी रिपुजयी साधक महादेव के दृष्टिपात से समस्त तापरहित हो जाते हैं ।। १९ ।।

शिवभृगुमदमूलं मूलमत्यन्तदूरं
भजति यदि गुरूणां वर्त्ममूलं विमृश्य।
निधिपतिरपि नाथो गीष्पतिर्विज्ञचेता,
यदि भवति तदैतत् मुख्यमुर्वीपतित्वम् ।। २० ।।

शिव, भृगु तथा मद का मूल (कामदेव)—ये तीनों ही सिद्धि के कारण हैं, तथापि ये तीनों अत्यन्त दूर हैं; सहजता से प्राप्त नहीं हो सकते। यदि कोई मूलभूत गुरुमार्ग का स्मरण करके यह भावना करता है, कि वही निधिपति है, सभी का प्रभु तथा गीष्पति है, यदि विद्वान् व्यक्ति उसकी आराधना करता है, तब वह श्रेष्ठ पृथ्वीपतित्व प्राप्त करता है ।। २० ।।

वरगरलविवर्ज्यं घ्राणमेकं विवर्ज्यं,
तदुपरि मृगचिह्नद्वन्द्वमेतद् भवान्याः।
निखिलमनुवराणां मोक्षदानैकदक्षः,
सदसदसमधर्मा क्षेमकृन्मन्त्रराजः ।। २१ ।।

वर गरल वर्जनीय है, उसे सूँघना भी वर्जित है। उसके उपर मृगचिह्न है। यही है भवानी का तत्त्व। यह समस्त मन्त्रों से भी श्रेष्ठ है। यही है एकमात्र मोक्षदान में समर्थ। सद्-असद् विषम धर्म वाला यही मन्त्रराज ही मंगलकारी है ।। २१ ।।

अनलशिरसि धर्मं वादिवर्ज्यं सचन्द्रं,
गिरिशनयनयुक्तं बीजमेतद्भवान्याः।
द्वितयकपरिमाणं वक्तुमीशो महेशः,
किमिह कमलजन्मा जन्मधारासहस्रैः ।। २२ ।।

जब अनल के मस्तक पर धर्म वादिरहित चन्द्रयुक्त स्थित होता है और भवेश नयनयुक्त होता है, तभी भवानी का बीज गठित होता है। इसका परिमाण महेश ही कह सकते हैं। इसे पद्मयोनि ब्रह्मा भी सहस्रों जन्मों में नहीं कह सकते ।। २२ ।।

इह जगति यथैनं मन्त्रराजं सुभाग्यै-
र्भजति जननि ! युष्मत्पादपद्मोत्थभक्त्या।

त्यजसि परपुमांसं मादृशं वापि चान्यं,
न खलु वपुरनर्थं तस्य काचित् कदाचित् ॥ २३ ॥

हे जननी ! तुम्हारे पादपद्म में भक्ति के कारण इस जगत् में जो व्यक्ति इस मन्त्रराज का जप करता है, उसकी देह अनर्थक है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता । तुम परपुरुष का तथा अन्य का त्याग कर सकती हो, किन्तु क्या मेरा त्याग कर सकती हो ? ॥ २३ ॥

त्रितयकपरिमाणं वक्तुमीशो महेशः,
किमिह कमलजन्मा जन्मधारासहस्रैः ।
इह भजति य एनं मन्त्रराजं सुवाग्मी,
स भवति भुवि युष्मत्पादपद्मेऽपि भक्त्या ॥ २४ ॥

त्रितय का परिमाण महेश ही कह सकते हैं । पद्मयोनि ब्रह्मा सहस्रों जन्मों में क्या उसे कह सकेंगे ? तुम्हारे पादपद्म की भक्ति के कारण जो व्यक्ति इस मंत्रराज की आराधना करता है, वह सुवाग्मी हो जाता है ॥२४॥

विदितगुरुमुखाद्वा बालकाद्वा पशोर्वा,
लिखितमपि सुबुद्ध्या प्राप्य कस्मादकस्मात् ।
स्मरदहनपुरारेर्मोक्षमासाद्य पारे,
परमपदविलीनः सर्वसौभाग्यभाग्यः ॥ २५ ॥

गुरुमुख से, बालक के मुख से, पशु से अथवा अकस्मात् इसे किसी से भी प्राप्त करके सुबुद्धि द्वारा लिखित होने (ग्रहण कर लेने) पर वह मोक्ष प्राप्त करके समस्त सौभाग्य-भोग से युक्त होकर परमपद में लीन हो जाता है ॥ २५ ॥

क्रमपठितमपूर्वं सर्वमेवानुरुद्धं,
मनुवरममरार्च्यं सर्वमध्यस्थरूपम् ।
अनलपरमवाह्यं तस्य मध्यस्थ सर्वं,
भजति यदि चिदात्मानन्दरूपो नरोऽसौ ॥ २६ ॥

यदि मनुष्य देवगणार्चित, सब के साक्षीस्वरूप, सबके लिए आदरयोग्य, क्रमपठित इस मन्त्रराज की आराधना जंगल में करता है, वह चिदानन्द युक्त हो जाता है । वह सामान्य व्यक्ति अथवा मनुष्य नहीं रहता ॥ २६ ॥

विपिने भुवि मनुष्यः प्राकृतो नायमेवं,
इत्येतत् कथितं सर्वं रहस्यं परमाद्भुतम् ।
यथानुक्रमतो देवि ! किं न सिध्यति योगिनः ॥ २७ ॥

यह अत्यद्भुत रहस्य कहा गया है । हे देवी ! योगीश्रेष्ठ क्रमानुसार इसी की सेवा-साधना करते हैं ॥ २७ ॥

देव्युवाच—

भगवन् ! देवदेवेश ! सर्वप्राणिहितेरत ! ।
येनावश्यं भवेत् सिद्धिस्तदुपायं वद प्रभो ! ॥ २८ ॥

देवी कहती हैं—हे भगवन् ! देवताओं के ईश्वर ! प्राणियों के हित में रत ! हे प्रभो ! आप समस्त प्राणीगण का हित करते रहते हैं। जिस उपाय द्वारा सहज सिद्धि प्राप्त होती है, कृपया उसे कहिये ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! परं ज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमोत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसिध्यति ॥ २९ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवी ! जिसके जानने मात्र से तत्काल विद्या सिद्ध हो जाती है और जो उत्तमोत्तम ज्ञान है, उसे सुनो ॥ २९ ॥

मूलकाण्डे तु या शक्तिर्भुजगाकाररूपिणी ।
तद्भ्रमावर्त्तितं तोयं प्राण इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥
झिञ्जिराः व्यक्तमधुरा कूजन्ति सततोत्थिताः ।
गच्छन्ति ब्रह्मरन्ध्रे तु प्रविशन्ति स्वकेतने ॥ ३१ ॥
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।
तेन मन्त्रशिखा जाता सर्वमन्त्रप्रदीपिका ॥ ३२ ॥
तमःपूर्णे गृहे यद्वन्न किञ्चित् प्रतिभासते ।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिध्यन्ति कदाचन ॥ ३३ ॥
शिखोपदेशः सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि ! ।
विना येन न सिद्धिः स्यात् वर्षकोटिशतैरपि ॥ ३४ ॥

मूलाधार में भुजगाकाररूपिणी कुलशक्ति स्थित है। इसके भ्रमावर्त्तित जल को विद्वान् लोग प्राण कहते हैं। यह कुण्डलिनी शक्ति झिंझिर ध्वनि जैसी एक अव्यक्त ध्वनि करती रहती है। यह अत्यन्त मधुर ध्वनि है। यह सर्वदा जागरित रहकर ब्रह्मरन्ध्र में गमन करती है और पुनः अपने स्थान पर वापस आ जाती है।

इसके यातायात क्रम में मन का लय करना चाहिए। इस प्रकार सर्वमन्त्र-प्रदीपिका मन्त्रशिखा उत्पन्न होती है। जैसे अन्धकार से आच्छन्न गृह में कुछ भी प्रकाशित नहीं होता, उसी प्रकार शिखाहीन मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होते।

हे परमेश्वरी ! इस शिखा को छोड़ देने पर सौ करोड़ वर्षों में भी सिद्धि नहीं मिलती, अतएव इसे सर्वदा गुप्त रखना चाहिए ॥ ३०-३४ ॥

तस्मात्त्वयापि गिरिजे ! गोपनीयः प्रयत्नतः ।
सुप्ता निद्रायिता मत्ता शिखां वक्त्वा तु तत्परा ॥ ३५ ॥
समस्तदोषजालेन ग्रथिते वस्तु सुन्दरि ! ।
निशाचारं दिवाचारं सन्ध्याचारञ्च पल्लवम् ॥ ३६ ॥
दर्पणं बीजसंयोगं भागसंयोगमेव च ।
ध्यात्वा प्रबोधयेद् बीजं गुरुवक्त्रैककारणम् ॥ ३७ ॥
निशाचारस्तु देवेशि ! वामनासा दिवाचरः ।
स्वापकालो वामवहः प्रबोधो दक्षिणावहः ॥ ३८ ॥

हे गिरिजे ! तुम इसे गोपित रखना । विद्या सुप्ता-निद्रिता और मत्ता है । इसलिये मंत्रशिखा का वर्णन किया गया ।

हे सुन्दरी ! दोषों के द्वारा समस्त वस्तु ग्रसित है । अतः निशाचार-दिवाचार-सन्ध्याचार-पल्लव-दर्पण-बीजसंयोग तथा भागसंयोग का चिन्तन करके बीज को प्रबोधित करो । इसका एकमात्र उपाय है—गुरुमुख होना । हे देवेशी ! दक्षिण नासिका निशाचर है । वामनासिका दिवाचर है । विद्या तथा मन्त्र की सुषुप्ति अवस्था में प्राण वामवह (बाँये नासिका छिद्र से बहने वाला) होता है । उसके प्रबोध काल में दक्षिण में बहने लगता है ॥ ३५-३८ ॥

प्रबोधकालो जानीयादुभयोरुभयोरपि ।
स्वापकाले तु मन्त्राणां जपोऽनर्थफलप्रदः ॥ ३९ ॥
अग्नीषोमात्मका मन्त्रा विज्ञेयाः क्रूरसौम्ययोः ।
कर्मणो वह्नितारान्त्यवियत्प्रायाः समीरिताः ॥ ४० ॥
आग्नेयस्य मनो सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययः ।
तदात्मिका स्मृता विद्या मन्त्रा देवी महात्मिका ॥ ४१ ॥

मन्त्र तथा विद्या का प्रबोधकाल जानना चाहिए । जब मन्त्र निद्रित रहते हैं, तब उनका जप अनर्थ फलदायक होता है ।

क्रूर तथा सौम्य कर्म में मंत्र को अग्नीषोमात्मक कहते हैं । अर्थात् अग्नि देवता के मंत्र क्रूर कर्मार्थ और सोमदेवता के मन्त्र सौम्य कर्म के लिए प्रयुक्त होते हैं । वह्नि (रं) तार (ॐ) अन्त्य (क्ष) बहुल मन्त्र ही आग्नेय हैं । सौम्यमन्त्र एतद्विपरीत होते हैं । हे देवी ! महाविद्या तथा महामन्त्र भी अग्नीषोमात्मक माने गये हैं ॥ ३९-४१ ॥

वामवाहो यदा वायुर्दीर्घानां योजनं तदा ।
दक्षिणस्यां यदा वायुस्तदा ह्रस्वा नियोजिताः ॥ ४२ ॥
उभयस्थो यदा वायुस्तदा स्यादुभयात्मकः ।
आदौ योगो भवेदन्ते पल्लवः सम्पुटं द्वयोः ॥ ४३ ॥

एकैकान्तरितं कुर्याद् विदर्भो विकृतः पुनः ।
प्रणवो मातृका देवी हृल्लेखेत्यमृतत्रयम् ॥ ४४ ॥

जब प्राणवायु वाम नासिका से बहती है, तब दीर्घ स्वर का योग होता है । दक्षिण नासिका से प्रवहमान होने पर ह्रस्व स्वर का योग होता है ॥४२॥

जब दोनों नासिका से वायु बहने लगती है, तब ह्रस्व-दीर्घात्मक (उभयात्मक) स्वर-योग हो जाता है । प्रथम में योग होता है, शेष दोनों सम्पुट हैं ।

एक-एक मातृकावर्ण का पुटीकरण मंत्र द्वारा करे । विकृत होने पर विदर्भ हो जाता है । अमृतत्रय हैं—प्रणव-मातृका तथा देवी हृल्लेखा ॥ ४२-४४॥

अमृतत्रयसंयोगाद् भ्रष्टमन्त्रोऽपि सिद्धयति ।
योषितां ध्यानयोगेन सिद्धयः स्युर्न संशयः ॥ ४५ ॥
क्षुधार्त्तः क्षीरपानेन यथा तृप्तोऽभिजायते ।
फलपुष्पप्रदानेन यथा शक्त्युपतुष्यति ॥ ४६ ॥
गुरुसेवनमात्रेण सर्वसिद्धिर्यथा भवेत् ।
महापद्मवनं ध्यायेद् यथा योगीश्वरो भवेत् ॥ ४७ ॥

इन अमृतत्रय के योग से भ्रष्टमंत्र-समूह भी सुसिद्ध हो जाते हैं । स्त्रीवर्ग के ध्यानमात्र से सभी मन्त्र सिद्ध होने लगते हैं । यह निःसन्दिग्ध है । जैसे भूखा बच्चा दूध पीने से तृप्त हो जाता है, उसी प्रकार यथाशक्ति फल-पुष्प द्वारा देवी भी संतुष्ट हो जाती हैं । गुरु की सेवा से ही समस्त मन्त्रों की सिद्धि मिल जाती है । महापद्मवन (षट्चक्र) के ध्यान से योगीश्वरता प्राप्त हो जाती है ॥ ४५-४७ ॥

त्रिपुराध्यानमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिर्यथा भवेत् ।
महादुर्गाप्रसादेन यथा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४८ ॥
गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते यथा ।
योषिच्चिन्तनमात्रेण तथेयं वरदायिनी ॥ ४९ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेद् द्विजकामिनीम् ।
यस्याः सन्तोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये सिद्धमन्त्रोऽपि मन्त्रसिद्धेरुपायकथनं नाम चतुर्दशः पटलः ॥

त्रिपुरा के ध्यान से ही मुक्ति तथा भुक्ति दोनों मिलती हैं । जैसे महादुर्गा की कृपा से सिद्धीश्वरता प्राप्त हो जाती है, जैसे गंगा के ध्यान से तत्काल निष्पापता आती है, उसी प्रकार स्त्री का ध्यान करने से वे वरदायिनी हो जाती हैं । अतः सभी प्रयत्न द्वारा ब्राह्मण की स्त्री को दीक्षित कराये ॥४८-५०॥

॥ चतुर्दश पटल समाप्त ॥

पञ्चदशः पटलः

(कुमारीपूजनम्)

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! सृष्टिस्थितिलयात्मक ! ।
कुमारीपूजनं देव ! कथयस्व महेश्वर ! ॥ १ ॥

(कुमारीपूजन)

देवी कहती हैं—हे देवदेव ! महादेव ! सृष्टि, स्थिति तथा संहारकर्त्ता आप ही हैं । हे महेश्वर ! आप कृपया कुमारी-पूजा के सम्बन्ध में कहिए ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कुमारीपूजनं यथा ।
विफलं जपपूजादि कुमारीपूजनं विना ॥ २ ॥
पूजादिविफलं चैव सफलं पूजनाद् भवेत् ।
ततः सकलसिद्धयर्थं शवस्थां तां प्रपूजयेत् ॥ ३ ॥
आनयेत् कन्यकां योग्यां कुमारीं वा शवासिनीम् ।
कुमार्याः पूजनं देवि ! त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ ४ ॥
यस्याः पूजनमात्रेण त्रैलोक्यपूजनं भवेत् ।
आद्या सृष्टिकरी या तु प्रत्यक्षा सैव च द्विधा ॥ ५ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवी ! कुमारी-पूजन के सम्बन्ध में सुनो । कुमारी-पूजन के बिना जप-पूजन सभी बेकार हो जाते हैं ।

कुमारी-पूजन के बिना सब कुछ विफल है और इसके द्वारा सब कुछ सफल हो जाता है । अतः पूजा आदि में सफलता के लिए शव पर बैठी हुई कुमारी का पूजन करे । हे देवी ! यह पूजन त्रैलोक्यदुर्लभ पूजन है । केवल कुमारी का ही पूजन करने से त्रैलोक्य की पूजा हो जाती है । आद्याशक्ति ही कुमारी-रूपेण विराजित रहती हैं ॥ २-५ ॥

उमारूपा तु सा माया सृष्टिरूपार्णवेऽपि च ।
एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा तु सरस्वती ॥ ६ ॥
त्रिवर्षा तु त्रिधा मूर्तिश्चतुर्वर्षा तु कालिका ।
सुभगा पञ्चवर्षा तु षड्वर्षा तु उमा भवेत् ॥ ७ ॥
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा तु कुब्जिका ।
नवभिः कालसंवर्षा दशभिश्चापराजिता ॥ ८ ॥

एकादशे तु रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी ।
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पीठनायिका ॥ ९ ॥
क्षेत्रजा पञ्चदशभिः षोडशे तारिणी मता ।
एवं क्रमेण पूज्या तु यावत् पुष्पं न जायते ॥ १० ॥

सृष्टि के रूपार्णव में आद्याशक्ति माया ही उमा के रूप में स्थित रहती है । एक वर्ष की कुमारी = सन्ध्या । दो वर्ष की = सरस्वती । तीन वर्ष की = त्रिधामूर्त्ति । चार वर्ष की = कालिका । पाँच वर्ष की = सुभगा । छः वर्ष की = उमा । सात वर्ष की = मालिनी । आठ वर्ष की = कुब्जिका । नौ वर्ष की = संवर्षा । दस वर्ष की = अपराजिता । ग्यारह वर्ष की = रुद्राणी । बारह वर्ष की = भैरवी । तेरह वर्ष की = महालक्ष्मी । चौदह वर्ष की = पीठनायिका । पन्द्रह वर्ष की = क्षेत्रजा । सोलह वर्ष की = तारिणी । इस प्रकार जब तक ऋतुदर्शन नहीं हो जाता, तब तक उसका पूजन किया जा सकता है ॥ ६-१० ॥

प्रतिपदादि पूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ।
महापर्वसु देवेशि ! विशेषार्च्चा पवित्रके ॥ ११ ॥
महानवम्यां देवेशि ! कुमारींश्च प्रपूजयेत् ।
कुमारीं पूजयेद् यस्तु षोडशैश्चैव भक्तिमान् ॥ १२ ॥
भक्तितः पूजयित्वा तु सर्वसम्पत्तिमान् भवेत् ।
पूजयेत् कुलविद्यानामेकां वा कुलभैरवीम् ॥ १३ ॥

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक चन्द्र की ह्रास-वृद्धि के अनुसार कुमारीपूजन करना चाहिए । हे देवेशी ! महापर्वों के समय पवित्रता से विशेष पूजन करे ।

हे देवेशी ! महानवमी के दिन कुमारीपूजन करना चाहिए । भक्तियुक्त साधक षोडशोपचार द्वारा कुमारीपूजन करके सभी सम्पत्तियों के स्वामी हो जाते हैं । उसी दिन कुलविद्या-समूह के एक भी देवता का अथवा कुलभैरवी का पूजन करे ॥ ११-१३ ॥

एवं प्रणवयोगेन चैतन्यं तत्त्वमर्चयेत् ।
वाणी माया तथा लक्ष्मीस्तथा कूर्च्चद्वयं पुनः ॥ १४ ॥
एते च प्रणवा ज्ञेयाः कुमार्याः परिपूजने ।
चतुर्दशस्वरेणाढ्यो भृगुर्वियतिसंयुतः ॥ १५ ॥

ऊपर जिन कुमारीसमूह का नाम कहा गया है, उनके साथ ॐ लगाकर प्रत्येक कुमारी का पूजन करना चाहिए ।

कुमारीपूजनार्थ 'ॐ ह्रीं श्रीं हुं हुं' यही बीज मन्त्र है । इस बीज को पहले लगाकर तब कुमारी के उपरोक्त नाम में से एक-एक नाम को लगाकर पूजन करता जाये, यही विधान है ॥ १४-१५ ॥

चैतन्यबीजं कथितं विसर्गाढ्यं सुखावहम् ।
ऐं ह्लीं श्रीं क्रौं हेसोः कुलकुमारिके हृदयाय नमः ।
ऐं हौं वैं हैं श्रीं ह्लीं ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा ॥
ॐ ह्लीं श्रीं ऐं शिखायै वषट् ।
ऐं कुलवागीश्वरी कवचाय हुम् ॥
ह्लीं अस्त्राय फट् ॥ ॐ सिद्धजयाय पूर्ववक्त्राय नमः ॥
ॐ ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः ।
ऐं ह्लीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः ।
कालिके दक्षिणवक्त्राय नमः ॥ १६ ॥
एवं क्रमेण देवेशि ! षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
ऐंकारेण च देवेशि ! दलं दद्यात् सुशोभनम् ॥ १७ ॥
ह्लींकारेण च देवेशि ! कुर्याच्च पादसेवनम् ।
श्रींकारेण सुभगे ! अर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ १८ ॥

हे देवेशी ! उक्त प्रकार से क्रमानुसार षडङ्गन्यास करे । हे देवेशी ! अब 'ऐं' बीज का उच्चारण करते हुए आचमनीय सुशोभन जल दे और 'ह्लीं' का उच्चारण करके पाद्य प्रदान करे । हे देवेशी ! हे सुभगे ! अर्घ्य देते समय बुद्धिमान् साधक को 'श्रीं' बीज का उच्चारण करना चाहिए ॥ १६-१८ ॥

कूर्चबीजेन देवेशि ! दद्याच्च चन्दनं शुभम् ।
'हूँ' बीजेन तु पुष्पाणि हेसोः धूपञ्च दापयेत् ॥ १९ ॥

हे देवेशी ! 'हुं' बीज के द्वारा शुभचन्दन, 'हूँ' बीज द्वारा पुष्प तथा 'हेसोः' बीज के द्वारा धूप निवेदन करना चाहिए ॥ १९ ॥

वाग्भवे च रिपुक्षोभं मायाबीजे गुणाष्टकम् ।
श्रियो बीजे श्रियो लाभो हेसोः बीजेऽरिसङ्क्षयः ॥ २० ॥

'ऐं' बीज के उच्चारण से रिपु (शत्रु) को क्षोभ होने लगता है । 'ह्लीं' बीज का उच्चारण करने से गुणाष्टक लाभ, 'श्रीं' बीज के उच्चारण से लक्ष्मी-लाभ और 'हेसोः' बीजोच्चारण द्वारा शत्रुगण का विनाश होता है ॥२०॥

भैरवेण तु बीजेन खगत्वममरादिभिः ।
कुमारिका मोक्षदा तु सदा त्वञ्च कुमारिका ॥ २१ ॥

भैरव बीज द्वारा कुमारी का पूजन करने से आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जाती है । कुमारी सदा मोक्षप्रदा तथा साक्षात् योगिनीरूपा हैं । वे सर्वदेवतास्वरूपा भी हैं ॥ २१ ॥

अष्टोत्तरशतं वापि एकं वापि प्रपूजयेत् ।
कुमारी योगिनी साक्षात् कुमारी सर्वदेवता ॥ २२ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ।। २३ ।।

कुमारीगण जप-पूजा द्वारा तृप्ति प्राप्त करते हैं, तब पूजन करने वाले के पिता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव से लेकर कालाग्नि शिव-गौरी पर्यन्त सभी सन्तुष्ट हो जाते हैं ।। २२-२३ ।।

कालाग्निशिवपर्यन्तं तथा गौर्यादिसंस्थितिः ।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च भुवनानि चतुर्दश ।। २४ ।।

कालाग्नि शिव-पर्यन्त तथा गौरी आदि अष्टशक्ति-पर्यन्त सभी सन्तुष्ट हो जाते हैं । यहाँ तक कि चौदह भुवन, सप्तद्वीप तथा सभी समुद्र भी सन्तुष्ट हो जाते हैं ।। २४ ।।

विधियुक्तां कुमारीञ्च भोजयेच्चैव भैरवि ! ।
पाद्यमर्घ्यं तथा धूपं कुङ्कुमं चन्दनं शुभम् ।। २५ ।।
भक्तिभावेन सम्पूज्य सर्वं तस्यै निवेदयेत् ।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा आदौ मध्ये तथान्ततः ।। २६ ।।

पूजा के अन्त में नियमपूर्वक कुमारीगण को आहार निवेदन करे । पाद्य-अर्घ्य-धूप कुंकुम तथा शुभ चन्दन दे । भक्तिभाव से पूजन करके इन सबको सभी पूजोपहार-सामग्री निवेदित करे । पूजा के प्रारम्भ में, मध्य में तथा पूजा के अन्त में कुमारीगण की तीन बार प्रदक्षिणा करे ।। २५-२६ ।।

पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतस्वर्णमौक्तिकैः ।
विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।। २७ ।।
गोहत्याञ्चैव स्त्रीहत्यां सर्वपापं विनश्यति ।
मातरश्चैव पितरो भ्रातरश्चैव सर्वतः ।। २८ ।।

अब उन्हें चाँदी, सोने और मुक्ता की दक्षिणा देना चाहिए । अपने खर्चे से कुमारी कन्याओं का विवाह कराये । इससे ब्रह्महत्याजनित पाप भी दूर हो जाते हैं । गोहत्या-स्त्रीहत्या-मातृहत्या-पितृहत्या आदि भयानक पापों का भी विनाश हो जाता है ।। २७-२८ ।।

यत्र यत्र पुनः सर्वे कन्यादानं प्रकल्पयेत् ।
भुक्तिमुक्तिफलं देवी तस्य सर्वत्र सम्पदः ।। २९ ।।
रुद्रलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः ।
षष्टिकोटिसहस्राश्वमेधानां फलमाप्नुयात् ।। ३० ।।
तत्फलं लभते मर्त्यः कन्यां यस्तु विवाहयेत् ।
बालुकाः सागरे यावत् तावत् कल्पं नरेश्वरः ।। ३१ ।।

अतः सर्वदा और सर्वत्र पुनः-पुनः कन्यादान करना चाहिए। हे देवी ! इससे कन्यादान करनेवाले को सर्वभोग, सर्वसम्पदा तथा मोक्ष प्राप्त हो जाता है। ऐसा साधक मृत्यु के अनन्तर भगवान् त्रिनेत्र (रुद्र) के रूप में रुद्रलोक में अनन्तकाल-पर्यन्त वास करता है। जो कुमारी कन्याओं का विवाह कराता है, उसे करोड़ों अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। समुद्र में जितने बालुका-कण हैं, वह उतने कल्पों तक पृथ्वी पर राजा के रूप में जन्म लेता है ॥ २९-३० ॥

एकैकं कुलमुद्धृत्य सम्यक् कल्पगतोऽपि च।
तावद् भजन्ति ते भोगान् यावद्दिवि दिवौकसः ॥ ३२ ॥
कन्यादानं महादानं सर्वदानेषु चोत्तमम्।
दौर्भाग्यं नश्यति क्षिप्रं सौभाग्यश्च प्रवर्तते ॥ ३३ ॥
राजद्वारे लभेत् पूजां राज्यमारोग्यमेव च।
सर्वेषाञ्च कुमारीणां पूजनं विधिवच्चरेत् ॥ ३४ ॥
महाभये समुत्पन्ने कन्यकाञ्च प्रपूजयेत्।
तत्क्षणाल्लभते मोक्षं सत्यं सत्यं हि पार्वति ! ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये कुमारीपूजनं तत्फल-कथनञ्च नाम पञ्चदशः पटलः ॥

जो एक भी कुमारी कन्या (दूसरे की कन्या) का विवाह कराता है, वह एक कल्प-पर्यन्त उसका फल प्राप्त करता है। जब तक देवगण स्वर्ग में निवास करते हैं, तब तक वह स्वर्ग-सुख का भोग करता रहता है।

इस प्रकार से असहायों की कन्याओं का कन्यादान करना दोनों में सर्वश्रेष्ठ है। इसके द्वारा दुर्भाग्यसमूह शीघ्रता से नष्ट होकर सौभाग्य मिलता है।

इसके द्वारा राजसभा में सम्मान, राज्य तथा आरोग्य प्राप्त होता है। अतएव सदा कुमारी का पूजन करना उचित है।

हे पार्वती ! यह ध्रुव सत्य है कि महाभय उपस्थित होने पर कुमारी-पूजा करने पर उस भय से शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होती है। अतएव महान् विपत्ति में यह पूजन अवश्य करे ॥ ३२-३५ ॥

॥ पञ्चदश पटल समाप्त ॥

षोडशः पटलः

(शवसाधनपद्धतिः पुरश्चरणविधिश्च)

देव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! ।
जपपूजाविहीनो यः केन सिद्धिश्च जायते ॥ १ ॥

देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव ! महादेव ! आप सर्वज्ञ तथा परमेश्वर हैं। जप तथा पूजा रहित होने पर सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है, इसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

भैरव उवाच—

शृणु देवि ! रहस्यं मे परं तत्त्वं वदामि ते ।
यस्याः स्मरणमात्रेण भुक्ति मुक्तिञ्च विन्दति ॥ २ ॥
अनेन ध्यानमात्रेण भुक्ति मुक्तिञ्च विन्दति ।
अनेन ध्यानमात्रेण साधकस्य मतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

भैरव कहते हैं—हे देवी ! जिसके स्मरण मात्र से ही साधक भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है, मैं उस गोपनीय परमतत्त्व को तुमसे कहता हूँ । श्रवण करो । इसके ध्यानमात्र से साधक को भोग तथा मोक्ष मिलता है और साथ में साधक ध्यानमात्र से मतिमान् हो जाता है ॥ २-३ ॥

जपहोमविहीनस्य साधकस्यापि सिद्धिदा ।
भवानी तस्य सर्वज्ञे तत्त्वबोधप्रवर्तिका ॥ ४ ॥

साधक जप तथा होम रहित होने पर भी इस पद्धति से सिद्धि प्राप्त करता है । हे सर्वज्ञ ! स्वयं भवानी इस पद्धति से साधक के तत्त्वज्ञान को जगाती हैं ॥ ४ ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतत् शुचिस्मिते ! ।
नैव योषित् समाराध्या न विष्णुर्नापि शङ्करः ॥ ५ ॥
स्त्रियं प्राणाः स्त्रियो देवाः स्त्रिय एव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा न प्रसीदति ॥ ६ ॥

हे शुचिस्मिते ! यह सर्वदा सत्य है । इसी पद्धति में आराधना करने पर सिद्धि-लाभ होना अवश्यम्भावी है । इस पद्धति में स्त्री, शंकर अथवा विष्णु कोई भी आराध्य नहीं हैं । इस पद्धति में आद्याशक्ति रूपिणी स्त्री को प्राणरूप

से, देवतारूप से, भूषण रूप से तथा संगिनी रूप से मानना चाहिए अन्यथा मन्त्र में सिद्धि नहीं मिलती ॥ ५-६ ॥

दोषान्न गणयेत् स्त्रीणां गुणमेव प्रकाशयेत् ।
शतापराधसंयुक्तां पुष्पेणापि न ताडयेत् ॥ ७ ॥
अशुद्धमपि शुद्धं स्याद् युवत्यां वा करं स्पृशेत् ।
श्राद्धे विवाहे दाने च तथा देवप्रपूजने ॥ ८ ॥
योषितः पूजयित्वादौ ततः कर्म समारभेत् ।
गन्धपुष्पादिवस्त्राद्यैर्भक्ष्यैर्भोज्यैर्जनैरिह ॥ ९ ॥

कभी भी नारियों के दोष को व्यक्त न करे। सर्वदा उनके गुण को ही कहे। नारी द्वारा सैंकड़ों अपराध करने पर भी उसे पुष्प से भी ताड़ित न करे अर्थात् मारे नहीं।

यदि नारी अशुचि (अशुद्ध) है, तब भी उसे शुद्ध ही समझना चाहिए। युवती होने पर भी श्राद्ध-विवाह-दान तथा पूजा में उसका कर स्पर्श करे।

सर्वदा कुलयुवती स्त्री का गन्ध-पुष्प-वस्त्र-भक्ष्य-भोज्य तथा जल द्वारा पूजन करना चाहिए और तदनन्तर कार्य आरम्भ करे ॥ ७-९ ॥

न चेन्निष्फलतां याति दुर्गामन्त्रार्चकस्य वै ।
नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ॥ १० ॥
तथैव योषितां पूजा परमानन्ददायिनी ।
क्रुद्धायां योषिति क्रुद्धः सदाहं कुलनायकः ॥ ११ ॥

अन्यथा दुर्गामन्त्रोपासकों की समस्त साधना व्यर्थ हो जाती है। प्रथमतः नित्य श्राद्ध-सन्ध्या-वन्दन तथा पितृतर्पण करे। तदनन्तर कुलयुवती की परमानन्ददायिनी पूजा प्रारम्भ करे। शिवजी कहते हैं कि कुलयुवती के क्रुद्ध होते ही मैं भी क्रुद्ध हो जाता हूँ ॥ १०-११ ॥

दुःखितायां सदा देवी दुःखिता शापदायिनी ।
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागो ब्रह्मा शम्भुस्तथा हरिः ॥ १२ ॥
वरञ्चाहं परित्याज्यो नावमान्या तु कामिनी ।
वृथा न्यासं वृथा पूजा वृथा जापो वृथा स्तुतिः ॥ १३ ॥
वृथा सदक्षिणो होमो यद्यप्रियकरः स्त्रियाः ।
वरं जनमुखान्निन्दा वरं वा गर्हितं यशः ॥ १४ ॥
वरं प्राणपरित्यागो न कुर्यादप्रियं स्त्रियाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजितव्या नितम्बिनी ॥ १५ ॥

कुलशक्ति के दुःखी होने पर स्वयं आद्याशक्ति भी दुःखी हो जाती हैं। वे साधक को शापित करती हैं। माता-पिता एवं गुरु का त्याग, किंवा ब्रह्मा'

विष्णु, शम्भु का भी त्याग कर सकते हैं, परन्तु नारी की अवमानना करना अनुचित है। कामिनियों के प्रति अप्रिय व्यवहार और अप्रिय कार्य करने से न्यास-पूजा-जप स्तुति अथवा दक्षिणायुक्त हवन भी निष्फल हो जाते हैं। लोगों के मुख से भले ही अपनी निन्दा तथा अपवाद भी सह लिया जाये अथवा प्राण भी दे दिये जायें, तथापि नारीगण के प्रति अप्रिय कार्य नहीं करना चाहिए। उनकी पूजा ही करनी चाहिए ॥ १२-१५ ॥

यद् यदिष्टतमं लोके लभते तत्तदेव हि।
मुक्तिश्चापि तथा चान्ते लभते नात्र संशयः ॥ १६ ॥
एतत्ते कथितं देवि! शक्तिमन्त्रस्य साधने।
विना येन न सिध्यन्ति मन्त्राः कल्पशतैरपि ॥ १७ ॥

नारीगण के प्रति सम्मान का प्रदर्शन करने से साधक अपनी साधना द्वारा इस लोक का इष्टतम फल निश्चितरूप से प्राप्त कर लेता है और मृत्यु के अनन्तर मोक्ष प्राप्त करता है। यह सब भी निःसन्दिग्ध है।

हे देवी! शक्तिमन्त्र साधन का यह रूप कहा है। इसके अभाव में सैकड़ों कल्पों में भी मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती ॥ १६-१७ ॥

न धाता नाच्युतः शम्भुर्न च वाहं सनातनः।
योषिदप्रियकर्त्तारं रक्षितुं क्षमतेऽपि कः ॥ १८ ॥

नारीगण का अप्रिय करने वाले व्यक्ति की ब्रह्मा, अच्युत, शम्भु अथवा सनातनरूपी मैं भी रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए उसकी रक्षा करने में कौन समर्थ हो सकता है? ॥ १८ ॥

देव्युवाच—

महाचीनक्रमं देव! सूचितं न प्रकाशितम्।
कथयस्व महादेव! सर्वसिद्धिप्रदं महत् ॥ १९ ॥

देवी कहती हैं—हे महादेव! आपने महाचीनक्रम की सूचना ही दी है, परन्तु उसे प्रकाशित नहीं किया है। हे देव! यह कहिए कि यह साधना कैसे सम्पन्न होती है? ॥ १९ ॥

भैरवी उवाच—

सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात् सर्वदेवनमस्कृतम्।
सर्वपापहरञ्चैव सर्वरोगविनाशनम् ॥ २० ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां दिक्पालानाञ्च तारिणी।
भैरवाणाञ्च सर्वेषां गन्धर्वाणाञ्च योगिनाम् ॥ २१ ॥

सर्वसिद्धिप्रदं देवि ! सर्वेषामपि यद्भवेत् ।
सर्वपापहरे देवि ! वीरसाधनमाश्रितम् ।
नान्यत् सिद्धिप्रदं देवि ! वीरसाधनवर्णितम् ॥ २२ ॥

भैरव कहते हैं—यह वीरसाधन सभी देवों के लिए नमस्कार योग्य है और साक्षात् सर्वसिद्धि देने वाले हैं । इस साधना को सर्वपापहारी तथा सर्वरोग विनाशक कहते हैं ।

हे तारिणी ! ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर तथा दिक्पाल, भैरव, गन्धर्व तथा योगीगण—ये सभी इस साधना से आप्तकाम होते हैं । हे देवी ! यह साधना सभी पापों को हरने वाली है । हे देवी ! इस साधना द्वारा सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है । हे देवी ! वीरसाधना के सिवाय अन्य कोई भी साधना इतनी शीघ्रता से सिद्धि दे सकने में समर्थ नहीं है ॥ २०-२२ ॥

महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः ।
स्वेच्छावांश्च दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः ॥ २३ ॥
तेषां कृते महेशानि ! कथ्यते वीरसाधनम् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ २४ ॥
कृष्णपक्षे विशेषेण यथाविधि प्रसाधयेत् ।
भौमवारे तमिस्रायां यामे याते च भामिनि ! ॥ २५ ॥
तदर्द्धाभ्यन्तरे सम्यक् पूजोपकरणं बलिम् ।
सामिषान्नं गुडं छागं सुरा पिष्टञ्च पायसम् ॥ २६ ॥
नानाफलस्तु नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसूचितम् ।
चितास्थानं समानीयं सुहृद्भिः शत्रुपाणिभिः ॥ २७ ॥
समानगुणसम्पन्नैः साधको वीतभीः स्वयम् ।
चिताया लक्षणं देवि ! शृणुष्व वरवर्णिनि ! ॥ २८ ॥

जो व्यक्ति महाबली, महाबुद्धि, महासाहसिक, पवित्र, महान् स्वेच्छावाला, दयावान् तथा सबके हित में रत हैं, केवल वे ही वीरकार्य सम्पन्न कर सकते हैं । अब इसकी साधन-विधि को मैं कहता हूँ । शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि में, विशेषतः कृष्णपक्ष के मंगलवार की रात्रि में वीरसाधन नियमानुसार करना चाहिए । हे भामिनी ! इन सभी तिथियों तथा वार की अर्द्धरात्रि में सभी पूजोपकरण, सामिष अन्न, गुड़, छाग, सुरा, पिष्टक, पायस द्वारा बलि प्रदान करे ।

नाना प्रकार के फल तथा आमिषयुक्त नैवेद्य प्रदान करना चाहिए । इसके अनन्तर साधक अपने समान गुणसम्पन्न शस्त्रधारी बन्धुओं को चिता-

स्थान में लाये और स्वयं भी निर्भयचित्त होकर रहे। हे वरवर्णिनी! अब चिता के लक्षणों को सुनो ॥ २३-२८ ॥

असंस्कृता चिता ग्राह्या न तु संस्कारसंस्कृता।
चाण्डालादिषु सम्प्राप्ता केवलं शीघ्रसिद्धिदा ॥ २९ ॥
शवञ्चापि चितापार्श्वे नीत्वा गत्वा यथासुखम्।
स्नात्वा रक्षां सुबद्ध्वैव देवताध्यानतत्परः ॥ ३० ॥

इस साधन के लिए असंस्कृत चिता ग्रहण करे। धोई तथा परिष्कृत चिता उचित नहीं है। चाण्डाल आदि अन्त्यजों की चिता तथा शव शीघ्र सिद्धिप्रदायक होता है।

साधक स्नान के अनन्तर बन्धुवर्ग द्वारा सुरक्षित तथा देवता-ध्यान में तत्पर होकर सुखपूर्वक चितास्थान में जाये और शव को बाँधकर ले आये ॥२९-३०॥

भीतश्चेत् साधकस्तत्र चतुर्दिशि च बान्धवाः।
नो चेत् स्वयं साधकोऽसौ भैरवः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥

साधक के भयभीत होने पर उसके बन्धुगण उसे चारों ओर से घेर कर रक्षा करें। जब साधक भयभीत नहीं होता, तब वह स्वयं ही भैरव है ॥३१॥

वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्भूषितः पूर्वदिङ्मुखः।
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षणं योगभूमिषु ॥ ३२ ॥
गुरुपादरजो ध्यात्वा गणेशं बटुकं तथा।
योगिनीं मातृकाञ्चैव वामपादपुरःसरम् ॥ ३३ ॥
ये चात्र संस्थिता देवाः राक्षसाद्या भयानकाः।
पिशाचयक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ३४ ॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः ॥ ३५ ॥

साधक वस्त्र-अलंकार-भूषण से सजकर पूर्वाभिमुख होकर बैठे और मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' को जोड़कर इस मन्त्र से साधना-स्थल को जल से शुद्ध करे।

तदनन्तर मन ही मन गुरु के चरणकमल, तत्पश्चात् गणेश-बटुक-योगिनी और मातृकागण का ध्यान करे। अब बायें पैर को आगे रखकर और दाहिने पैर को पीछे रखते हुए खड़ा होकर अग्रिम श्लोकों (३४-३५) को पढ़े।

इन श्लोकों का तात्पर्य है कि इस स्थान में जितने देवता, भयानक राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सराएँ, योगिनी, मातृगण, भूतसमूह, खेचरगण और उनकी स्त्रियाँ विराजित हैं, वे सभी मुझे सिद्धि प्रदान करें और मेरी रक्षा करें ॥ ३२-३७ ॥

प्रणम्य मनुजानेन पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत् ।
श्मशानाधिपतिं पश्चाद् भैरवं कालभैरवम् ॥ ३६ ॥
महाकालं यजेद् यत्नात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये ।
पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥ ३७ ॥

अब मूलमन्त्र द्वारा उन्हें प्रणाम करना चाहिए और उनके लिए तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए । इसके पश्चात् श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकाल को क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर पाद्यादि देकर उनका पूजन करे और उनके लिए बलि भी दे ॥ ३६-३७ ॥

शब्दबीजं ततः पश्चात् श्मशानाधिपतिस्ततः ।
श्मशानाधिपतये च बलिं गृह्ण युगं ततः ॥ ३८ ॥
गृह्णापय पदद्वन्द्वं विघ्ननिवारणं ततः ।
कुरु कुरु सिद्धि ङेन्तं प्रयच्छ स्वाहयान्वितम् ॥ ३९ ॥

अब 'ॐ हुं श्मशानाधिपतये बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धि मे प्रयच्छ स्वाहा'—इस शब्दबीज मन्त्र से श्मशानाधिपति को बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

प्रणवाद्येन मनुजा प्रथमो बलिरीरितः ।
मायान्ते भैरवं पश्चात् भयानकततः परम् ॥ ४० ॥
पूर्ववन्मत्रमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत् ।
हुं मन्त्रे च महाकाली पश्चात् पूर्ववदुद्धरेत् ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर 'ॐ ह्रीं भैरव भयानक बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धि मे प्रयच्छ स्वाहा'—इस मन्त्र के द्वारा दाहिनी ओर बलि प्रदान करे ॥ ४०-४१ ॥

पश्चिमे कामदेवाय प्रणवाद्येन दापयेत् ।
शब्दान्ते कालशब्दान्ते भैरवेति ततः परम् ॥ ४२ ॥

इसके पश्चात् 'ॐ हुँ कामदेव बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्नविदारणं कुरु कुरु सिद्धि मे प्रयच्छ स्वाहा'—इस मन्त्र द्वारा पश्चिम की ओर कामदेव को बलि प्रदान करे ॥ ४२ ॥

श्मशानाधिप इत्येवं पूर्ववच्च बलिं हरेत् ।
चितामध्ये ततो दद्यात् बलित्रयमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥
कालरात्रि ! महाकालि ! कालिके ! घोरनिःस्वने ! ।
गृहाणेमं बलिं मातर्देहि मे सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ४४ ॥

इसके अनन्तर 'ॐ हुं कालभैरव श्मशानाधिपबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय

गृह्लापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धि प्रयच्छ स्वाहा' मन्त्र से कालभैरव को बलि प्रदान करे । इसके पश्चात् चिता में कालरात्रि, काली तथा महाकाली को ४४वें श्लोक को पढ़ते हुए क्रमशः तीनों के लिए तीन बार बलि देनी चाहिए ।। ४३-४४ ।।

कालिकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत् ।
शब्दान्ते भूतनाथास्ते श्मशानाधिप इत्यपि ।। ४५ ।।
प्रणवाद्येन मनुना दापयेत् बलिमुत्तमम् ।
हूं शब्दान्ते सर्वगणनाथान्तेऽधिप इत्यपि ।। ४६ ।।
श्मशानमस्तके दत्त्वा पूर्ववच्च समुद्धरेत् ।
ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन सुन्दरि ! ।। ४७ ।।
अद्भिश्च प्रोक्षणं कृत्वा पीतवस्त्रं न्यसेत् ततः ।
भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं न्यसेत् ।। ४८ ।।
पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धवीरासनस्ततः ।
वीरार्दनेन मनुना रक्षां दिक्षु प्रकल्पयेत् ।। ४९ ।।

कालिका को बलि देने के बाद भूतनाथ को मन्त्र से बलि देना चाहिए । भूतनाथ के बलि सम्बन्धित मन्त्र के अन्त में 'हूँ' शब्द में पश्चात् सर्वगणनाथ तदनन्तर श्मशान उसके बाद अधिप शब्द लगाकर तब पूर्व के ही समान 'इमं बलिं' प्रभृति लगाये । इससे यह बलिमन्त्र गठित होता है—'ॐ हूँ भूतनाथ श्मशानाधिप इमं बलिं गृह्ल गृह्ल गृह्लापय गृह्लापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धि में प्रयच्छ स्वाहा' । इस प्रकार इस मन्त्र द्वारा उत्तम बलि देना चाहिए । इसके पश्चात् गणाधिप हेतु 'ॐ हुँ सर्वगणनाथ श्मशानाधिप इमं बलिं गृह्ल गृह्ल गृह्लापय गृह्लापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धि मे प्रयच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से बलि प्रदान करे ।

हे सुन्दरी । अब पंचगव्य तथा जल द्वारा चिता तथा शवदेह को धो कर पीतवस्त्र के द्वारा उसे ढँक देना चाहिए । तत्पश्चात् भूर्जपत्र अथवा वटपत्र पर जप्यमान मन्त्र का पीठमन्त्र लिख कर उसे चिता अथवा शवदेह पर स्थापित करते हुए उसके ऊपर वीरासन से बैठे । हे देवेशी ! तदनन्तर वीरार्दन मन्त्र से चतुर्दिक् रक्षा का आयोजन सम्यक्तया करे ।। ४५-४९ ।।

कूर्चबीजद्वयं देवि ! मायायुग्ममनन्तरम् ।
कालिके ! घोरदंष्ट्रे ! च प्रचण्डे ! चण्डनायिके ! ।। ५० ।।
दानवान् दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः ।
शवशरीरे महाविघ्नं छेदयद्वितयं पुनः ।। ५१ ।।

द्विषन्तो वर्म चास्त्रान्तो वीरार्दनमनुर्मतः ।
अनेन मन्त्रितं लोष्ट्रं दशदिक्षु विनिक्षिपेत् ॥ ५२ ॥
तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैः परिभूयते ।
यदि प्रसादाद् देवेशि ! साधको भयविह्वलः ।
कृते तैस्तैः सुहृद्वर्गैं रक्षितो नाभिभूयते ॥ ५३ ॥
अर्केन्दुसितवाट्यालतुल्यैर्निर्मितवर्तिकम् ॥ ५४ ॥
प्रदीपं तत्र संस्थाप्य ह्यस्त्रं तत्र प्रपूजयेत् ।
तदधश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत् कुलदीपकम् ॥ ५५ ॥
हृते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ।
तत्तत् कल्पोक्तविधिना भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ ५६ ॥

'हुं हुं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शवशरीरं महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्' मन्त्र से अभिमन्त्रित लोष्ट्र को दशों दिशाओं में फेंकना चाहिए । यही दिक्रक्षण मन्त्र है । इस प्रकार से दशों दिशाओं को सुरक्षित करके साधना में लगने पर भैरवरूपी उस साधक के सम्मुख विघ्न उपस्थित नहीं होते । यदि किसी प्रमाद के कारण साधक डर जाता है, तब उसके चारों ओर स्थित उसके हथियारधारी सुहृद्वर्ग उसका रक्षण करें । इससे साधक का भय समाप्त हो जाता है । मदार के वृक्ष की रुई से बत्ती बनाये, इसमें श्वेत वाटचाल (बलिआर) की रुई भी मिलाकर कर्पूर से इस बत्ती को लपेटे । अब इससे दीपक प्रज्वलित करके वहाँ अस्त्रसमूह का पूजन करना चाहिए । अब मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' शब्द को जोड़कर इस मन्त्र को पढ़ते हुए इस प्रदीप को शवदेह के पास मृत्तिका पर अच्छी तरह से रख दे । यदि असावधानी के कारण यह महादीप बुझ जाता है, उस स्थिति में साधक विविध विघ्नों से अभिभूत हो जाता है । अब प्रत्येक की स्व-कल्पोक्त विधि के अनुसार भूतशुद्धि करे ॥ ५०-५६ ॥

मातृकाक्षरसंयुक्तां विद्यां षड्धा न्यसेत् पुनः ।
क्रमात् व्युत्क्रमयोगेन तारा षोढा प्रकीर्तिता ॥ ५७ ॥
षोढा विन्यस्तदेहस्तु साक्षात् विश्वेश्वरो भवेत् ।
षोढां वा तारिकां वापि विन्यस्य पूजयेत्ततः ॥ ५८ ॥
मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
एकाक्षरो यदि भवेद् दिक्सहस्रं ततो जपेत् ॥ ५९ ॥
द्व्यक्षरेष्टसहस्रं तु त्र्यक्षरे चायुतार्द्धकम् ।
ततः परन्तु मन्त्रज्ञे ! गजान्तकसहस्रकम् ॥ ६० ॥

मातृकावर्ण सम्पुटित करके मूलमन्त्र के द्वारा छः बार न्यास करे । तद-

नन्तर विपरीत क्रम से पुनः न्यास करे। यही ताराषोढ़ा है। अपनी देह में यह न्यास करने से साधक विश्वेश्वर हो जाता है। अब शवदेह में भी ताराषोढ़ा अथवा तारामन्त्र द्वारा न्यास करके पूजा प्रारम्भ करे। पूजा के अन्तिम चरण में मन्त्रध्यान युक्त होकर साधक मन्त्र जप करे। यदि साध्य मन्त्र एक अक्षर वाला है, उस स्थिति में दस हजार मन्त्र जप करे। यदि साध्यमन्त्र दो अक्षर का है, तब आठ हजार बार जपना चाहिए। यदि दो अक्षर से अधिक अक्षरों वाला मन्त्र है, तब उसे एक हजार आठ बार जपना ही पर्याप्त है॥ ५७-६०॥

निशायां जपमारभ्य उदयान्तं समाचरेत्।
जपादौ तु बलिं दत्त्वा पश्चादपि बलिं हरेत्॥ ६१॥
जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषते।
तत्पश्चाच्च बलिं दद्यात् माहिषं वापि छागलम्॥ ६२॥

निशाकाल में पूजा का अन्त करके जप आरम्भ करके सूर्योदय के पूर्वक्षण तक जप करना चाहिए। जप के आरम्भ के पूर्व एक बार बलि देना चाहिए और जप के अन्त में पुनः बलि प्रदान करे। जप के अन्त में और मध्य में 'देहि देहि' का उच्चारण करना चाहिए। तदनन्तर छाग अथवा महिष की बलि प्रदान करे॥ ६१-६२॥

न दिक्षु वीक्षणं किञ्चित् न च बन्धुसमागमः।
जलाग्निदुष्टसर्पाणां गजानां राक्षसांस्तथा॥ ६३॥
पक्षिकीटपिशाचानां यद् यद् वा मनसि स्थितम्।
तत् सर्वं स्वप्नवत् बुद्ध्वा भयं सर्वत्र वर्जयेत्॥ ६४॥

शवासन पर बैठने के पश्चात् कहीं भी न देखे। यहाँ तक कि अपने बन्धु-बान्धवों की ओर भी दृष्टिपात न करे। जपारम्भ करने के अनन्तर उसे मन की आँखों द्वारा चाहे जल-अग्नि-दुष्टसर्प-गज-राक्षस-पशु-पक्षी-कीट-पिशाच अथवा अन्य दृश्य क्यों न दृष्टिगोचर हों, उसे स्वप्नवत् ही माने और उस समय भय को छोड़ दे॥ ६३-६४॥

समाप्य साधनं देवि! दक्षिणां विभवावधि।
गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा निवेदयेत्॥ ६५॥
सम्यक् सिद्धचैकमन्त्रस्य नासाध्यं विद्यते क्वचित्।
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव एव सः॥ ६६॥

हे देवी! साधन समाप्त करके साधक अपने सामर्थ्य के अनुरूप गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी को दक्षिणा प्रदान करे। मन्त्र की सम्यक् सिद्धि होनेपर कुछ भी असाध्य नहीं रहता। इस साधना में अनेक मन्त्रों की सिद्धि की आवश्यकता ही नहीं है। एक ही मन्त्र सिद्ध होते ही साधक शिवतुल्य हो जाता है॥६६॥

यतः सर्वत्र देवेशि ! गुरुपूजा गरीयसी।
तदग्रे मन्त्रतन्त्राणां भाषणं नैव कारयेत् ॥ ६७ ॥

मन्त्रसिद्धि के लिए गुरुपूजा आवश्यक है। गुरु के सम्मुख मन्त्र-तन्त्र के सम्बन्ध में बातचीत नहीं करनी चाहिए ॥ ६७ ॥

पूजिते गुरुपादे वै सर्वदैव सुखी भवेत्।
सर्वेषां मन्त्रतन्त्राणां पिता सोऽयं सदाशिवः ॥ ६८ ॥

गुरुपूजन करने पर साधक सर्वदा सुखी हो जाता है। स्वयं सदाशिव ही समस्त तन्त्र-मन्त्र के पिता हैं ॥ ६८ ॥

अन्यदेवसपर्यां वा ह्यन्यदेवस्य कीर्तनम्।
गुरुपूजां विना देवि ! तदग्रे नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥
शवारूढा यदि भवेत् तद्विशेष इहोच्यते।
शून्यागारे बिल्वमूले नदीतीरे चतुष्पथे ॥ ७० ॥

पहले गुरुपूजन किये बिना अन्य देवताओं के विषय में कीर्तन करने से साधक नरकगामी होता है। यदि साधक शवारूढ़ होकर शवसाधना की इच्छा करता है, तब उसके लिए विशेष साधना कहता हूँ—शून्यगृह में, बिल्व की जड़ के पास, नदी के किनारे अथवा चौराहा पर शवसाधना करनी चाहिए ॥ ६९-७० ॥

ऊर्ध्वं द्विवर्षाद् यदि वा पञ्च वा तरुणं यदि।
सप्तमाष्टममासीयं गर्भजं यदि वा शवम् ॥ ७१ ॥
चाण्डालं चाभिभूतं वा शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम्।
आनीय स्नापयेदादौ न्यासजालं समाचरेत् ॥ ७२ ॥
पीठमन्त्रं समालिख्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा।
अभ्यर्च्य चासनं दत्त्वा रक्षा स्वात्मनि कारयेत् ॥ ७३ ॥
ततः शवास्ये विधिवद्देवतापूजनं चरेत्।
ततो जप्त्वा सर्वमन्त्रं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ७४ ॥

यदि शव २ वर्ष से अधिक आयु वाले बालक का अथवा ५ वर्ष के बालक का किंवा तरुण पुरुष का अथवा सातवें किंवा आठवें मास के गर्भ का है; अथवा चाण्डाल किंवा अन्य अतिशय नीच जाति का है, उस स्थिति में शीघ्रता से सिद्धि मिलती है। शव को वहाँ लाकर स्नान कराये। तत्पश्चात् न्यास सम्पन्न करे। पहले पीठमन्त्र लिखे। उसके अनन्तर गन्ध-पुष्प आदि द्वारा देवार्चन करके आसन प्रदान करे। तत्पश्चात् आत्मरक्षा करनी चाहिए। फिर यथाविधि शव के मुख में देवपूजन करे। पूजा के अन्त में मन्त्रजप के द्वारा साधक सिद्धि का अधीश्वर हो जाता है ॥ ७१-७४ ॥

तारशब्दं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुद्धरेत् ॥ ७५ ॥
शवस्नापनमन्त्रोऽयं शवासनमनुं ततः ।
मन्त्रान्ते भुवनेशी स्यात् फडन्तो मनुरीरितः ॥ ७६ ॥

'ॐ मृतकाय नमः' का उच्चारण करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र पढ़ते हुए शव को स्नान कराये। अब मूलमन्त्र में 'ह्रीं फट्' लगाकर पढ़ते हुए शवासन पर बैठे। अर्थात् 'ॐ मृतकाय नमः ह्रीं फट्' जोड़कर पढ़ते हुए शवासन पर बैठे। अर्थात् 'ॐ मृतकाय नमः ह्रीं फट्' मन्त्र द्वारा शवासन ग्रहण करे ॥७५-७६॥

महानीलक्रमं देवि ! सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
न कस्यचित् प्रवक्तव्यं गोप्तव्यं प्रीतये मम ॥ ७७ ॥

हे देवी ! यह साधना सर्वसिद्धि देनेवाली महानील साधना है। इसे किसी से भी कहना उचित नहीं है। मेरी प्रीति के लिए इसे सर्वदा गुप्त रखना चाहिए ॥ ७७ ॥

यदुक्तं हि भवे सर्वान् सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
वीरसिद्धिविधानन्तु देवदेवेन शम्भुना ॥ ७८ ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण स्वल्पभावेन सिध्यति ।
अहोरात्रैककाले तु हेलया साधकोत्तमः ॥ ७९ ॥

महादेव शम्भु ने वीरसिद्धि के जिस विधान का वर्णन किया है, वह सभी तन्त्रों में गुप्त है। अर्थात् किसी भी तन्त्र में यह विधान वर्णित नहीं है।

इस साधना का समुचित ज्ञान होने पर एक रात्रि में ही अत्यन्त आसानी से सिद्धि मिल जाती है ॥ ७९ ॥

मन्त्र नत्वा गुरोः पार्श्वे गुरुभक्तिपरायणः ।
मन्त्रश्रोत्रास्यहृन्नेत्रप्राणान् विज्ञाय यत्नतः ॥ ८० ॥
मन्त्रस्य कीलकं ज्ञात्वा कुर्यान्मन्त्रपुरस्क्रियाम् ।
पुरश्चरणसम्पन्नो वीरसिद्धिं समाचरेत् ॥ ८१ ॥

गुरुभक्ति-परायण साधक मन्त्र को नमस्कार करते हुए गुरु के पास जाये और उनसे आदरपूर्वक मन्त्र का कर्ण-मुख-हृदय-नेत्र-प्राण तथा कीलक जान ले। तदनन्तर मन्त्र का पुरश्चरण करे। पुरश्चरण-सम्पन्न मन्त्र द्वारा वीर-साधना के लिए उद्यत हो जाये ॥ ८०-८१ ॥

सम्यक् परिश्रमेणापि नैव सिद्धिं समास्थिता ।
जायते तत्र कर्त्तव्या साधकैर्वीरसाधना ॥ ८२ ॥
पुत्रदारधनस्नेहलोभमोहविवर्जितः ।
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम् ॥ ८३ ॥

यदि सम्यक् परिश्रम से भी अन्य साधनों से मन्त्रसिद्धि न मिले तो उस स्थिति में साधक को वीरसाधना में निरत हो जाना चाहिए। इस साधना में प्रवृत्त होने से पहले स्त्री-पुत्र-धन के प्रति ममत्व बोध-लोभ-मोह का पूर्णतः परित्याग करना होगा। 'मन्त्रसाधन वीरमार्ग से करूँगा अथवा शरीर छोड़ दूँगा' इस प्रतिज्ञा द्वारा मन्त्रसाधना के लिए बलि आदि उपादानों के संग्रह में प्रवृत्त होना चाहिए। जिस मन्त्र का साधन करने के लिए जिन-जिन सामग्री की आवश्यकता है, उनका संग्रह कर लेना चाहिए ॥ ८२-८३ ॥

प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा बलिद्रव्याणि चिन्तयेत् ।
यस्य मन्त्रस्य यद्द्रव्यं तत्तद् द्रव्यञ्च साधकैः ॥ ८४ ॥
शवलक्षणं देवेशि ! शृणु पर्वतनन्दिनि ! ॥ ८५ ॥
सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने ।
ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेत् वीरसाधनम् ॥ ८६ ॥
महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधाने वीरसाधने ।
ब्राह्मणस्तु स्त्रियं त्यक्त्वा साधयेद् वीरसाधनम् ॥ ८७ ॥
शूद्राः प्रयोगकर्त्तृणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धये ।
ऊर्ध्वं द्विवर्षाद् यदि वा पञ्च वा तरुणं यदि ॥ ८८ ॥

ऐसी प्रतिज्ञा करके बलि द्रव्यों का ज्ञान करते हुए जिस मन्त्र हेतु जो द्रव्य आवश्यक हो, उनका संग्रह करना चाहिए।

हे देवेशी ! अब शवलक्षण कहता हूँ। हे पर्वतनन्दिनी ! उसे सुनो। ब्राह्मण तथा गोमय को छोड़कर अन्य किसी भी जन्तु का शव वीरसाधनार्थ ग्रहण किया जा सकता है, तथापि महाशव (अर्थात् मनुष्य का शव) ही वीरसाधन में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसमें स्त्री तथा ब्राह्मण का शव वर्जित है।

शूद्र का महाशव प्रयोगार्थ उत्तम माना गया है। यदि महाशव दो वर्ष से अधिक आयु का अथवा पंचम वर्षीय बालक का किंवा तरुण पुरुष का हो तब उसे प्रशस्त माना जाता है ॥ ८४-८८ ॥

सप्तमाष्टममासीयं गर्भजं यदि वा शवम् ।
चाण्डालं चाभिभूतञ्च शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम् ॥ ८९ ॥

यदि शव सात अथवा आठ मास के गर्भज शिशु का हो, किंवा चाण्डाल प्रभृति निम्न जातीय हो उस स्थिति में साधनार्थ उत्तम माना जाता है ॥ ८९ ॥

षष्टि प्रभृतिभिर्विद्धं अन्यं वा विजने मृतम् ।
शवमानीय कर्त्तव्यं नाहरेत् स्वेच्छया मृतम् ।
स्त्रीरमणपतितं चास्पृश्यं वर्ज्यं हि तत् शवम् ॥ ९० ॥

आयु में साठ वर्ष के अथवा निर्जन में मृत पुरुष के शव को साधनार्थ वर्जनीय माना गया है। स्त्रीमरण काल में मृत तथा नपुंसक के शव को भी वर्जित माना जाता है॥ ९०॥

कुष्ठादिरोगसंयुक्तं वृद्धभिन्नं शवं त्यजेत्।
न दुर्भिक्षमृतं वापि न पर्युषितमेव वा।
स्त्रीजातिसदृशं रूपं सर्वथा परिवर्जयेत्॥ ९१॥

कुष्ठरोग ग्रस्त, वृद्ध, दुर्भिक्ष में मृत, एकरात्रि से अधिक पुराना शव अथवा स्त्री के समान रूप वाला शव भी सर्वथा वर्जित है॥ ९१॥

स्थान-निर्णय

शून्यागारे नदीतीरे बिल्वमूले चतुष्पथे।
श्मशाने वा विशेषेण नीत्वा चोद्धृत्य भूषयेत्॥ ९२॥
शून्यागारे ह्यरण्ये वा नीत्वा चैव विभूषयेत्॥ ९३॥

अब वीरसाधना के स्थान का वर्णन किया जाता है। शून्य घर में, नदी में तीर में, बेल की जड़ में, चौराहे पर, श्मशान में अथवा निर्जन वन में शव-देह ले जाये और उसे तन्त्रशास्त्रोक्त विधि से भूषित करे॥ ९२-९३॥

संस्थाप्य कुशशय्यायां पुरुषं दिव्यरूपिणम्।
आनीय स्थापयेदादौ न्यासजातं समाचरेत्॥ ९४॥

शव को कुश-शय्या पर सम्यग् रूपेण स्थापित करके न्यास प्रभृति करे॥ ९४॥

पीठमन्त्रं समालिख्य गन्धपुष्पादिभिस्ततः।
अभ्यर्च्य चासनं दत्त्वा रक्षां मन्त्रेण कारयेत्॥ ९५॥
ततः शवास्ये विधिवत् देवताप्यायनं चरेत्।
भुवनेशि! फडन्ताः स्युः कथिता मनवोत्तमाः॥ ९६॥

अब पीठ मन्त्र लिखकर गंध-पुष्पादि से अर्चना करते हुए आसन प्रदान करे। इसके पश्चात् रक्षामन्त्र के द्वारा साधक को आत्मरक्षा करनी चाहिए। यथाविधि शवमुख में देवता का आप्यायन करे। 'ह्रीं फट्' आदि उत्तम मन्त्र कहे। (इसका पूर्ण विवरण पहले दिया जा चुका है)॥ ९५-९६॥

ततः शवं क्षालयित्वा स्थापयेच्च प्रयत्नतः।
यदि यत्नेन नो तिष्ठेत् भैरवाच्च भयं भवेत्॥ ९७॥
एलालवङ्गकर्पूरजातीखदिरसार्द्रकैः।
ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्यादधोमुखम्॥ ९८॥

अब शव का प्रक्षालन करके उसे यत्नपूर्वक यथास्थान स्थापित करे। यदि साधक के यत्न के उपरान्त भी शव स्थिरतः स्थापित नहीं होता, तब भैरव से भय होना स्वाभाविक है। शव के मुख में इलायची, लौंग, जायफल, खैर (कत्था), अदरक तथा ताम्बूल भर कर उसे उल्टा (अधोमुख) करे ॥ ९७-९८ ॥

स्थापयित्वा च तत्पृष्ठे चन्दनेन विलेपयेत्।
बाह्यमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विधाय च ॥ ९९ ॥
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम्।
पीठमन्त्रं लिखेन्मध्ये तत्तत् कल्पविधानतः।
ततश्चैलेयमजिनं कम्बलास्तरितं न्यसेत् ॥ १०० ॥

उस अधोमुख शव की पीठ चन्दन द्वारा प्रलिप्त करे। बाहुमूल से कमर पर्यन्त शव की पीठ पर समचतुष्कोण अंकित करना चाहिए। मध्य में अष्टदल कमल तथा चतुर्द्वार अंकित करे। मध्य में 'ॐ ह्रीं फट्' मन्त्र के साथ कल्पोक्त विधानानुसार पीठमन्त्र लिखे। अब उसपर वस्त्र, कम्बल, मृगचर्म स्थापित करके न्यास करे ॥ ९९-१०० ॥

पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम्।
संस्थाप्य शवमभ्यर्च्य ततश्चारोहणं चरेत् ॥ १०१ ॥

पूजा के सामान को शव के पास रखे और कुछ दूरी पर उत्तर साधक (गुरु) को बैठाकर शवार्चन करके साधक शव के ऊपर बैठे ॥ १०१ ॥

कुशान् पादतले दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य च।
दृढं निबद्धा चुटिकां तञ्च देवस्वरूपिणम् ॥ १०२ ॥
तस्य देहं सुसम्पूज्य पठेदुत्थाय सम्मुखे ॥ १०३ ॥

शव के पदतल में कुश रखे। शव के बालों को फैलाकर उसकी चोटी का बन्धन करे। अब देवरूपी शवदेह की उत्तम पूजा करके शव से उठकर उसके सामने जा खड़े होकर निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ भीमभीरु भयाभाव भवमोचन भावुक।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ॥ १०४ ॥
इति पादतले तस्य त्रिकोणं यन्त्रमालिखेत्।

अब शव के पादतल में त्रिकोण अंकित करना चाहिए।

तेनोत्थातुं न शक्नोति शवश्च निश्चलो भवेत्।
उपविश्य पुनस्तत्र यातु निःसार्य पादयोः ॥ १०५ ॥

हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत् ।
ओष्ठौ तु सम्पुटीकृत्य स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ।। १०६ ।।
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी जपमथाचरेत् ।
चलच्छवाद् भयं नास्ति भये जाते वदेत्तु तम् ।। १०७ ।।

अब शव उठ नहीं सकेगा । वह निश्चल हो जायेगा । अब पुनः शव पर बैठकर अपनी बाहु को फैला दे और दोनों पैरों और हाथ पर कुश फैलाकर बाहुद्वय के ऊपर पदद्वय को स्थापित करे (यह विशेष आसन है)। दोनों ओठों को आपस में मिला ले (अर्थात् मुख बन्द करे)। मन एवं इन्द्रियों को स्थिर करके साधक हृदय में ध्यान करे और मौन रहकर जप करे। यदि शव उठने लगे अथवा हिलने-डुलने लगे तब भय न करे और भय होने पर निम्न मन्त्र का जप करे ।। १०५-१०७ ।।

यं प्रार्थयसि देवेशि ! दातव्यं कुञ्जरादिकम् ।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ।। १०८ ।।

हे देवेशी ! तुम हाथी प्रभृति जो कुछ चाहो वह मैं अगले दिन तुम्हें प्रदान करूँगा । तुम्हारा क्या नाम है, वह बतलाओ ।। १०८ ।।

इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयश्च पुनर्जपेत् ।
ततश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः ।। १०९ ।।

संस्कृत भाषा में यह कहकर निर्भय होकर पुनः जप करे। तब वह शव यदि मधुर भाषा में नाम बतलाये, तब मधुर भाषा में बातें करना चाहिए ।। १०९ ।।

ततः सत्यं कारयित्वा वरन्तु प्रार्थयेन्नरः ।
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा न प्रयच्छति ।। ११० ।।
तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रं यतमानसः ।
सत्ये कृते वरं लब्ध्वा सन्त्यजेत् तु जपादिकम् ।। १११ ।।

अब साधक मनुष्य उसे प्रतिज्ञाबद्ध कराकर अभीष्ट वर की प्रार्थना करे। यदि वह प्रतिज्ञाबद्ध नहीं होता और वर नहीं देता, उस स्थिति में संयत तथा एकाग्रचित्त होकर साधक को पुनः जप प्रारम्भ कर देना चाहिए। जब वे स्वयं प्रतिज्ञाबद्ध होकर वरदान दें, तब साधक को जपादि छोड़ देना चाहिए ।। ११०-१११ ।।

फलं जातमिदं ज्ञात्वा चुटिकां मोचयेत्ततः ।
शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत् पादबन्धनम् ।। ११२ ।।

साधन फल प्राप्त हो जाने पर साधक शव के बालों की चोटी को खोल दे

और शवदेह को धोकर यथारीति से उसके दोनों पैरों का बन्धन खोल दे (शव-स्थापना के समय दोनों पैर बाँध दिये जाते हैं)।

पादचक्रं मोचयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत् ।
शवं जले च गर्त्ते वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत् ॥ ११३ ॥

पैरों का बन्धन खोलकर समस्त पूजन सामग्री जल में फेंक देनी चाहिए । शव को जल में अथवा गढ़े में फेंक कर साधक को स्नान कर लेना चाहिए ॥ ११३ ॥

ततश्च स्वगृहं गत्वा बलिं दद्यात् दिनान्तरे ।
पूजयित्वा ततो देवीं याचितोऽहं बलिं प्रियम् ॥ ११४ ॥
तेन गृह्णन्तु सर्वे च मया दत्तमिमं बलिम् ।
ततो वै याचितानश्वान् नरकुञ्जरशूकरान् ॥ ११५ ॥
दत्त्वा पिष्टमयानन्ते कर्त्तव्यं समुपोषणम् ।
परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिबेत् ततः ॥ ११६ ॥

अब साधक अपने घर जाकर दूसरे दिन बलि प्रदान करे । जो वचन दिया था वही बलि प्रदान कर उसे यह कहना चाहिए—'हे देवी ! तुमने जिस प्रिय बलि की कामना की थी, मैं वह बलि दे रहा हूँ । इसे आप सब ग्रहण करें ।' अब साधक देवी को वचनानुसार नर, कुंजर, अश्व, शूकर प्रभृति बलि देकर अन्त में इन सबकी पिष्टकमय बलि देकर उपवास करे । अगले दिन नित्यकर्म का आचरण करके पंचगव्य पान करना चाहिए ॥ ११४-११६ ॥

ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसङ्ख्यकान् ।
सप्तपञ्चविहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि ॥ ११७ ॥
ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले ।
यदि न स्याद्विप्रभोज्यं यदा निर्धनतां व्रजेत् ॥ ११८ ॥

अब २५ ब्राह्मणों को भोजन कराये । यदि इतना सामर्थ्य नहीं है, तब २० अथवा १८ किंवा न्यूनतम १० ब्राह्मणों को भोजन कराये ।

अब स्नान तथा भोजन करके उत्तम स्थान में निवास करना चाहिए । जो ब्राह्मण-भोजन नहीं कराता, वह निर्धनता को प्राप्त होता है ॥ ११७-११८ ॥

तेन चेन्निर्धनं न स्यात्तदा देवी प्रकुप्यति ।
त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं नवरात्रञ्च गोपयेत् ॥ ११९ ॥

यदि ब्राह्मण-भोजन नहीं कराने पर भी धनहीन नहीं होता, तब उस पर देवी का कोप हो जाता है । सिद्धि-प्राप्ति के अनन्तर ३, ६ अथवा ९ रातों तक सिद्धि को गुप्त रखना चाहिए ॥ ११९ ॥

स्त्रीशय्यां यदि गच्छेत्तु तदा व्याधिं विनिर्दिशेत् ।
गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात् ॥ १२० ॥
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदास्य मूकता भवेत् ।
पञ्चदशदिनं यावद् देहे देवस्य संस्थितिः ॥ १२१ ॥

सिद्धि लाभ से १५ दिनों तक साधक में देवी निवास करती हैं । इस १५ दिनों तक साधक को नारीगमन करने से रोग होता है । गीत सुनने से बधिरता आती है और नृत्य-दर्शन से अन्धता होना निश्चित है । दिन में बातचीत से मूकता का संचार होता है ॥ १२०-१२१ ॥

न स्वीकुर्यात् गन्धपुष्पे बहिर्याति यदा यदा ।
तदा वस्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद्वसनान्तरम् ॥ १२२ ॥

इन १५ दिनों तक घर के बाहर जाने पर गन्ध-पुष्पादि ग्रहण करना वर्जित है । बाहर जाते समय साधना वाला वस्त्र उतार कर अलग वस्त्र पहने अर्थात् घर में बाह्य संसर्ग वाला अशुद्ध वस्त्र नहीं पहनना चाहिए ॥ १२२ ॥

गोब्राह्मणविनिन्दाञ्च न कुर्याच्च कदाचन ।
दुर्जनं पतितं क्लीवं न स्पृशेच्च कदाचन ।
देवगोब्राह्मणादींश्च संस्पृशेत् प्रत्यहं शुचिः ॥ १२३ ॥

इन १५ दिनों के काल में गाय, ब्राह्मण की निन्दा नहीं करनी चाहिए । दुर्जन-पतित-नपुंसक का स्पर्श भी न करे । प्रतिदिन पवित्र होकर देवता, गाय, ब्राह्मण आदि का स्पर्श करे ॥ १२३ ॥

प्रातर्नित्यक्रियान्ते च बिल्बपत्रोदकं पिबेत् ।
ततः स्नात्वा तु गङ्गायां प्राप्ते षोडशवासरे ॥ १२४ ॥

१५ दिनों तक प्रतिदिन नित्यक्रिया के अनन्तर बिल्वपत्र के जल को पीना चाहिए (ऐसा जल जिसमें बिल्वपत्र भीगा हो) । तत्पश्चात् १५ दिन व्यतीत करके १६वें दिन गंगास्नान करे ॥ १२४ ॥

स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पणान्ते नमःपदम् ।
एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवान् सन्तर्पयेज्जलैः ॥ १२५ ॥
स्नानतर्पणशून्यस्य न स्यात् देवस्य तर्पणम् ।
इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥ १२६ ॥
इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम् ।
पञ्चगव्यन्तु पातव्यं मूलमन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ १२७ ॥

गंगास्नान के अनन्तर मूलमन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर 'तर्पयामि नमः' कहना चाहिए । इस प्रकार ३०० बार जल से देवता का तर्पण करे ।

स्नान तथा तर्पण के बिना देवतर्पण न करे। इस प्रकार कार्य करने से शव-साधना सिद्ध हो जाती है। इस साधना की सिद्धि के प्रभाव से इस लोक के श्रेष्ठ भोगों को भोगकर अन्त में वह शिवलोक को प्राप्त होता है। साधक को मूलमन्त्रोच्चारण करके पञ्चगव्य का सेवन करना चाहिए ॥ १२५-१२७ ॥

अन्य प्रकार से पुरश्चरण

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
कुजे वा शनिवारे च नरमुण्डं समाहृतम् ॥ १२८ ॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धं मानतः कानने वने ॥ १२९ ॥
तत्र तद्दिवसे रात्रौ साहस्रं यदि साधकः।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ॥ १३० ॥

अब दूसरे प्रकार का पुरश्चरण कहा जा रहा है। मंगल अथवा शनिवार को नरमुण्ड लाकर उसका पहले चन्दन से, तदनन्तर पञ्चगव्य से लेपन करे। अब किसी दूरवर्त्ती अथवा निकटवर्त्ती वन में आधा हाथ भूमि खोदकर उसमें यह मुण्ड रखे और गढ़े को बराबर करे। अब उस दिन रात्रि में उस पर बैठकर साधक को एक सहस्र जप करना चाहिए। इस प्रकार से एकाकी जप करने पर साधक स्वयं कल्पवृक्ष के समान फलयुक्त हो जाता है ॥ १२८-१३० ॥

अन्यत्प्रकारं देवेशि ! कालीतन्त्रोक्तमादितः।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव शुचिः पूर्वमुपासितः ॥ १३१ ॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः।
ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः।
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमं चरेद् बुधः ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये शवसाधनपुरश्चरणकथनं नाम षोडशः पटलः ॥

हे देवेशी ! अन्य प्रकार का कालीतन्त्रोक्त पुरश्चरण सुनो। सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के समय पवित्र होकर (एक दिन पहले) उपवास करे। तब ऐसी नदी में, जो कि समुद्र में गिरती हो (जैसे गंगा), उसमें नाभिपर्यन्त जल में खड़ा होकर ग्रहण के प्रारम्भ से मोक्षकाल तक एकाग्र होकर जप करना चाहिए। मोक्षकाल के उपरान्त उसका दशमांश (जितना जप किया हो उसका दसवाँ हिस्सा) हवन करे ॥ १३१-१३२ ॥

॥ षोडश पटल समाप्त ॥

सप्तदशः पटलः

(मन्त्रक्रमः)

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! सृष्टिस्थितिलयात्मक ! ।
त्वं गतिः सर्वदेवानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्त्रक्रममनुत्तमम् ॥ १ ॥

देवी कहती हैं—हे देवाधिदेव ! महादेव ! सृष्टि-स्थिति तथा लयस्वरूप ! आप समस्त देवताओं तथा देवीसमूह की एकमात्र गति हैं। अब मैं सर्वोत्तम मन्त्र-क्रम को सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

श्री ईश्वर उवाच—

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि नीलायाः सर्वसिद्धिदान् ।
तेषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥ २ ॥
मायाबीजं समुद्धृत्य तकारं वह्निसंयुतम् ।
मायाविन्द्वीश्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धरेत् ॥ ३ ॥
कूर्चबीजं तृतीयञ्च फट्कारं तदनन्तरम् ।
सम्पूर्णसिद्धिमन्त्रस्तु रश्मिपञ्चकसंयुतम् ॥ ४ ॥

ईश्वर कहते हैं—अब मैं नीलसरस्वती के सर्वसिद्धि को देने वाले भेदों को कहता हूँ, जिसे जानने मात्र से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

मायाबीज (ह्रीं) का उद्धार करके उसे वह्निबीज (र) से युक्त करे। माया (ई) तथा बिन्दुकला (ं) विभूषित 'त' युक्त होने पर द्वितीय बीज (त्रीं) गठित होता है। तृतीय है कूर्चबीज (हुं); तत्पश्चात् है 'फट्'। इन रश्मिपञ्चक को युक्त करने पर मन्त्र गठित होता है—'ह्रीं त्रीं हुं फट्' ॥२-४॥

अनुत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरं ततः परम् ।
पपञ्चमसमायुक्तं पञ्चरश्मिः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

अनुत्तर (अ) का उद्धार करे। तदनन्तर मायोत्तर (उ) तथा पवर्ग के पञ्चम वर्ण (म) तथा नादबिन्दुकला को मिलाने पर वह पञ्चरश्मि कहा जाता है ॥ ५ ॥

प्रथमं सपरं दत्त्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
रेफारूढं स्फुरद्दीप्तमिन्दुबिन्दुविभूषितम् ॥ ६ ॥
एकारञ्च ततो दत्त्वा चतुर्थस्वरभूषितम् ।
दीर्घोकारसमायुक्तं हकारं योजयेत्ततः ।
फट्कारञ्च ततो दद्यात् पूर्णसिद्धिमनुत्तमाम् ॥ ७ ॥

पहले 'स' के परवर्त्ती 'ह' को रेफारूढ़ करके चतुर्थ स्वर ई के द्वारा भूषित करे और नादविन्दु से विभूषित करे । इससे 'ह्रीं' मन्त्र सिद्ध हो जाता है ।

अब चतुर्थस्वरभूषित रेफारूढ़ नादविन्दु से विभुषित 'ए' को लेकर उसके पश्चात् दीर्घ उकार युक्त नादबिन्दु-विभूषित 'ह' का योग करे । इससे (हूँ) गठित होता है । इसमें 'फट्' को जोड़े, यह है—'हूं फट्' । इससे उत्तम पूर्णसिद्धि प्राप्त होती है ॥ ६-७ ॥

वितारैकजटा चैषा महामुक्तिकरी सदा ।
तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती ॥ ८ ॥
ताराद्या पञ्चवर्णेयं श्रीमन्नीलसरस्वती ।
सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥ ९ ॥

यह विद्या जब प्रणव रहित होती है, तब इसे एकजटा कहते हैं । यह मुक्तिकरी है । यह जब तार (प्रणव) और अस्त्र रहित होती है और त्र्यक्षरा हो जाती है, तब इसे महानीलसरस्वती कहते हैं । यह पञ्चाक्षरी विद्या प्रणवादि युक्त होने पर श्रीमन्नीलसरस्वती विद्या हो जाती है । यह सर्वभाषामयी, शुद्धा और समस्त वेदों द्वारा नमस्कृता है ॥ ८-९ ॥

श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी ।
एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा ॥ १० ॥

जब इस विद्या के प्रारम्भ में 'श्री' बीज लगाते हैं, तब इससे समस्त श्री की प्राप्ति होती है । इसके प्रारम्भ में 'ह्रीं' (मायाबीज) लगाने से समस्त इष्टफल मिलता है ॥ १० ॥

वाग्भवाद्या यदा विद्या वाग्रूपा सर्वतोमुखी ।
एषा क्रमगता प्राप्ता मतभेदादनेकधा ॥ ११ ॥

इसके प्रारम्भ में 'ऐं' बीज लगाने पर यह वाग्देवीस्वरूपिणी हो जाती है और सर्वतोमुखी फल देती है । सम्प्रदायों के क्रमानुसार साधक इसे प्राप्त करते हैं । मतों के भेद से यह विद्या विविध प्रकार की परिलक्षित होती है ॥ ११ ॥

वशिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफलप्रदा ।
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित् ॥ १२ ॥

चन्द्रबीजं त्रपान्तस्थबीजोपरि नियोजितम् ।
ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ॥ १३ ॥

वशिष्ठ द्वारा आराधित होने पर नीलसरस्वती विद्या ने शीघ्रता से फल नहीं दिया, इसीलिए मुनि ने इस विद्या को दारुण शाप दिया था। तभी से नीलसरस्वती मन्त्र किसी को भी फलदान नहीं कर सका।

तब मुनि ने त्रपाबीज 'ह्रीं'कार के पश्चात् उसके अन्तस्थ बीज 'त्रीं' के उपर चन्द्रबीज 'स' का योगदान किया। अब विद्या होती है—'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'। इसी के पश्चात् से यह विद्या कुलवधू के समान यशस्विनी हो गयी ॥१२-१३॥

फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम् ।
विषक्षयकरी विद्या ह्यमृतत्वप्रदायिनी ॥ १४ ॥

तब से यह विद्या सभी को फलदान तथा जयप्रदान करने लगी। यह विष का क्षय करने वाली तथा अमृतत्व देने वाली है ॥ १४ ॥

मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते ।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि तारां भुवनतारिणीम् ॥ १५ ॥
स्मरणात् सर्वजन्तूनां भयमाशु विनाशयेत् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत् ॥ १६ ॥
गगनं शेषसंयुक्तं विन्दुनादविभूषितम् ।
कूर्चबीजञ्च हृदयं तारायै च समुद्धरेत् ॥ १७ ॥
सकलं दुस्तरं चैव तारय तारय पुनः ।
तारयुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः ॥ १८ ॥

इस मन्त्र को आयत्त कर लेने पर (तत्त्वार्थज्ञान) साधक इस पृथ्वी पर सदा विजय प्राप्त करता है। अब भवतारिणी (भुवनतारिणी) के मन्त्र का वर्णन करता हूँ। इस मन्त्र का स्मरण करने से ही तत्काल भय समाप्त हो जाता है। प्रथमतः प्रणव, तदनन्तर हृल्लेखा (ह्रीं) लगाये, अन्त में 'आ' में नादबिन्दु का योग करे। इस प्रकार 'ह्राँ' मन्त्र का उद्धार होता है। इसके पश्चात् कूर्चबीज (हूँ) तथा हृदय (नमः) लगाये। अन्त में 'तारायै' शब्द का योजन करे। अब यह विद्या है—'ॐ ह्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐ ॐ स्वाहा'। यह विद्या कल्पवृक्ष के समान है ॥ १५-१८ ॥

गद्यपद्यमयी वाणी साक्षाद्देवो न संशयः ।
चतुर्लक्षजपेनास्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥ १९ ॥
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! वरानने ! ।
तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा काली सरस्वती ॥ २० ॥

यह विद्या साक्षात् देवता एवं गद्यपद्यमयी वाणीस्वरूपा है। यह निःसंदिग्ध है। इसे चार लाख बार जपने से अष्टसिद्धियाँ अपने अधीन हो जाती हैं।

हे वरानने ! हे देवी ! अब अन्य प्रकार से तारिणी का भेद कहता हूँ। तारा-उग्रा-महोग्रा-वज्रा-काली-सरस्वती-कामेश्वरी तथा भद्रकाली को तारिणी कहा जाता है॥ १९-२०॥

ऊष्मवर्णगतोऽजीवो निगमस्वरसंयुतः।
नादविन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरश्मिसमन्वितः ॥ २१ ॥
कपिलो वामकर्णस्थो नादाढचो विन्दुशेखरः।
पार्श्वन्तश्च तथा ज्ञान्तं शरान्तं परिकीर्तितम् ॥ २२ ॥

अजीव 'ह' ऊष्मवर्ण 'र' से युक्त होकर नादविन्दु और 'ई' द्वारा विभूषित होता है; तदनन्तर 'ह्रीं'। अब यह तत्त्वरश्मि 'स्त्रीं' से युक्त होगा। अब 'ह्रीं स्त्रीं' गठित हो जाता है। इसके अनन्तर कपिल 'ह' वामकर्ण 'उ' के द्वारा तथा नाद एवं बिन्दु से युक्त किया जाता है। इससे अब 'ह्री स्त्रीं हुं' का गठन हुआ। अब पार्श्वन्त 'फ' तथा ज्ञान्त 'ट' को मिलाने से 'फट्' का गठन होता है। अब यह शरान्त (फट्कारान्त हुआ) अर्थात् 'फट् फट्'। इससे जिस मन्त्र का गठन हुआ, वह है—'ह्रीं स्त्रीं हुं फट् फट्'। यह तारामन्त्र है॥२१-२२॥

मध्यादिमाया कवचं द्वितीयं मन्त्रमुत्तमम्।
विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यश्च तुरीयकम् ॥ २३ ॥
मायादिकवचान्तश्च पञ्चमं परिकीर्त्तितम्।
माया मध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तश्च सप्तमम्।
अष्टमं कूर्चमध्यं स्यादेवं भेदाष्टकं भवेत् ॥ २४ ॥

उक्त मन्त्र में स्त्रीं बीज प्रथम है, उसके पश्चात् माया (ह्रीं), तदनन्तर कवचबीज (हुं) तथा फट् लगाने पर उग्रा का मन्त्र होता है अर्थात् 'स्त्रीं ह्रीं हुं फट्'। अब आदि बीज अर्थात् 'स्त्रीं' को अन्त में और अन्तिम बीज को अर्थात् 'हुं' को आदि में लगाने से, तदनन्तर वधूबीज 'स्त्रीं' को लगाने पर, तदनन्तर मायाबीज का योग तथा 'फट्' लगाकर जो मन्त्र 'हुं स्त्रीं ह्रीं फट्' गठित होता है, यह महोग्रा का मन्त्र है। 'हुं' को पहले लगाने से अर्थात् 'हुं ह्रीं स्त्रीं फट्' यह वज्रा का मन्त्र बन जाता है।

प्रथमतः मायाबीज 'ह्रीं'; तदनन्तर वधूबीज 'स्त्रीं'; तदनन्तर 'फट्' और अन्त में कूर्चबीज 'हुं' लगाने से अर्थात् 'ह्री स्त्रीं फट् हुं' से नीला (काली) का मन्त्र गठित होता है। स्त्रीबीज (स्त्रीं), मायाबीज (ह्रीं) तथा फट् और 'हुं' अर्थात् 'स्त्रीं ह्रीं फट् हुं' को सरस्वती मन्त्र कहते हैं। अब मायाबीज (ह्रीं), कूर्चबीज (हुं) वधूबीज (स्त्रीं) तथा फट् के योग से 'ह्रीं हुं स्त्रीं

फट्' का गठन होता है। यह है—कामेश्वरी का मन्त्र। स्त्रीं बीज, हुं, ह्रीं तथा फट् के योग से भद्रकाली का मन्त्र गठित होता है, यथा—'स्त्रीं हुं ह्रीं फट्'। इस प्रकार से आठ प्रकार के मन्त्र हैं ॥ २३-२४ ॥

ऋषिः स्यादष्टकश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता तथा।
शम्भुपत्नीं महेशानीं चतुर्वर्गेषु योजयेत् ॥ २५ ॥
त्र्यक्षरस्य विशेषोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै।
जप्ये तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं न्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २६ ॥

इन सभी मन्त्रों के ऋषि हैं—अष्टक; छन्द है—अनुष्टुप् तथा देवता—शम्भु-पत्नी तारा-उग्रा-महोग्रा आदि हैं। चतुवर्ग साधन में इसका विनियोग होता है।

उक्त मन्त्र में जहाँ फ तथा ट् नहीं रहता, वहाँ 'ह्रीं स्त्रीं हुं' रूपी त्र्यक्षर के सम्बन्ध में यह विशेषतः जानना चाहिए कि जप कार्य में त्र्यक्षरमन्त्र तथा न्यास आदि में समस्त मन्त्र प्रयुक्त होते हैं ॥ २५-२६ ॥

काललक्षं जपेन्मन्त्रं पुरश्चरणमारभेत्।
तथापच्छमनीं तारां वक्ष्ये तच्छृणु तत्त्वतः।
यस्याः स्मरणमात्रेण अघमाशु विनाशयेत् ॥ २७ ॥

पुरश्चरण में छः लाख मन्त्र जपे। नियमानुसार पुरश्चरण का आयोजन करना चाहिए। अब आपत्तिशमन करनेवाली तारा के सम्बन्ध में तत्त्वतः उपदेश देता हूँ, जिनके स्मरण मात्र से ही पापसमूह तत्काल विनष्ट हो जाते हैं, उसे सुनो ॥ २७ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारां तु तदनन्तरम्।
ततः स्वाहेति मन्त्रोऽयं पञ्चाक्षर उदाहृतः ॥ २८ ॥

प्रथमतः प्रणव का उद्धार करे। तदनन्तर 'तारा' को लगाये। फिर 'स्वाहा' शब्द लगाये। अब मन्त्र गठित होता है—'ॐ तारे स्वाहा'। यह है तारा का पञ्चाक्षर मन्त्र ॥ २८ ॥

ध्यानं शृणु प्रवक्ष्यामि समस्तापन्निवारणम्।
यस्मिन् सर्वत्र तोयेषु बाधा न भवति स्मृते ॥ २९ ॥

अब इस मन्त्र का वह ध्यान सुनो जिससे समस्त आपत्तियों का निवारण हो जाता है। इससे जल-थल कहीं भी बाधा नहीं रह जाती ॥ २९ ॥

श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे!।
दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम् ॥ ३० ॥
शक्तिभिः स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम्।
रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत् ॥ ३१ ॥

इस मन्त्र की देवता श्यामवर्णा, त्रिनयना तथा द्विभुजा है। एक हाथ में वरमुद्रा तथा दूसरे में पंकजधारिणी हैं। बहुवर्णा-बहुरूपा शक्तिसमूह द्वारा वे घिरी हुई हैं। वे सदा हास्यमय मुखमण्डल वाली, समुज्ज्वल मुक्तामण्डित भूषणों के द्वारा विभूषिता, रत्ननिर्मित पादुकाद्वय पहने हुए विराजमान हैं। यह ध्यान करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं नियमेन यथाविधि।
विद्यास्तवं प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्वावहिता प्रिये ! ॥ ३२ ॥

यथानियम से इस मन्त्र का दस लाख पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। हे प्रिये ! अब अन्य मन्त्र कहता हूँ। तुम श्रवण करो ॥ ३२ ॥

वाग्भवं कुलदेवीञ्च तारकं वाग्भवं तथा।
हृल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः।
अष्टाक्षरमनुः प्रोक्तो वेदमातुरनुत्तमः ॥ ३३ ॥
अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्यो भवेन्नरः।
ध्यानपूजादिकं देवि ! पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये नीलायाः विभिन्ननाममन्त्रक्रमकथनं नाम सप्तदशः पटलः ॥

वाग्भव बीज ऐं, कुलदेवी भुवनेश्वरी बीज ह्रीं, तार ॐ तथा वाग्भव बीज ऐं, हृल्लेखा ह्रीं तथा अस्त्रमन्त्र फट्, अन्त में वह्निजाया 'स्वाहा'। इसे मिलाकर 'ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा' यह अष्टाक्षर मन्त्र वेदमाता नीलसरस्वती का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। इस मन्त्र के द्वारा अंगन्यास करके साधक मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं। हे देवी ! पूर्वोक्त नियमानुसार ध्यान तथा पूजा भी करना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

॥ सप्तदश पटल समाप्त ॥

अष्टादशः पटलः

(शिवशक्त्योरभेदकथनम्)

श्रीदेव्युवाच—

पृच्छाम्येकं महाभाग ! कृपया वद मे प्रभो !।
विना ध्यानं कुम्भकञ्च प्राणायामञ्च कुल्लुकाम् ॥ १ ॥
जपं तपो धारणञ्च सेतुञ्चैव विना करम्।
विना हंसं विना पिण्डं विना भावं विना पदम्।
कथं वा जायते सिद्धिर्वद नाथ ! जगद्गुरो ! ॥ २ ॥

देवी कहती है—हे महाभाग ! हे प्रभो ! आप से एक प्रश्न पूछती हूँ । आप कृपा करके उत्तर प्रदान करें । हे जगद्गुरु ! ध्यान-कुंभक-प्राणायाम तथा कुल्लूका के अभाव में कैसे सिद्धि मिलती है ?

आप कृपया मुझसे जप-तपस्या-धारणा-सेतु-हस्त-हंस-मन्त्र-पिण्ड-पद तथा भाव के बिना होने वाली सिद्धि को पाने के उपाय का वर्णन करिये ॥ १-२ ॥

श्रीमहादेव उवाच—

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरेव च जातिभिः ।
ये शाक्ता ब्राह्मणा देवि ! क्षत्रिया ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ३ ॥
वैश्याश्च ब्राह्मणाश्चण्डी सर्वे शूद्राश्च ब्राह्मणाः ।
ब्राह्मणाः शङ्कराश्चण्डी त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेव कहते हैं—हे देवी ! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र में से जो व्यक्ति शाक्त हैं, वही यथार्थ ब्राह्मण हैं । हे चण्डी ! शाक्तधर्मावलम्बी होने पर ब्राह्मण ही ब्राह्मण है । ऐसा क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र भी ब्राह्मण ही है । हे चण्डी ! जो ब्राह्मण हैं, वे ही त्रिनेत्र चन्द्रशेखर शंकर हैं ॥ ३-४ ॥

रक्तपुष्पैर्जगद्धात्रीं पूजयेन्नीललोचनाम् ।
वज्रपुष्पेण देवेशि ! देवीं नीलाम्बरेश्वरीम् ॥ ५ ॥
पूजयेद् भक्तिभावेन महामोक्षविधायिनीम् ।
नरसम्पर्कहीनाया लतायाः काममन्दिरे ॥ ६ ॥
जातं कुसुममादाय महादेव्यै निवेदयेत् ।
स्वयम्भुकुसुमं देवि ! रक्तचन्दनसंज्ञकम् ॥ ७ ॥
यथा शोणितपुष्पश्च रक्तपुष्पं वरानने ! ।
अनुकल्पं लोहितस्य चन्दनं हरवल्लभे ! ॥ ८ ॥

हे देवेशी ! जगद्धात्री नीललोचना की अर्चना रक्तपुष्प द्वारा करना उचित है । महामोक्ष देनेवाली भगवती नीलसरस्वती को वज्रपुष्प के द्वारा अर्चित करें । ऐसी लता (कुलयुवती), जिसका पुरुष सम्पर्क नहीं हुआ है, उसके काममन्दिर (योनि) से निकले कुसुम (शोणित-रक्त) को महादेवी को निवेदित करना चाहिए । शक्तिपूजा में यह कुसुम रक्तचन्दन कहा जाता है ।

हे वरानने ! इस आराधना में यह स्वयम्भु कुसुम ही रक्तपुष्प के समान है । हे हरवल्लभे ! शोणित का अनुकल्प (उसके स्थान में प्रयोग में लाये जाने वाला) रक्तचन्दन है ॥ ५-८ ॥

कदाचित् कस्य मुक्तिः स्यात् कदाचिद् भुक्तिरेव च ।
एतस्याः साधकस्याथ भुक्तिर्मुक्तिः करे स्थिता ॥ ९ ॥

अन्यान्य साधनों द्वारा कभी-कभी ही मुक्ति अथवा भोग प्राप्त हो सकता है, परन्तु इस साधना के द्वारा मुक्ति तथा भोग मानो हाथों पर रखे हैं ॥ ९ ॥

योगी स्यान्नहि भोगी स्याद् भोगी स्यान्नहि योगवान् ।
योगभोगात्मकं कौलं तस्मात् कौलं समर्चयेत् ॥ १० ॥

योगी कभी भी भोगी नहीं होता और भोगी भी कभी योगी नहीं हो सकता। किन्तु जो कौल हैं, वे ही योगी तथा भोगी दोनों हैं। अतः कौल की अर्चना करे ॥ १० ॥

शिवशक्ति विना देवि! यो धारयति मूढधीः ।
न योगी स्यान्न भोगी स्यात् कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥

शिव तथा शक्ति के बिना जो मूढ़ अन्य धारणाओं में प्रवृत्त होता है, वह सैकड़ों कल्पों में भी न तो योगी होता है और न भोगी ॥ ११ ॥

रुद्रस्य चिन्तनाद् रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुचिन्तनात् ।
तारायाश्चिन्तनात्तारा भवत्येव न संशयः ॥ १२ ॥

साधक रुद्र का ध्यान करके स्वयं रुद्रस्वरूप तथा विष्णु का चिन्तनानुध्यान करके विष्णुरूप हो जाता है। वही तारा का ध्यान करते पर साक्षात् तारारूप हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ १२ ॥

देवीविष्णुशिवादीनामेकत्वं परिचिन्तयेत् ।
भेदकृन्नरकं याति रौरवं पापपूरुषः ॥ १३ ॥
नहि दुर्गासमा पूजा नहि दुर्गासमं फलम् ।
नहि दुर्गासमं ज्ञानं नहि नीलासमं तपः ॥ १४ ॥

दुर्गापूजा के समान पूजन नहीं है। उसके समान लाभ भी कुछ नहीं हो सकता। दुर्गाज्ञान के समान अन्य कोई ज्ञान एवं लाभ नहीं है। नीला (नीलसरस्वती) के समान कोई तप नहीं है। आद्याशक्ति, विष्णु तथा शिव के अभेद का चिन्तन करना चाहिए। जो व्यक्ति इनमें भेददृष्टि रखता है, वह पापपुरुष रौरव नरक में जाता है ॥ १३-१४ ॥

यथा शक्तिस्तथा नीला यथा नीलास्तथा शिवः ।
तत्र यः कुरुते भेदं स एव मूढधीर्नरः ॥ १५ ॥

जो शक्ति हैं, वे ही नीला हैं। जो नीला हैं, वे ही शिव हैं। जो मूढ़ इसमें भेददृष्टि को प्रश्रय देता है, वह मूर्ख ही है ॥ १५ ॥

नीलायाश्चरितं यत्र तत्र कैलासमन्दिरम् ।
इदं सत्यमिदं सत्यमिदं सत्यं वरानने ! ।
स्वर्गमर्त्यतले चण्ड्या नास्ति शाक्तात् परः प्रियः ॥ १६ ॥

हे चण्डी ! जहाँ नीला के चरित्र का कीर्त्तन होता है, वहीं कैलास मन्दिर है । यह सत्य है, सत्य है, सत्य है । हे वरानने ! स्वर्ग तथा मृत्युलोक में मुझे शाक्त की तुलना में अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है ॥ १६ ॥

शृणु देवि ! वरारोहे ! ! नास्ति शाक्तात् परो जनः ।
शाक्तोऽपि शङ्करः साक्षात् परब्रह्मस्वरूपकः ॥ १७ ॥

हे देवी ! हे वरारोहे ! सुनो । शाक्त की तुलना में कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं है । वह साक्षात् शंकर तथा साक्षात् परब्रह्म है ॥ १७ ॥

आराधिता येन नीला तारा त्रिभुवनेश्वरी ।
षोडशी चैव मातङ्गी छिन्ना च बगलामुखी ॥ १८ ॥
आराधिता महेशानी स शिवो नात्र संशयः ।
अतिगोप्यं वरारोहे ! शाक्तानां परमं पदम् ॥ १९ ॥

हे महेशानी ! जो नीला-तारा-त्रिभुवनेश्वरी-षोडशी-मातंगी-बगला अथवा छिन्नमस्ता की आराधना करते हैं, वे शिवस्वरूप हैं । यह तथ्य सन्देह रहित है । हे वरारोहे ! शाक्तगण के द्वारा आराधित परमपद अत्यन्त गोपनीय कहा गया है ॥ १८-१९ ॥

यो जानाति भूमितले स शिवो नात्र संशयः ।
ब्रह्माद्यर्चितपादाब्जं यो भजेत् सततं सदा ॥ २० ॥
स याति चिरकालेन मुक्तिमन्दिरमेव हि ।
एका विद्या च प्रकृतिरेकस्तु ! पुरुषः शिवः ॥ २१ ॥

जो व्यक्ति पृथ्वी में इसे जानता है, वही शिव है । जो ब्रह्मादि द्वारा अर्चित इन देवी के पादपंकज की सतत आराधना करता है, वह चिरकाल के लिए मुक्तिमन्दिर में स्थान प्राप्त करता है । विद्यारूपा प्रकृति तथा पुरुषरूपी शिव एक ही हैं ॥ २०-२१ ॥

एकोऽहं वै त्वञ्च एक एकमेव प्रभाषते ।
एवञ्च मनसा दुर्गां यो भजेद्धरवल्लभाम् ॥ २२ ॥
पूजयेद् मन्त्रपुष्पैस्तु साधको भुवि मण्डले ।
स भवेत् साधकस्तत्र स शाक्तः परिकीर्त्तितः ॥ २३ ॥

तुम तथा मैं एक ही हैं । ये अभिन्न कहे गये हैं । जो मन ही मन हर तथा हरवल्लभा दुर्गा को एक मान कर आराधना करते हैं, शिवशक्ति के अभेद का चिन्तन करते हैं, मन्त्र-पुष्पादि के द्वारा हरवल्लभा दुर्गा का पूजन करते हैं, उन्हें ही प्रकृत साधक तथा वास्तविक शाक्त कहा जाता है ॥ २२-२३ ॥

काकचञ्चुविधायैनं प्राणायामं विशुद्धिदम् ।
कुम्भकं मातृकान्यासं प्राणायामं पुनः पुनः ।
प्राणायामत्रयं भद्रे! ह्यधमोत्तममध्यमः ॥ २४ ॥

काकचञ्चु का अनुष्ठान करके विशुद्धिप्रद इस प्राणायाम को करे। (काकचञ्चु अर्थात् ओठों को कौवे की चोंच के समान सिकोड़ कर वायु खींचना)। कुम्भक-मातृकान्यास तथा प्राणायाम पुनः-पुनः करना चाहिए। हे भद्रे! प्राणायाम त्रिविध है, यथा—उत्तम-मध्यम-अधम ॥ २४ ॥

अधमात् जायते स्वेदो मध्यमाद् गात्रपुष्टिकृत् ।
उत्तमाच्च क्षितित्यागो जायते नात्र संशयः ॥ २५ ॥

अधम प्राणायाम=देह में पसीना होना। मध्यम प्राणायाम=देह में पुष्टि। उत्तम प्राणायाम=पृथ्वी से ऊर्ध्वोत्थान कराता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ २५ ॥

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ २६ ॥
प्राणायामेन सर्वेषां विश्रामो जायते तु सः ।
जपापुष्पैर्द्रोणपुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः ॥ २७ ॥
कृष्णापराजितापुष्पै रक्तैश्च मुनिपुष्पकैः ।
भक्त्या तां पूजयेन्नीलां चण्डिकां परमेश्वरीम् ॥ २८ ॥

प्राण-अपान-समान-उदान-व्यान ही पंचवायु हैं। इन्हें क्रमशः नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त-धनंजय कहते हैं।

इनको प्राणायाम द्वारा विश्राम मिलता है। जपापुष्प, द्रोणपुष्प, करवीर आदि मनोहर पुष्पों से और काली अपराजिता (कोयल) के पुष्पों तथा रक्त अगस्तिया के पुष्पों द्वारा भगवती का पूजन करे ॥ २६-२८ ॥

कालीं करालवदनां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
प्रणमेद् भक्तिभावेन पूजयेद् हरवल्लभाम् ॥ २९ ॥
रक्ताम्बरपरीधानो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ ३० ॥

काली करालवदना-मुण्डमाला से विभूषिता हैं। इन हरवल्लभा का पूजन करके भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। रक्ताम्बर धारण करके लाल माला तथा लाल रंग का चन्दन का अनुलेपन लगाकर समस्त अलंकरणों से सजकर देवी की अर्चना करनी चाहिए ॥ २९-३० ॥

क्रमेणैव महेशानि! सोऽहमित्येव चिन्तयन् ।
एवं कुशासने दुर्गां स्थापयित्वाऽथ साधकः ॥ ३१ ॥

श्मशाने शवमारुह्य मध्यस्थो नरसाधकः।
जप्त्वा महामनुं गुह्यं वसेत् कैलासमन्दिरे ॥ ३२ ॥
शिवोऽहञ्च शिवोऽहञ्च साधको भावयन् सदा।
आद्यामाद्यां समास्थाय ध्यायेत् कुण्डलिनीं सदा ॥ ३३ ॥

हे महेशानी ! अब साधक स्वयं भी 'मैं ही शिव हूँ' इस प्रकार से धारणा करे। और दुर्गा को कुशासन पर बैठाकर इसी प्रकार दुर्गा का चिन्तन करे। जो साधक श्मशान में शव पर बैठकर इस गोपनीयतम महामन्त्र को जपता है, वह कैलास मन्दिर में स्थान प्राप्त करता है।

साधक सर्वदा 'शिवोऽहं' रूपी भावना करते-करते आद्याशक्ति की शरण लेकर सर्वदा कुण्डलिनी का ध्यान करे ॥ ३१-३३ ॥

कदाचित्तारिणीं विद्यां दुर्गां तारकतारिणीम्।
पूजयेत् क्रियया भक्त्या ब्रह्मविद्यां मनोरमाम् ॥ ३४ ॥
सहस्रारे ! महापद्मे ! नीलकण्ठं सदाशिवम्।
ब्रह्मादिगोप्यं देवेशि ! ध्यायेच्छक्तिसमन्वितम् ॥ ३५ ॥

सदा ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी मनोरमा तारकतारिणी दुर्गा-तारिणी आदि महाविद्याओं की भक्ति के साथ पूजा करे और सहस्रार महापद्म में शक्तियों के के साथ (ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी गोपनीय) सदाशिव नीलकंठ का ध्यान करे ॥ ३४-३५ ॥

इदञ्च दुर्लभं तन्त्रं मन्त्रं यन्त्रं महीतले।
वाक्यं परमनिर्वाणं दाम्भिके पशुसाधके ॥ ३६ ॥
गोप्तव्यं वै वरारोहे ! स्वयोनिरिव पार्वति !।
दिवारात्रौ महाभागे ! प्रजपेत् परमं मनुम् ॥ ३७ ॥

हे देवेशी ! ये वर्णित तन्त्र तथा मन्त्र पृथ्वी पर दुर्लभ हैं। हे पार्वती ! हे वरारोहे ! इस परम निर्वाण देनेवाले वाक्य को दंभी तथा पशुसाधक के समक्ष अपनी योनि के समान गुप्त रखना चाहिए तथा दिन-रात भगवती के परममन्त्र का जप करते रहना चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

जप्त्वा भवेन्महाज्ञानी गाणपत्यं लभेत्तु सः।
अहमेव शिवो ब्रह्म शिवोऽहं तु भवाम्यहम् ॥ ३८ ॥
भैरवोऽहं भैरवोऽहं रमणी मम भैरवी।
मनसा ज्ञानमासाद्य साधकेन्द्रो भवेद् भुवि ॥ ३९ ॥
एवं ज्ञानं परं नित्यं निर्विकारं मनोरमम्।
प्राप्येवं सर्वदा जीवो विहरेत् क्षितिमण्डले ॥ ४० ॥

दिन-रात इस महामन्त्र को जपने वाला गाणपत्य पद प्राप्त करता है। मन ही मन यह भावना करे—'मैं शिव हूँ, ब्रह्म हूँ, मैं ही भैरव हूँ। मेरी रमणी ही भैरवी है'। इस ज्ञान को प्राप्त करके साधक पृथ्वी में साधकश्रेष्ठ हो जाता है। इस मनोरम, नित्य तथा निर्विकार परमज्ञान को प्राप्त करके पृथ्वी पर विचरण करता रहे ॥ ३८-४० ॥

पाद्याद्याचमनीयाद्यैः पूजयेत् परमेश्वरीम्।
सदानन्दः शिवो ज्ञेयः सर्वधर्मार्थसाधकः ॥ ४१ ॥
भक्त्या च क्रियया चण्डीं प्रणमेद् यस्तु कालिकाम्।
जीवः शिवत्वं लभते सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४२ ॥

पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय जल आदि से परमेश्वरी आद्याशक्ति की अर्चना करना चाहिए। जो इस प्रकार से अर्चना करता है, उसे सदानन्दमय शिव के समान और सभी धर्म-अर्थ का साधक जानना चाहिए। जो भक्तिपूर्ण क्रिया द्वारा चण्डिका कालिका को प्रणाम करता है वह यद्यपि जीव है, तथापि वह शिवत्व प्राप्त करता है। यह उक्ति सत्य तथा निःसंशय है ॥ ४१-४२ ॥

क्व यमः क्व तपो विष्णुः क्व कलिः कर्महिंसकः।
सर्वेषां मानदं देवं सदा सत्यं विभावयेत् ॥ ४३ ॥

यम-विष्णु तथा कर्महिंसक कलि कहाँ है? सबको मान (Measure) देनेवाले देव को सदा सत्य समझो ॥ ४३ ॥

एवं विधानमासाद्य प्रजपेद् भावयेत् सुधीः।
सोऽचिरेणैव कालेन शिवत्वं लभते जनः ॥ ४४ ॥
सदा क्रिया प्रकर्त्तव्या क्रियया सिद्धिमुत्तमाम्।
प्राप्नोति च सदा सिद्धिं मतानां श्रवणं त्यजेत् ॥ ४५ ॥
श्मशानसिद्धिर्वैराग्यं शवसिद्धिर्वरानने !।
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ॥ ४६ ॥
पशुभावस्तथा देवि! शुद्धश्च धरणीतले।
श्रुत्वा हसन्ति सा काली कराली कमलाकला ॥ ४७ ॥
दिगम्बरा चाट्टहासा प्राह देवं त्रिलोचनम्।
गोप्यं यत् कथितं वाक्यं श्रुतं परमसादरात्।
अतिगोप्यं रहस्यञ्च श्रोतुमिच्छाम्यहं पुनः ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये शिवशक्त्योरभेदकथनं नामाष्टादशः पटलः ॥

इस विधान का अवलम्बन करते हुए सदा पूजन-ध्यान करते रहना चाहिए। यथाविधान ही कर्म करे। इससे ही उत्तम सिद्धि मिलती है। अन्य मतों को कभी भी सुनना उचित नहीं है। तभी सिद्धि मिलती है।

हे वरानने ! श्मशानसिद्धि, वैराग्य तथा शवसिद्धि से दिव्याचारी प्रायः देववत् हो जाता है और वीराचारी भी उद्धत (उर्ध्वगति युक्त) मन वाला हो जाता है।

हे देवी ! पृथ्वी में तो पशुभाव भी शुद्ध है। इस बात को सुनकर कमलाकला करालीरूपिणी देवी ने अट्टहास किया। दिगम्बरी अट्टहास करती हुई कालिका ने शिवजी से कहा—आप ने जो गोपनीय ज्ञान कहा, उसे मैंने अत्यन्त रुचिपूर्वक सुना है। मैं पुनः अतिशय गुप्तरहस्य सुनना चाहती हूँ ॥ ४४-४८ ॥

॥ अष्टादश पटल समाप्त ॥

एकोनविंशः पटलः

(सर्वतन्त्रसाधारणविधिः)

देव्युवाच—

दिव्यञ्च दुर्लभं नाथ ! वीरो जातिरहिंसकः।
पशोर्नाराधिता विद्या वीरतन्त्रे पुरा श्रुतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मवाक्यं सदाशिव ! ॥ १ ॥

देवी कहती हैं—हे नाथ ! हे सदाशिव ! दिव्यभाव अत्यन्त ही दुर्लभ है। वीरसाधक अहिंसक होते हैं और पशुभाव वाले साधकगण द्वारा वीरतन्त्रोक्त विद्या आराधिता नहीं होती। यह वीरतन्त्र में मैंने पहले सुना है। अब मैं ब्रह्मवाक्य को सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच—

श्रुतं भैरवतन्त्रञ्च योनितन्त्रं कुलार्णवम्।
कुलाचारं तथा गुप्तसाधनं गुरुतन्त्रकम् ॥ २ ॥
निर्वाणं समयाचारं वीरतन्त्रं श्रुतं पुरा।
डामरं डामरोड्डीशं श्रुतं कालीविलासकम् ॥ ३ ॥

श्रीशिव कहते हैं—शुभ भैरवतन्त्र, योनितन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, गुप्त साधनतन्त्र, गुरुतन्त्र, निर्वाणतन्त्र, समयाचारतन्त्र, वीरतन्त्र, डामरतन्त्र, डामरोड्डीशतन्त्र, कालीविलासतन्त्र पहले सुना जा चुका है ॥ २-३ ॥

सप्तकोटिमहातन्त्रं मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ।
यामलं देवि ! ब्रह्माद्यं यामलं विष्णुयामलम् ॥ ४ ॥
शिवयामलकं देवि ! यामलं मिश्रयामलम् ।
शक्तियामलकं देवि ! कथितञ्च श्रुतं त्वयि ॥ ५ ॥

मेरे मुख से निर्गत सप्तकोटि महातन्त्र तुमने सुना। हे देवी ! यामल-ब्रह्मादियामल-विष्णुयामल-शिवयामल-मिश्रयामल तथा शक्तियामल को भी मैंने कहा है। इसे तुमने पहले भी सुना है ॥ ४-५ ॥

तथापि हृदयग्रन्थिरस्ति ते परमेश्वरि ! ।
पुरा सुकथितं तन्त्रं पुरा देवि ! त्वया श्रुतम् ॥ ६ ॥
सङ्केतं समयाचारं तन्त्रसङ्केतकं तथा ।
कुलसङ्केतकं नाम सङ्केतं बहु विस्तरम् ॥ ७ ॥
श्मशानसाधनं भद्रे ! शवसाधनमेव च ।
एतत्ते कथितं देवि ! नानाभावं पृथग्विधम् ॥ ८ ॥

हे परमेश्वरी ! इतने पर भी तुम्हारे मन को सन्तोष नहीं हुआ ? हे देवी ! पहले भी मैंने तन्त्रों को सम्यक्‌रूपेण कहा है। तुमने भी उसे सुना है।

मैं संकेत, समयाचार, तन्त्रसंकेत, कुलसंकेत नामक संकेत को अनेक बार विस्तार से कह चुका हूँ। हे भद्रे ! श्मशानसाधना तथा शवसाधना का भी वर्णन तुमसे कर चुका हूँ। अलग-अलग अनेक प्रकार से इसे कहा है ॥ ६-८ ॥

किन्त्वेकं श्रृणु चार्वङ्गि ! कथयामि समासतः ।
मत्स्यं न्यासञ्च मद्यं च मुद्रां मैथुनमेव च ॥ ९ ॥
विज्ञानाञ्चैव वीराणां साधनं भवनाशनम् ।
न मद्यं प्रपिबेद्विप्रो न मुद्रां भक्षयेत् सदा ॥ १० ॥
न मैथुनमगम्यासु कर्त्तव्यं सिद्धिनाशनम् ।
अवधूतः शिवः साक्षादवधूतः सदाशिवः ॥ ११ ॥

हे सुन्दर अंगों वाली ! एक तथ्य संक्षेप में कहना आवश्यक है। सुनो ! वीरसाधक हेतु मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा, मैथुन विद्यासमूह का तथा संसार का नाशक है। विप्र कभी भी मद्यपान न करे और कभी भी मुद्राभक्षण न करे। हे सुन्दर अंगों वाली ! अगम्या स्त्री के साथ सिद्धिनाशक मैथुन में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। अवधूत साक्षात् शिव के समान है। अवधूत ही सदाशिव है ॥ ९-११ ॥

अवधूती शिवा देवी ह्यवधूताश्रमं श्रृणु ।
चतुराश्रमिणां मध्ये ह्यवधूताश्रमो महान् ॥ १२ ॥

हे देवी ! अवधूती ही शिवा है। अब अवधूताश्रम के सम्बन्ध में सुनो। चारों आश्रमों में से अवधूताश्रम ही महान् आश्रम है ॥ १२ ॥

अवधूतो द्विविधः स्याद् गृहस्थश्च चितानुगः ।
सचैलश्चापि दिग्वासा विधियोनिविहारवान् ॥ १३ ॥
सदार परदारस्थो ह्यट्टहासो दिगम्बरः ।
गृहावधूतो देवेशि ! द्वितीयस्तु सदाशिवः ॥ १४ ॥
न कलौ शोधनं मद्यं प्रत्यक्षं वरवर्णिनि ! ।
गृहावधूतो मैथुनं न कर्त्तव्यं दिगम्बरः ॥ १५ ॥

अवधूत द्विविध हैं—गृहावधूत तथा चितानुग (गृहस्थ तथा श्मशानस्थ)। गृहस्थ अवधूत वस्त्र पहनते हैं अथवा दिगम्बर भी हो सकते हैं। गृहस्थ अवधूत विधिविहित योनि का सेवन करते हैं। गृहस्थ अवधूत अपनी स्त्री से युक्त होते हैं। चितानुग अवधूत परस्त्रीयुक्त, अट्टहास करने वाले तथा दिगम्बर होते हैं। हे देवेशी ! चितानुग अवधूत सदाशिव के समान होते हैं।

हे वरवर्णिनी ! कलिकाल में प्रत्यक्ष मद्यशोधन उचित नहीं है। गृहावधूत को कभी भी दिगम्बरावस्था में मैथुनरत नहीं होना चाहिए ॥ १३-१५॥

अत एव वरारोहे ! मिश्राचारं प्रकल्पयेत् ।
एवमाचारमिश्रेण पूजयेद् यस्तु कालिकाम् ॥ १६ ॥
सन्तुष्टा सा जगद्धात्री योगमार्गविधायिनी ।
स्वकरस्थश्च भोगश्च स्वकरस्थश्च मोक्षकः ॥ १७ ॥

हे वरारोहे ! इसी कारण से मिश्राचार की कल्पना की जाती है। अर्थात् आंशिक रूप से गृहावधूत का नियम पालन करे और आंशिक रूप से चितानुग के नियमों का पालन करे। इस प्रकार के मिश्र आचार द्वारा जो कालिका की आराधना करते हैं, उनके प्रति योगमार्गविधायिनी जगद्धात्री सन्तुष्ट हो जाती है और भोग तथा मोक्ष ऐसे अवधूत को प्राप्त हो जाता है ॥१६-१७ ॥

देवीमन्त्रप्रसादेन किं न सिध्यति भूतले ।
सुराणाञ्च नराणाञ्च किन्नराणाञ्च पार्वति ! ॥ १८ ॥
शरण्यं तारिणीपादपद्मं मोक्षप्रदायकम् ।
जपापराजिताद्रोणकरवीरैः सितेतरैः ॥ १९ ॥
गन्धैर्माल्रपत्रैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ।
एवं विधिर्विधातव्या क्रिया सिद्धिकरात्मिका ॥ २० ॥

हे पार्वती ! देवीमन्त्र की कृपा से भूतल में कौन-सी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। सुर-नर-किन्नर आदि सभी के लिए मोक्षदात्री तारिणी के पादपद्म ही

एकमात्र शरण है। जपा (अड़हुल), अपराजिता, द्रोण (गूमा) तथा करवीर के फूलों से अथवा सफेद वर्ण के अतिरिक्त फूलों से, रक्तचन्दन से, बिल्वपत्रों से नाना प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा नियमानुसार देवी की अर्चना करना चाहिए ॥ १८-२० ॥

तदैव जायते सिद्धिर्जीवन्मुक्तः सदाशिवः ।
नारिकेलोदकं चान्द्रं जलं सर्वार्थसाधनम् ॥ २१ ॥
कांस्ये गुडे मधूके वा कृत्वा कारणकल्पनम् ।
तदा पूजा विधातव्या मद्येन नगनन्दिनि ! ॥ २२ ॥

इस प्रकार से साधना करने पर तत्काल सिद्धि मिलती है। वह जीवन्मुक्त सदाशिव हो जाता है। नारिकेल के जल अथवा कपूर-मिश्रित जल द्वारा सभी सिद्धि प्राप्त होती हैं। कांसे के पात्र में गुड़ तथा मधु की ही कल्पना मद्यरूप में करे। हे पर्वतनन्दिनी ! तब मद्य के द्वारा देवीपूजन करे ॥ २१-२२ ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्री च सर्वमङ्गला ।
शुक्ला रक्ता तथा पीता कृष्णा भद्रमयीरिता ॥ २३ ॥
शुक्लपुष्पं ब्राह्मणे तु रक्तपुष्पञ्च क्षत्रिये ।
वैश्ये च पीतपुष्पञ्च शूद्रे कृष्णन्तु शस्यते ।
एवं कृत्वा भजेद् यो वै स सिद्धो नात्र संशयः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये सर्वतन्त्रोक्तसाधारणविधिकथनं नामैकोनविंशः पटलः ॥

ब्राह्मणी-क्षत्रिया-वैश्या-शूद्री रमणी सर्वमंगला हैं। ब्राह्मणी = शुक्ला। क्षत्रिया = रक्ता। वैश्या = पीता। शूद्री = कृष्णा। इन्हें मंगलमयी कहा गया है।

ब्राह्मण को शुक्ल पुष्प, क्षत्रिय को रक्त पुष्प, वैश्य को पीत पुष्प और शूद्र को कृष्ण पुष्प द्वारा अर्चना करनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है। यह निःसंदिग्ध है ॥ २३-२४ ॥

॥ एकोनविंश पटल समाप्त ॥

विंशः पटलः

(योनिमुद्रादिप्रशंसा)

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सावधानावधारय ।
योनिमुद्राप्रकरणं पूर्वैव गदितं मया ॥ १ ॥
त्रिकोणं गुणसंयुक्तं योनिं परमकारणम् ।
स गच्छेत्तु शिवाबुद्धया शिवरूपी न संशयः ॥ २ ॥

महादेव कहते हैं—हे जगद्धात्री देवी ! सुनो । मैं पहले योनिमुद्रा का प्रकरण कहता हूँ । उसे सावधान होकर सुनो । गुणसंयुक्त त्रिकोण योनि परम-कारणस्वरूपा है । उसे शिवास्वरूप जानकर जो उसमें गमन करता है, वह व्यक्ति शिव ही है । यह निःसंदिग्ध है ॥१-२ ॥

तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात् तुषाभावे तु तण्डुलः ।
कर्मबद्धो भवेज्जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ॥ ३ ॥
जीवानां परमोद्वेगः क्व भोगः क्व च दारुणः ।
तस्मात्तारां जगद्धात्रीं पूजयेद् भक्तिभावतः ॥ ४ ॥

जैसे तुष (भूसी) से आबद्ध होकर वह धान्य है और जब उससे भूसी हटा देते हैं, तब वह चावल हो जाता है । इसी प्रकार से कर्मबद्ध होने पर वह जीव है और कर्ममुक्त हो जाने पर वही सदाशिव हो जाता है ।

कहाँ भोग प्राप्त होगा, कहाँ प्रचुर धन मिलेगा, जीव इसी सम्बन्ध में अत्यन्त उद्विग्न रहता है । अतएव जगद्धात्री तारा का भक्तियुक्त रूप से पूजन करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

भस्मजटाव्याघ्रचर्म वारि परमपावनम् ।
निरन्तरं जपेद् यस्तु साधकेन्द्रो धरातले ॥ ५ ॥
स धन्यः स च वीरोऽपि दिव्यश्च परमः शुभः ।
भावशुद्धिर्ज्ञानशुद्धिः शवशुद्धिश्च ते स्मृता ॥ ६ ॥

भस्म-जटा-व्याघ्रचर्म तथा जल परम पवित्र हैं । जो साधकेन्द्र निरन्तर पृथ्वी पर तारामन्त्र को जपता है, वह धन्य है । वह वीर होने पर भी परम शुभ दिव्य है । यह भावशुद्धि-ज्ञानशुद्धि-शवशुद्धि तुम से कह दिया ॥ ५-६ ॥

चिताशुद्धिः पीठशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिस्तु मच्छिवा ।
ज्ञात्वा परमतत्त्वं वै ज्ञानं मोक्षैकसाधनम् ॥ ७ ॥

चिताशुद्धि, पीठशुद्धि तथा शिवारूपा मन्त्रशुद्धि का वर्णन करता हूँ। परमतत्त्व को जानने से ही मोक्षसाधन होता है। वही मोक्ष का साधन है ॥७॥

भजेत्तु परया बुद्ध्या जीवः शिवत्वमाप्नुयात् ।
विहारे जगदम्बायाः सहस्रारे मनोरमे ॥ ८ ॥
सदाशिवेन संयोगं यः करोति स पण्डितः ।
ज्ञानिनाञ्च मतं वक्ष्ये पन्थानं ज्ञानिनां मुदा ॥ ९ ॥

तारा की परा बुद्धि द्वारा आराधना करने से शिवत्व प्राप्त होता है। जो जगदम्बा की मनोरम विहार-भूमि सहस्त्रार में उनको सदाशिव से युक्त कराता है, वही पण्डित है। अब आनन्दपूर्वक ज्ञानियों के मतानुसार ज्ञानीगण के मार्ग को बतलाता हूँ ॥ ८-९ ॥

ज्ञानाज्ञानापरित्यक्तः सर्वदा विहरेद् भुवि ।
इडा वामे स्थिता नाडी विधुस्तत्रापि तिष्ठति ॥ १० ॥
दक्षे च पिङ्गला नाडी सूर्यस्तत्रापि तिष्ठति ।
मध्ये सुषुम्ना तन्मध्ये ब्रह्मनाडी मनोहरा ॥ ११ ॥
मध्यगं खं विदध्याद् यो जनो मृत्युञ्जयो भवेत् ।
चित्रिणीमध्यगं वायुपूरणं रेचनं यदा ॥ १२ ॥
करोति वामनासाग्रैः सत्यञ्चैव सुरेश्वरि ! ।
दक्षे तु दक्षिणा वामा विरामा चलिता सिता ॥ १३ ॥

सदा ज्ञान तथा अज्ञान का परिहार करते हुए पृथ्वी पर विहार करना चाहिए। देह के वाम भाग में इडा है, जहाँ चन्द्रमा का स्थान है। दाहिने पिंगला नाड़ी है, जहाँ सूर्य रहते हैं। मध्य में सुषुम्ना है, जिसके मध्य में ब्रह्मनाड़ी मनोहर रूप में विद्यमान रहती है। इस ब्रह्मनाड़ी के मध्य स्थित आकाश को जानने वाला साधक तब मृत्युंजय हो जाता है, जब वह चित्रिणी के मध्य में स्थित वायु को वाम नासिका द्वारा पूरण-रेचन (श्वास-प्रश्वास) करता है। हे सुरेश्वरी ! यह सत्य है। दक्षिण भाग में दक्षिणा-वामा-विरामा-चलिता तथा सिता रूपी पाँच नाड़ियाँ विराजित हैं ॥ १०-१३ ॥

नाडी वामे कपोला च विजिह्वा शूलकारिणी ।
कलङ्का निष्कलङ्का च सव्यदक्षिणतः क्रमात् ॥ १४ ॥
भित्त्वा च क्रमशश्चक्रं योगीन्द्रैरप्यलभ्यकम् ।
नभोमध्यगतं चक्रं सहस्रारं मनोरमम् ॥ १५ ॥

शरीर के वाम में कपोला-विजिह्वा-शूलकारिणी-कलंका तथा निष्कलंका हैं। ये नाड़ियाँ क्रमशः वाम तथा दक्षिण में हैं। इन सभी चक्रों का भेद करके

योगीगण के लिए भी अलभ्य, ब्रह्मनाड़ी के मध्य स्थित आकाश में सहस्रदल-कमल की प्राप्ति होती है ॥ १४-१५ ॥

कालीपुरं तत्र रम्यं सर्ववर्णात्मकं प्रिये ! ।
विधाय चैनां मनसा बुद्ध्या कायेन चण्डिकाम् ॥ १६ ॥
तत्रैव ध्यानमनसा प्रकरोति जपार्चनम् ।
यदि ध्यानं वरारोहे ! करोति सततं मुदा ॥ १७ ॥
तदेव जायते सिद्धिर्मुक्तिरव्यभिचारिणी ।
न ध्यानं न च वा पूजा न स्तुतिः परमार्थिका ॥ १८ ॥

हे प्रिये ! इस सहस्रदल के मध्य में सर्ववर्णात्मक मनोहर कालीपुर स्थित है । वहाँ पूर्वोक्त प्राणायाम द्वारा बुद्धि, देह तथा मन के द्वारा चण्डिका का ध्यान जप-पूजन करना चाहिए । हे वरारोहे ! यदि साधक इस सहस्रदल के मध्य स्थित कालीपुर में चण्डिका का आनन्दपूर्वक सदैव ध्यान करता है, तब सिद्धि तथा अव्यभिचारिणी मुक्ति प्राप्त होती है । अन्य विधि का ध्यान, पूजा अथवा स्तुति कभी भी परमार्थसाधिका नहीं है ॥ १६-१८ ॥

पूजयेत्तां जगद्धात्रीं कुसुमैर्मानसोद्भवैः ।
कामरूपे द्विजागारे श्वपचस्य गृहेऽथवा ॥ १९ ॥
हरिद्वारे प्रयागे च विमुक्तिः पावनीमुखे ।
यत्र कुत्र मृतो ज्ञानी तत्रैव मोक्षमाप्नुयात् ॥ २० ॥

मानससर में उत्पन्न कुसुम के द्वारा जगद्धात्री का कामरूप, द्विजगृह अथवा चाण्डालगृह में पूजन करे । हरिद्वार, प्रयाग अथवा गंगामुख में मुक्ति मिलती है । परन्तु ज्ञानी जहाँ कहीं भी मृत्यु को प्राप्त होता है, वहीं मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १९-२० ॥

नीलास्मरणजं पुण्यं नीलास्मरणजं फलम् ।
नीलायाः स्मरणेनैव किं न सिध्यति भूतले ॥ २१ ॥
शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो वा गिरिनन्दिनि ! ।
भजेन्नीलां स्मरेत् तारां जपेद् दुर्गां हरप्रियाम् ।
तत्क्षणादेव देवेशि ! मुच्यते भवबन्धनात् ॥ २२ ॥

नीलसरस्वती का स्मरण करने से पुण्य होता है । इनका स्मरण करने से इस पृथ्वी पर क्या नहीं मिलता ? हे गिरिनन्दिनी ! शैव, वैष्णव अथवा शाक्त प्रभृति, जो भी नीलसरस्वती की आराधना करते हैं, तारा का स्मरण करते हैं अथवा हरप्रिया दुर्गा का जप करते हैं, हे देवेशी ! वे तत्क्षण भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥ २१-२२ ॥

क्षीरोद्धृतं तत्र क्षिप्तं पूर्वं तद्वद् भवेत् सुधीः ।
पृथक्तया गुणेभ्यः स्यातु तद्वदात्मा इहोच्यते ॥ २३ ॥

दूध को पात्र से निकाल कर पुनः उसे पात्र में रखने पर भी वह दुग्ध ही रहता है, अन्य कुछ नहीं हो जाता। इसी प्रकार जब आत्मा से गुणसमूह अलग हो जाते हैं, तब भी वह आत्मा ही कहलाता है ॥ २३ ॥

क्षीरेण सहितं तोयं क्षीरमेव यथा भवेत् ।
अविशेषो भवेत् तत्र जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २४ ॥
यथा चन्द्रार्कयोर्बिम्बो जलपूर्णघटेषु च ।
घटे भग्ने जलेषु च ग्रहणे चन्द्रसूर्यकौ ।
न जायते न म्रियते ह्यात्मा तु परमेश्वरी ॥ २५ ॥

दूध में जल मिलाने पर वह भी दूध ही हो जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के साथ एक हो जाता है। जलपूर्ण घट में चन्द्र तथा सूर्य का केवल प्रतिबिम्ब ही पड़ता है; उनका जन्म नहीं होता। घट के टूटते ही वह प्रतिबिम्ब समाप्त होता है, परन्तु वास्तविक चन्द्र-सूर्य विनष्ट नहीं होते। इसी प्रकार आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता ॥ २४-२५ ॥

आत्मज्ञानं समासाद्य संसारार्णवलङ्घने ।
भवत्येवं सदा चण्डी जीवः शिवत्वमालभेत् ॥ २६ ॥
पार्वतीचरणद्वन्द्वभजनात् किं नरो भवेत् ।
स्वर्गो भोगश्च मोक्षश्च शाक्तानां न भवेत् किमु ॥ २७ ॥

हे चण्डिके ! आत्मज्ञान प्राप्त करके ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है। आत्मज्ञान द्वारा जीव को शिवत्व प्राप्त हो जाता है।

पार्वती के चरणद्वय की आराधना करके मनुष्य को क्या नहीं मिलता ? शाक्तों को स्वर्ग-भोग तथा मोक्ष में से क्या नहीं मिल जाता ? ॥ २६-२७ ॥

शाक्तानां चैव निन्दां तु ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
तेषां शोणितपानं वै कुर्वन्ति बहुरक्तपाः ॥ २८ ॥
शाक्तान् हिंसन्ति गर्जन्ति निन्दन्ति बहुजल्पकाः ।
भैरवाश्चैव भैरव्यः सदा हिंसन्ति पामरान् ॥ २९ ॥

जो नराधम शाक्तों की निन्दा करते हैं, उनके रक्त को अनेक रक्त पीने वाले जीव पी जाते हैं। अधिक बोलने वाले लोग शाक्तों से मन में द्वेष रखते हैं। उनके विषय में गरजते और निन्दा करते हैं। ऐसे पापियों की हिंसा सदा भैरव तथा भैरवी समूह किया करते हैं ॥ २८-२९ ॥

छिनत्ति तेषां देवेशि ! शिरांसि शिववल्लभा ।
शाक्तानामुतमो नास्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥ ३० ॥

शाक्तस्तु शङ्करो ज्ञेयः त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
स्वयं गङ्गाधरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ।। ३१ ।।
नास्ति तन्त्रसमं शास्त्रं न भक्तः केशवात् परः ।
न योगी शङ्कराद् ज्ञानी न देवी नीलया परा ।। ३२ ।।

हे देवेशी ! शिववल्लभा ऐसे नराधमों का शिरच्छेदन करती हैं । स्वर्ग, मर्त्य तथा रसातल में शाक्त की तुलना में कोई भी उत्तम साधक नहीं हो सकता ।

शाक्त को साक्षात् त्रिनेत्र चन्द्रशेखर जानना चाहिए । वह स्वयं गंगाधर होकर भूतल पर रहता है ।

तन्त्र के समान श्रेष्ठ कोई भी शास्त्र नहीं है । केशव की तुलना में कोई भी श्रेष्ठ भक्त नहीं है । शंकर की अपेक्षा कोई भी श्रेष्ठ योगी-ज्ञानी नहीं हो सकता और नीलसरस्वती की अपेक्षा कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है ।। ३०-३२ ।।

दक्षिणाशेषदीक्षाणां गुरोरग्रमधःक्षिपेत् ।
रतिर्मृत्युः पलार्द्धोऽर्द्धं खेदं मुक्त्वा च मुक्तिदा ।। ३३ ।।
नीलाया मन्त्रनिकरं नानातन्त्रे त्वया श्रुतम् ।
नानातन्त्रे न कुत्रापि कथितं न श्रुतं त्वया ।। ३४ ।।
जीवः शिवः शिवा वामा त्रिपुरायाश्च सुन्दरि ! ।
भैरव्या भुवनायाश्च चरितं मुक्तिदायकम् ।। ३५ ।।

समस्त दीक्षा की दक्षिणा है रत्तीमात्र । उसे गुरु के सम्मुख नीचे रखे । पलार्द्ध से आधी दक्षिणा मृत्युस्वरूप है । खेद किये बिना जो दक्षिणा प्रदान की जाती है, वह मुक्तिप्रदा है ।

नीलसरस्वती के मन्त्रों को तुमने अनेक तन्त्रों में सुना है । फिन्तु मेरे द्वारा कहे गये विविध तन्त्रों में यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि जीव ही शिव है और वामा ही शिवा है । हे सुन्दरी ! त्रिपुरासुन्दरी, भैरवी तथा भुवनेश्वरी का स्वरूप मुक्तिदायक है ।। ३३-३५ ।।

शक्तिः सूर्यश्च चन्द्रश्च कुबेरो वरुणो यमः ।
शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न वेत्ति स पातकी ।। ३६ ।।
शक्तिशय्यां ज्ञानमयीं सदासन्तोषकारिणीम् ।
तेनैव भावमासाद्य गच्छेद् दुःखविनाशिनीम् ।। ३७ ।।

चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण तथा यम मेरी ही शक्ति हैं । समस्त जगत् शक्ति का ही स्वरूप है । जो इसे नहीं जानता, वह पातकी है । ज्ञानमयी शक्तिशय्या को सदा ही सन्तोषदायिनी मानना चाहिए । साधक इस भाव का आश्रय लेकर इस दुःखनिवारिणी शक्ति का आश्रय ले ।। ३६-३७ ।।

जपनं पार्वतीदेव्याः पूजनं पार्वतीपदे ।
अन्यपूजा न कर्त्तव्या न स्तुतिर्न च भावना ॥ ३८ ॥

पार्वती मन्त्र का सदा जप करना चाहिए। पार्वती के चरणकमलों की सदा पूजा करे। साधक कभी भी अन्य देवी की पूजा न करे अथवा चिन्तना भी न करे ॥ ३८ ॥

न च ध्यानं योगसिद्धिर्नान्यमन्त्रस्य वीक्षणात् ।
केवलं कालिकापादपद्मं भवविघट्टनम् ॥ ३९ ॥
नान्यो देवो न वा तीर्थं न ध्यानं न च जल्पनम् ।
न तीर्थभ्रमणं चण्डी न च वा योगधारणम् ॥ ४० ॥

अन्य ध्यान, अन्य योगसिद्धि, अन्य मन्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्य तीर्थों में भ्रमण तथा अन्य योग द्वारा धारणा करना भी अनुचित है। क्यों कि वह भ्रमण, धारणा तथा तीर्थ वास्तविक भ्रमण, धारणा तथा तीर्थ कदापि नहीं है। केवल कालिका के चरणकमल की प्राप्ति से ही भवसागर से मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३९-४० ॥

एवं शक्तिमयं विश्वं यो वेत्ति धरणीतले ।
श्मशानसिद्धिं लभते नात्र कार्या विचारणा ॥ ४१ ॥

जो व्यक्ति विश्व की उपलब्धि शक्तिमय रूप से करता है, उसे श्मशानसिद्धि (स्वतः) प्राप्त हो जाती है। इसमें अधिक विचार आवश्यक नहीं है ॥४१॥

शून्यागारं श्मशानं वा शून्यं परमकोविदः ।
यो वा गच्छति तत्रैव स विश्वेशो भवेद् ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

शून्यगृह, श्मशान अथवा शून्य में जो परम ज्ञानी जाता है, वहाँ वह विश्वेश्वर हो जाता है। यह ध्रुव सत्य है ॥ ४२ ॥

पञ्चमेन यजेद्देवीं बिल्वमूले दिवानिशम् ।
तदा वाक्सिद्धिमाप्नोति शूद्रो वाचस्पतिर्भवेत् ॥ ४३ ॥

हे देवी ! जो व्यक्ति पंचमकार के द्वारा रात-दिन बिल्वमूल में महाशक्ति की अर्चना करता है, वह व्यक्ति वाक्सिद्धि प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति यदि शूद्र है, तब भी वह बृहस्पति के समान हो जाता है ॥ ४३ ॥

आसनकथन

आसनं द्वादशविधं सङ्केतासनमुत्तमम् ।
भद्रासनं पद्मासनं परं सिद्धासनं तथा ॥ ४४ ॥
सिद्धसिद्धासनं देव्यासनञ्च कुक्कुटासनम् ।
वीरासनं परं भद्रे ! चासनं वरदासनम् ॥ ४५ ॥

सिंहासनं परं देवि ! श्मशानासनमुत्तमम् ।
शवासनं वरारोहे ! देवानामपि दुर्लभम् ।
यमाश्रयेत् परं ब्रह्मासनं परमभूषितम् ॥ ४६ ॥

आसन १२ प्रकार के होते हैं—संकेतासन, भद्रासन, पद्मासन, सिद्धासन, सिद्धसिद्धासन, देव्यासन, कुक्कुटासन, वीरासन, वरदासन, सिंहासन, श्मशानासन, शवासन। हे वरारोहे ! इन श्रेष्ठ आसनों का आश्रय लेने पर परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है ॥ ४४-४६ ॥

शक्तिस्थापन

वामभागे स्त्रियं स्थाप्य धूपामोदसुगन्धिभिः ।
ताम्बूलचर्वणाद्यैश्च पूजयेद् भवगेहिनीम् ॥ ४७ ॥
भवानीं तारिणीं विद्यां महाविद्यां मनोहराम् ।
स्तुत्वा मोक्षमवाप्नोति तत्क्षणादेव सुन्दरि ! ॥ ४८ ॥

वामभाग में शक्ति (कुलयुवती) को बैठाकर धूप-सुगन्धि प्रभृति द्वारा तथा ताम्बूल द्वारा भवगेहिनी की पूजा करे।

हे सुन्दरी ! महाविद्यारूपिणी मनोहरा भवानी तारिणी विद्या का स्तव करने से तत्काल मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ ४७-४८ ॥

स्तुति

विश्वमूर्ते ! जयाधारे ! विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।
करालवदने ! घोरे ! चन्द्रशेखरवल्लभे ! ॥ ४९ ॥
मां तारय महाभागे ! देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।
कामकल्पलतारूपे ! कामेश्वरि ! कलामते ! ।
कामरूपे ! च विजये ! निस्तारे ! शववाहिनि ! ॥ ५० ॥

हे विश्वमूर्ते ! हे जयाधारे ! हे विश्वेश्वरी ! तुम्हें नमस्कार है। हे घोररूपे ! हे करालवदने ! हे चन्द्रशेखरवल्लभे ! मेरा उद्धार करो। हे महाभागे ! हे कामकल्पलतारूपे ! हे कामेश्वरी ! हे कलामते ! हे कामरूपे ! हे विजये ! हे निस्तारे ! हे शववाहिनी ! आप हमें उत्तम सिद्धि प्रदान करें ॥ ४९-५० ॥

गृहीत्वा शवचाण्डालं धृत्वा भालं मुखं शिरः ।
नासां कर्णौ च हृत्पद्मं नाभिं लिङ्गं गुदं तथा ॥ ५१ ॥
बाहू पृष्ठञ्च जठरं धृत्वा धृत्वा मुहुर्मुहुः ।
आदौ मायां पुनर्मायां पुनर्मायां नियोजयेत् ॥ ५२ ॥
वायुस्तम्भं वह्निस्तम्भं कृत्वा चैव नगात्मजे ! ।
तत्क्षणादेव देवेशि ! जायते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥

चण्डाल का शव लाकर उसके शिर-कपाल-मुख-नासिका-कान-हृदय-नाभि-लिंग-पृष्ठ तथा जठर को लेकर धीरे-धीरे ह्लीं-ह्लीं-ह्लीं का जप करे। हे देवेशी ! नगात्मजे ! इस प्रयोग से वायु तथा अग्नि स्तम्भित करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह निःसन्दिग्ध है ॥ ५१-५३ ॥

शून्यागारे महेशानि ! भजेद् धनददिङ्मुखः।
शङ्खमाला गृहीतव्या स्फाटिकी वाथ राजती।
चामीकरमयी माला प्रवालघटिताऽथवा ॥ ५४ ॥

हे महेशानी ! शून्य आगार में उत्तराभिमुख होकर आराधना करे। जपार्थ शंखमाला, स्फटिकमाला, रजतमाला, स्वर्णमाला अथवा प्रवालमाला को लेना चाहिए ॥ ५४ ॥

मूर्ध्नि देशे कुल्लुकाञ्च जप्त्वा शतमनुत्तमम्।
तदा मन्त्रं जपेन्मन्त्री महेशो नात्र संशयः ॥ ५५ ॥
स शाक्तः शिवभक्तश्च भैरवश्च सदाशिवः।
कुलीनश्च कुलज्ञश्च यो जपेत् तारिणीमनुम् ॥ ५६ ॥

शिरोदेश में कुल्लुका जप करने से तथा १०० बार इष्टमन्त्र जप करने से साधक शिव हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

जो कुलज्ञ कुलीन साधक तारिणी मन्त्र जपता है, वह शाक्त है। वही शिवभक्त है, भैरव है अथवा सदाशिव है ॥ ५५-५६ ॥

हृत्पद्मगां जगद्धात्रीं मूर्ध्नि संस्थां सुरेश्वरीम्।
भुजङ्गिनीं जागरिणीं भुजङ्गादिविभूषिताम् ॥ ५७ ॥
नारदाद्यैः साधकेन्द्रैः सेवितां सिद्धसेविताम्।
अश्वत्थे बिल्वमूले वा स्वजायामन्दिरेऽथवा ॥ ५८ ॥

पीपल अथवा बिल्व के मूल में अथवा अपनी स्त्री के गृह में, हृदय में अथवा सिर में सर्पादि से विभूषिता, सुरेश्वरी, नारद आदि मुनियों द्वारा सेविता, सिद्धों के द्वारा अर्चिता जागरिणी भुजङ्गिनी देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५७-५८ ॥

देवीं वा कामिनीं वापि धारयेत् परदेवताम्।
आद्यां ज्योतिर्मयीं विद्यामभयां वरदां शिवाम् ॥ ५९ ॥

आद्या ज्योतिर्मयी विद्यारूपिणी अभया वरदा शिवा परमदेवता अथवा देवी कामिनी का ध्यान करे ॥ ५९ ॥

प्रणमेत् स्तुतिभिश्चण्डीं सर्वदोषनिकृन्तनीम्।
श्मशानस्थः शवस्थो वा प्रपठेत् कवचोत्तमम् ॥ ६० ॥

सभी दोषों का छेदन करने वाली चण्डी की स्तुति तथा प्रणाम करे। श्मशान अथवा शवासनस्थ होकर उत्तम कवच का पाठ करना चाहिए ॥ ६० ॥

तदा श्मशाने देवेशि ! शवे वा वरवर्णिनि !।
सिद्धिर्भविष्यति तदा परपक्षा न भैरवाः ॥ ६१ ॥
उन्मत्तः क्रोधनश्चण्डो भैरवो बटुकात्मकः।
संहारो भीषणश्चैव तथा च कालभैरवः।
महाकालभैरवश्च ह्येते वै वसुसङ्ख्यकाः ॥ ६२ ॥

हे देवेशी ! हे वरवर्णिनी ! श्मशान में अथवा शवासन पर साधना करने से साधक को सिद्धि मिल जाती है। तब भैरवगण उससे शत्रुता नहीं करते। वे अनुकूल हो जाते हैं। उन्मत्त-क्रोध-चण्ड-बटुक-संहार-भीषण-कालभैरव तथा महाकाल को अष्टभैरव कहा जाता है ॥ ६१-६२ ॥

दृष्ट्वा श्मशानं देवेशि ! शवसाधनमेव च।
नृत्यन्ति भैरवाः सर्वे गर्जन्ति रक्तलोचनाः।
अद्य मत्सदृशो वापि नाद्य वा वातुलोऽपि वा ॥ ६३ ॥

हे देवेशी ! श्मशान अथवा शवसाधना को देखकर सभी रक्तिम नेत्रों वाले भैरवगण गरजते हुए नृत्य करने लगते हैं। वे कहते हैं—हे साधक ! हमारे समान कोई नहीं है। हमारे समान वातुल भी कोई नहीं है ॥ ६३ ॥

शवश्मशानयोर्मध्ये विभेदो न कथञ्चन।
मा भैषी भैरवाः सर्वे वदिष्यन्ति च बन्धनात् ॥ ६४ ॥

शव तथा श्मशान में कोई भी भेद नहीं है। समस्त भैरवगण कहने लगते हैं कि संसार बन्धन से भय नहीं करना ॥ ६४ ॥

शिहव्याघ्रवराहाद्याः के वा गर्जन्ति सर्वतः।
मा भैषीश्चैव मा भैषी मा भैषीश्चैव साधक !।
यो वा वदिष्यति पुरः सद्गुरुस्तत्त्वकोविदः ॥ ६५ ॥

ये सिंह-व्याघ्र-वाराह किसके चारों ओर गर्जन कर रहे हैं ? हे साधक ! इससे भय नहीं करना। भय नहीं करो, भय नहीं करो। जो साधक से साक्षात् ऐसा कहते हैं, वे ही सद्गुरु हैं, तत्त्वविद् हैं ॥ ६५ ॥

विना तन्त्रपरिज्ञानात् विना गुरुनिषेवणात्।
विना प्राणायामध्यानाद् विना मन्त्रविचारणात् ॥ ६६ ॥
विना ज्ञानाद्विना न्यासाद्विना च शवबन्धनात्।
विना बलिप्रदानाच्च श्मशानसाधनाद् विना ॥ ६७ ॥
विना योगाद्विना भोगाद्विना करणकारणात्।
विना शक्त्या विना भक्त्या विना युक्तिनिबन्धनात् ॥ ६८ ॥

विना भावाद्विना लाभाद्विना सत्सङ्गसेवनात् ।
विना तपो विना जपाद्विनापि काममन्दिरात् ।
न हि सिध्यति देवेशि ! न च विद्या प्रसीदति ॥ ६९ ॥

हे देवेशी ! तन्त्र का उचित ज्ञान हुए बिना सद्गुरु-सेवा, प्राणायाम, ध्यान, मन्त्र-विचार, ज्ञान, न्यास, शवबन्धन, बलि, श्मशानसाधना, योग, भोग, करण-कारण, शक्ति, भक्ति, युक्ति, भाव, लाभ, सत्संग-सेवन, जप, तप, काम-मन्दिर के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती । हे देवेशी ! इनके अभाव में विद्या भी प्रसन्न नहीं होती ॥ ६६-६९ ॥

यदि भाग्यवशाद् देवि ! प्रत्यक्षं हरवल्लभा ।
तदैव जायते सिद्धिर्महाविद्या प्रसीदति ॥ ७० ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये योनिमुद्राशाक्तप्रशंसादेवीपूजाप्रशंसा-साधनापद्धतिसिद्धिलाभपद्धतिकथनं नाम विंशः पटलः ॥

हे देवी ! यदि भाग्य से हरवल्लभा देवी साधक को प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं, उस स्थिति में केवल इतने से ही सिद्धि मिल जाती है ॥ ७० ॥

॥ विंश पटल समाप्त ॥

एकविंशः पटलः

(पार्वतीश्वर-संवादः)

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! विश्वनाथ ! सदाशिव ! ।
पृच्छामि जगदीशान ! शृङ्गारमघमर्षणम् ॥ १ ॥
किं विधं वापि भो नाथ ! कस्मिन् काले महेश्वर ! ।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म नित्यानन्दमयं वपुः ॥ २ ॥
नवकन्यापूजनञ्च श्रुतं विश्वेश्वर ! प्रभो ! ।
कुमारीपूजनं देव ! श्रुतं तव प्रसादतः ॥ ३ ॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे विश्वनाथ ! हे सदाशिव ! हे जगदीश्वर ! मैं पापनाशक शृंगार अघमर्षण के सम्बन्ध में पूछती हूँ ।

हे नाथ ! हे महेश्वर ! किस काल में किस प्रकार का शृंगार विहित है ? ब्रह्म तो नित्यानन्दयमय-शिवशक्तिमय शरीरधारी हैं ।

हे प्रभो ! हे विश्वेश्वर ! नौ कन्याओं का पूजन भी सुना है । हे देव ! आपकी कृपा से कुमारी पूजन के सम्बन्ध में भी सुना ॥ १-३ ॥

श्रीशिव उवाच—

शृङ्गारं द्वादशविधं विपरीतं चतुर्विधम् ।
चतुर्विधञ्च देवानां नरेषु च वरेषु च ॥ ४ ॥
यो न जानाति देवेशि ! स पशुर्नात्र संशयः ।
पशोरग्रे न प्रकाश्यं न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥ ५ ॥
पशुस्तु दारुणः शत्रुः सर्वभावविलोपकृत् ।
कल्पकोटिशतेनापि वत्सरेणापि शाङ्करि ! ।
नहि सिध्यति विश्वेशि ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६ ॥

श्रीशिव कहते हैं—शृंगार १२ प्रकार के होते हैं। विपरीत शृंगार ४ प्रकार के होते हैं; देवगण तथा मनुष्यगण में भी ४ प्रकार के होते हैं। इसे जो नहीं जानता, वह निःसन्देह पशु है। इसका प्रकाशन कभी भी पशु के सम्मुख न करे। पशु तो दारुण शत्रु है। पशुत्व युक्त व्यक्ति सौ करोड़ कल्पों में भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। हे विश्वेशी ! यह सत्य कथन है ॥ ४-६ ॥

शृङ्गाररसलावण्यं यो न जानाति पण्डितः ।
स मूर्खः सर्वशास्त्रेषु शक्तिभ्रष्टो न संशयः ॥ ७ ॥
शृङ्गाररसलावण्ये शाक्तानन्दो यथा भवेत् ।
न शैवे वैष्णवे नापि सौरे वा गाणपत्यके ।
तथानन्दो महेशानि ! जायते न कथञ्चन ॥ ८ ॥

जो विद्वान् शृंगाररस के लावण्य को नहीं जानता, वह मूर्ख है। वह व्यक्ति भ्रष्ट है। यह निःसंदिग्ध है।

हे महेशानी ! शृंगाररस का लावण्य शाक्तानन्द के समान है। शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य को यह आनन्द कभी भी उदित नहीं होता ॥ ७-८ ॥

शिवो जातिः शिवो गोत्रं शिवो धर्मः शिवो मतिः ।
शिवो भक्तिः शिवो मुक्तिः शिवः शक्तिः शिवात्मिका ॥ ९ ॥

शिव ही जाति, गोत्र, धर्म, मति, भक्ति, मुक्ति तथा शिवात्मिका शक्ति हैं ॥ ९ ॥

शिवोऽहं नात्र सन्देहो जीवोऽयं शिव एव हि ।
इत्येव यस्य मनसि वर्त्तते शैलनन्दिनि ! ॥ १० ॥
तदैव जायते सिद्धिर्मुक्तिरव्यभिचारिणी ।
शक्तिमार्गे वरारोहेऽवधूतः शङ्करः स्वयम् ॥ ११ ॥

मैं शिव हूँ; यह निःसंदिग्ध है कि यह जीव भी शिव ही है। ऐसा जो मानता है, उसके लिए सिद्धि तथा अव्यभिचारिणी मुक्ति समान ही हो जाती है। हे वरारोहे ! शक्तिमार्ग में शङ्कर ही अवधूत हैं ॥ १०-११ ॥

अवधूती यस्य वामाऽवधूतस्तु स्वयं भवेत्।
यत्र कुत्र निवासी च कैलासो नात्र संशयः ॥ १२ ॥

जिसकी स्त्री अवधूती है, वह स्वयं अवधूत ही है। वह चाहे जहाँ रहे, वहीं निःसंदिग्ध रूप से कैलास है ॥ १२ ॥

मन्दिरं तस्य कैलासं स्तम्भं मणिमयं स्मृतम्।
ब्रह्माद्याश्चैव सर्वेषां शिवे! सेवकवन्मताः ॥ १३ ॥

उसके गृह को कैलाश ही समझना चाहिए। उसके गृह के स्तम्भ भी मणिमय प्रतीत होने लगते हैं। हे शिवे! ब्रह्मादि देवता भी अवधूत के लिए सेवक ही हैं ॥ १३ ॥

क्षुद्राश्च बान्धवा रुद्राः सुप्रधानाः सदाशिवाः।
भैरवाः किङ्कराः सर्वे भैरवाश्चेटिकादिकाः ॥ १४ ॥

क्षुद्र बान्धवगण रूद्रस्वरूप हैं। सुप्रधान बान्धव सदाशिव हैं। समस्त भैरव उसके लिए भृत्य से समान हैं। दासी प्रभृति भैरवीस्वरूप हैं।

एवं कैलासभवनं सर्वानन्दकरं परम्।
मनोहरं सुखमयं सर्वशक्तिमयं तथा ॥ १५ ॥
सर्वप्रियं गुणमयं सर्वसौख्यादिसम्भवम्।
एवं सर्वमयं सौख्यं यो वेद क्ष्मातले प्रिये!।
सर्वशक्तियुतो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥ १६ ॥

इस प्रकार का कैलासभवन सर्वानन्ददायक है। परम मनोहर सुखमय तथा सर्वशक्तियुक्त है। इसे समस्त गुणमय (प्रियगुण) तथा समस्त सुखों की सम्भव भूमि मानना चाहिए। हे प्रिये! साधक को समस्त शक्तियुक्त होकर पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वा प्रजपेदयुतं निशि।
तदा सिद्धिमवाप्नोति मन्त्रध्यानपुरःसरः ॥ १७ ॥

कृष्णाष्टमी अथवा कृष्णपक्ष की नवमी रात्रि में मन्त्रध्यान करते हुए दस हजार जप करे। मन्त्रजप द्वारा मन्त्रसिद्धि मिलती है ॥ १७ ॥

एवं क्रिया प्रकर्त्तव्या गुप्ता गुप्ततरा स्मृता।
गुप्ता गुप्ततरा पूजा प्राकटयात् सिद्धिनाशिनी ॥ १८ ॥

इस प्रकार से जप करना कर्त्तव्य है। यह गुप्त से भी गुप्ततर है। इसका प्रकाशन करने से सिद्धि का नाश हो जाता है ॥ १८ ॥

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥ १९ ॥

कौलमहासाधक विविध रूप धारण करके पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। वे आभ्यन्तरीण रूप से शाक्त हैं। बाह्यतः शैव हैं। सभा में वे वैष्णव हैं ॥ १९ ॥

एवं विधानसम्भूतं श्रुतं तन्त्रञ्च मोहनम् ।
कुलोड्डीशं कुलीनस्य योगिनीहृदयं श्रुतम् ॥ २० ॥

यही मोहनतन्त्र में उक्त है। कुलोड्डीश, कुलीन तथा योगिनीहृदय में भी इसी प्रकार से श्लोक १९ के अनुरूप सुना गया है ॥ २० ॥

सम्मोहनं वीरतन्त्रं श्रुतं श्रीतन्त्रमुत्तमम् ।
कुलार्णवं तथा कालीतन्त्रं कालीविलासकम् ॥ २१ ॥
श्रीकाली कल्पलतिका श्रुता परमसादरात् ।
मतभेदे च गुप्ता सा प्राकटयान्नाशिनी मता ॥ २२ ॥

सम्मोहनतन्त्र, वीरतन्त्र, उत्तम श्रीतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, कालीतन्त्र, कालीविलासतन्त्र, श्रीकाली कल्पलतिका में भी आदर के साथ यही सुना गया है। मतभेद होने पर वही गुप्त पूजा जब प्रकट कर दी जाती है, तब वह सिद्धि का नाश करने वाली हो जाती है ॥ २१-२२ ॥

रतिशाक्ताः शक्तिशाक्ताः सर्वकर्मसु नान्यथा ।
अन्तः शैवा बहिः शैवा सभायां वा गृहेऽथवा ॥ २४ ॥
अन्तःशाक्ता बहिःशाक्ता क्रियाशाक्ता वरानने ।
भक्तिशाक्ताः ध्यानशाक्ताः कामशाक्ता महेश्वरि ! ॥ २५ ॥

(उक्त मत जो १९वें श्लोक में कहा गया वह यहाँ मान्य नहीं है। यहाँ इसके विपरीत है अर्थात्) अन्तःस्थिति में शाक्त, बाह्यतः शाक्त तथा क्रिया में भी शाक्त ही रहना चाहिए। हे वरानने ! हे महेश्वरी ! भक्ति में शाक्त, ध्यान में शाक्त तथा काम में भी शाक्त ही होना चाहिए। रति में, शक्ति में, समस्त कर्म में भी शाक्त ही रहे। किसी भी प्रकार से भी वैष्णव न बने। हे देवी ! इस प्रकार से शैवगण भी गृह में तथा सभा में, अन्तःस्थिति में भी शैव ही रहें और बहिःस्थिति में भी शैव ही रहें ॥ २४-२५ ॥

एवं भावं समाश्रित्य शाक्ताः परमपूजकाः ।
नित्यानन्दमयाः सर्वे त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥ २६ ॥

इस प्रकार के भाव का सम्यक्रूपेण आश्रय लेकर परमपूजक समस्त शाक्त-साधक नित्यानन्दमय त्रिनेत्र चन्द्रशेखर हो जाते हैं ॥ २६ ॥

सदा शक्तिविहारश्च सदानन्दपरिप्लुताः ।
सदानन्दाः परिज्ञेयाः सर्वकर्मसु कौशलाः ॥ २७ ॥

कुलधर्मं समाश्रित्य ये वसन्ति महीतले।
ते शिवास्ताः शिवा देव्या भवन्ति कुलधर्मतः ॥ २८ ॥
कुलीनः शङ्करो ज्ञेयः कुलीनस्तु हरिः स्वयम्।
कुलीनो वासवो देवः कुलीनस्तु पितामहः ॥ २९ ॥

वे सर्वदा आनन्द से परिप्लुत होकर शक्ति के साथ विहार करते हैं। उन्हें सदानन्दमय तथा समस्त कर्मकुशल समझो।

जो व्यक्ति कुलधर्म का आश्रय लेकर पृथ्वी पर स्थित रहते हैं, वे इस धर्म की कृपा से शिव के समान हो जाते हैं। उनकी स्त्री भी इस धर्म के प्रभाव से शिवास्वरूपा हो जाती है। शंकर कुलीन हैं। हरि भी कुलीन हैं। इन्द्र तथा पितामह भी कुलीन (कुलधर्म के पालक) हैं ॥ २७-२९ ॥

कुलीना मुनयः सर्वे कुलीनाः पितरः स्मृताः।
किन्नराश्च कुलीनाश्च नराणां पशुजीविनः ॥ ३० ॥
असुराश्च कुलीनाश्च कुलजा न कुलीनकाः।
यतो न भक्तिर्न मुक्तिरसुराणां कदाचन ॥ ३१ ॥
राक्षसाश्च कुलीनाश्च गन्धर्वाप्सरयक्षजाः।
देवीभक्तिं समास्थाय कृतार्थाश्च महीतले ॥ ३२ ॥

असुरगण कुलीन हैं। मुनिजन, पितर, किन्नर भी कुलीन हैं। मनुष्यों में पशुजीवीगण भी कुलीन हैं। केवल कुलीन वंश में जन्म लेने से ही कोई कुलीन नहीं हो जाता। गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्षवंशधरगण भी इस पृथ्वी में देवी की भक्ति का अवलम्बन लेकर कृतार्थ हो जाते हैं ॥ ३०-३२ ॥

बिना दुर्गापरिज्ञानाद्विफलं जीवनं तपः।
मूर्खो वा पण्डितो वापि ब्राह्मणो वा वरानने ! ॥ ३३ ॥
क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चाण्डालो वरवर्णिनि !।
सर्वे तुल्याश्च शाक्ताश्च एतत् सर्वार्थसाधकम् ॥ ३४ ॥

दुर्गा के परिज्ञान के अभाव में जीवन तथा तपस्या भी विफल है। हे वरानने ! हे वरवर्णिनी ! ब्राह्मण हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, किंवा क्षत्रिय, वैश्यज, शूद्र अथवा चाण्डाल क्यों न हो, शाक्त होते ही सभी समान हो जाते हैं। शाक्त होने से सभी अर्थों का साधन सफल हो जाता है ॥ ३३-३४ ॥

महापीठाश्रमं याति महापीठस्य दर्शने।
महापीठे यजेद्देवीं भक्त्या परमया युतः ॥ ३५ ॥

शाक्तगण महापीठ के दर्शनार्थ महापीठाश्रम में जाते हैं। परम भक्ति-सम्पन्न होकर देवी का महापीठ में पूजन करे ॥ ३५ ॥

पूजयेद् रक्तपुष्पैश्च रक्तगन्धानुलेपनैः ।
बिल्वपत्रैस्तथा पुष्पैर्मुनिपुष्पैश्च चम्पकैः ॥ ३६ ॥
रक्ताम्बुजै रक्तमाल्यै रक्ताभरणभूषणैः ।
महिषैश्च यजेद्देवीं भेषजैः क्षतजैरपि ॥ ३७ ॥

रक्तगन्ध से लिप्त रक्तपुष्प द्वारा, बेल की पत्तियों से, बिल्वपुष्प से, मुनिपुष्प तथा चम्पा द्वारा देवी का पूजन करे ।

रक्तपद्म-रक्तमाला-रक्ताभरण तथा भूषण, महिष तथा मेष के रक्त के द्वारा देवीपूजन करे ॥ ३६-३७ ॥

छागलैर्लोहितैर्देवीं गात्रजैस्तु तथापरे ।
एवं विधिविधानेन पूजनं तत्र सुन्दरि ! ॥ ३८ ॥
कर्त्तव्यं जीवलोकेषु ग्राह्यं तव महेश्वरि ! ।
एवं विधिर्विधातव्या पूज्या त्रिभुवनेश्वरी ॥ ३९ ॥
तदा सिद्धेश्वरो भूत्वा गाणपत्यं लभेत्तु सः ।
न प्रकाश्यं पशोरग्रे मम दिव्यं सुरेश्वरि ! ॥ ४० ॥

छाग के रक्त से, उसकी देह से देवीपूजन करे । हे सुन्दरी ! ऐसे पूजन करना कर्त्तव्य है । हे माहेश्वरी ! इस स्थिति में वह तुम ग्रहण करती हो । हे त्रिभुवनेश्वरी ! इस प्रकार की विधि-विहित पूजा करना चाहिए ।

जो इस विधान का अनुकरण करके पूजन करता है, वह गाणपत्य पद प्राप्त करता है । हे सुरेश्वरी ! पशु के सम्मुख इस दिव्य कथन को कभी भी प्रकट करना उचित नहीं है ॥ ३८-४० ॥

पशुदर्शनमात्रेण नश्यन्ति वीरसिद्धयः ।
महासिद्धिकरी पूजा मानसी मुक्तिदायिनी ॥ ४१ ॥
अन्तर्यागात्मिका सर्वा जीवत्वपरिनाशिनी ।
बाह्यपूजा राजसी च सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ ४२ ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैव सर्वापद्विनिवारिणी ।
सर्वदोषक्षयकरी सर्वशत्रुनिपातिनी ॥ ४३ ॥
सर्वरोगक्षयकरी सर्वबन्धविमोचनी ।
केवलानाञ्च दिव्यानां बाह्यपूजा न चार्हति ॥ ४४ ॥
तोडरे यामले देवी श्रुता पूजा न विस्तरात् ।
तथापि पूजा सङ्क्षेपान् मयोक्ता गिरिनन्दिनि ! ॥ ४५ ॥

पशु (श्रेणी के मनुष्य) के दर्शन मात्र से वीरगण की सिद्धि नष्ट हो जाती है । मानसी पूजा महान् सिद्धिकारी तथा मुक्तिदायिनी है । अन्तर्यो-

गात्मिका पूजा जीवत्व का नाश कर देती है। राजसी बाह्यपूजा समस्त सौभाग्यदायिका है। वह भुक्ति तथा मुक्ति को देनेवाली, आपत्ति का विनाश करने वाली, दोषविनाशिका तथा शत्रुविनाशिनी है।

इसके द्वारा समस्त रोगों का क्षय होता है। यह बन्ध-समूह का विनाश करती है। दिव्यगण को बाह्यपूजा नहीं करना चाहिए। हे देवी ! तोडल तन्त्र तथा यामल तन्त्र में विशेषतः पूजा का वर्णन है। हे गिरिनन्दिनी ! फिर भी मैंने यहाँ संक्षेप में पूजा का वर्णन कर दिया है ॥ ४१-४५ ॥

स्तुतिपाठाच्च तज्ज्ञानात् पूजनाच्छिवसुन्दरि ।
सुप्रसन्ना महाविद्या जपात् सिद्धिर्भविष्यति ॥ ४६ ॥
जपाद् भुक्तिर्जपाद् भक्तिर्जपान्मुक्तिर्जपात् क्रिया ।
जपात्तन्त्रं जपान्मन्त्रं जपाद् यन्त्रं सुरेश्वरि ! ॥ ४७ ॥

हे शिवसुन्दरी ! स्तुतिपाठ से, उसके ज्ञान से, पूजन से महाविद्या प्रसन्न होती हैं। जप से सिद्धि प्राप्त होती है। इसी से मुक्ति, भक्ति, भुक्ति, मन्त्र तथा यन्त्रसमूह भी सम्पन्न होते हैं ॥ ४६-४७ ॥

जपात् कान्तिर्जपाच्छान्तिर्जपाच्छ्रद्धा जपाद् दया ।
जपात्तुष्टिर्जपात् पुष्टिर्जपाद् गतिर्जपान्मतिः ॥ ४८ ॥
जपाद् बुद्धिर्जपाल्लक्ष्मीर्जपाज्जातिर्जपात् स्मृतिः ।
जपाच्छान्तिर्जपाच्छान्तिर्जपाच्छान्तिर्न संशयः ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्ये पार्वतीश्वरसंवादथनं
नामैकविंशः पटलः समाप्तः ॥

जप से कान्ति, शान्ति, श्रद्धा, दया, तुष्टि, पुष्टि, गति, मति, बुद्धि, लक्ष्मी, जाति, स्मृति तथा शान्ति प्राप्ति होती है। जप से शान्ति प्राप्त होती है, शान्ति प्राप्त होती है, शान्ति प्राप्त होती है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥ ४८-४९ ॥

॥ एकविंश पटल समाप्त ॥

द्वाविंशः पटलः

(अभेदोपासनाकथनम्)

श्रीमहादेव उवाच—

श्रृणु देवि ! वरारोहे ! सर्वार्थसाधनं परम् ।
सुषुम्नामध्यगां कालीं करालवदनां शिवाम् ॥ १ ॥
प्रणम्य पार्वतीं देवीं महानीलसरस्वतीम् ।
उग्रतारामहं वक्ष्ये देवानामपि दुर्लभाम् ॥ २ ॥
त्रिकोणवलयाम्भोजे महानीलसरस्वतीम् ।
हृत्पद्मे भावयेत्तारां हृत्पद्मे भावयेच्छिवाम् ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव कहते हैं—हे देवी ! हे वरारोहे ! सर्वार्थ के श्रेष्ठ साधन को सुनो । मैं सुषुम्ना के मध्यगत करालवदना शिवा काली को, देवी महानीलसरस्वती को, देवी पार्वती को प्रणाम करके देवताओं के लिए भी दुर्लभ उग्रतारा का वर्णन करता हूँ ।

त्रिकोणवलय के कमल पर आसीन महानीलसरस्वती का चिन्तन हृत्पद्म में करना चाहिए । इसी में तारा तथा शिवा का भी चिन्तन करे ॥ १-३ ॥

हृत्पद्मे भावमासाद्य पूजयेद् वरवर्णिनीम् ।
यावद् नानात्वभावश्च भावयेदपृथग्विधम् ॥ ४ ॥
तावत् क्रिया पृथग् भावा तावन्नानाविधा मता ।
तावदभिन्नाश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥

हृत्पद्म में एकत्व भाव का आश्रय लेकर वरवर्णिनी का पूजन करे । जब तक हृदय में नानात्व भाव रहता है, तब तक सब कुछ पृथक् ही है और जब तक क्रिया पृथक् है तब तक नाना प्रकार के भाव कहे गये हैं । तब तक देवगण भी भिन्न हैं । तब तक ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी भिन्न हैं ॥ ४-५ ॥

गणेशश्च दिनेशश्च वह्निर्वरुण एव च ।
कुबेरो दश दिक्पाला एतत् सर्वं पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

तब तक गणेश-दिनेश-वह्नि-वरुण-कुबेर-दसों दिक्पाल भी पृथक्-पृथक् है ॥ ६ ॥

तावन्नानाविधा नृणां स्त्री पुरुषश्च कामुकः ।
तावद् बिल्वदलं भिन्नं देवशि ! तुलसीदलात् ॥ ७ ॥

विभिन्नानि च देवेशि ! यावत् वै तुलसीदलात् ।
तावद्दिव्यश्च वीरश्च तावत्तु पशुभावकः ॥ ८ ॥

तब तक मनुष्य में स्त्री-पुरुष तथा नपुंसक का भेद रहता है। हे देवेशी ! तब तक तुलसीदल तथा बिल्वदल प्रभृति की पृथक्ता भी भासित होती रहती है।

हे देवेशी ! जब तक ऐसे भेद प्रतीत होते रहते हैं, तब तक ही दिव्यभाव-वीरभाव तथा पशुभाव की भेदरूपी भावना रहती है ॥ ७-८ ॥

तावत्तन्त्रे भेदबुद्धिस्तावदेव पृथक् क्रिया ।
हरिहरे भेदबुद्धिर्जायते जगदम्बिके ! ॥ ९ ॥
करालवदना काली श्रीमदेकजटा शिवा ।
षोडशी भैरवी भिन्ना भिन्ना च भुवनेश्वरी ॥ १० ॥

तभी तक तन्त्रों में भेदबुद्धि प्रतीत होती है। तभी तक क्रियाएँ पृथक् हैं। हे जगदम्बिके ! हरि और हर में तभी तक भेदबुद्धि का जन्म होता है। तभी तक करालवदना काली, एकजटा शिवा, षोडशी, भैरवी तथा भुवनेश्वरी में भिन्नता परिलक्षित होती है ॥ ९-१० ॥

छिन्ना भिन्नाऽन्नपूर्णा च भिन्ना च बगलामुखी ।
मातङ्गी कमला भिन्ना भिन्ना वाणी च राधिका ॥ ११ ॥
चेष्टा भिन्ना क्रिया भिन्ना भिन्ना आचारसङ्ग्रहाः ।
यावन्नैक्यं पादपद्मे भवान्या नैव जायते ॥ १२ ॥

उसी समय तक छिन्नमस्ता, अन्नपूर्णा, बगला, मातंगी, कमला, वाणी तथा राधिका में भिन्नता प्रतीत होती है। जब तक भवानी के चरणकमलों में ऐक्यावस्था का जन्म नहीं होता, तब तक चेष्टा, क्रिया तथा आचार-समूह भिन्नवत् प्रतीत होते हैं ॥ ११-१२ ॥

अद्वैते तारिणीपादपद्मे परमपावने ।
ज्ञानपारे समुत्पन्ने हृत्पद्मनिलये तथा ॥ १३ ॥
ऐक्यं भवति चार्वङ्गी सर्वजीवेषु शाङ्करी ।
न च पापं न वा पुण्यं न यमो नरको न च ॥ १४ ॥

हे सुन्दर अंगों वाली ! हे शंकरी ! जब हृत्पद्मनिलयरूपी स्थल में तारिणी के चरणों में ज्ञानातीत अद्वैत का उन्मेष होते ही ऐक्य ज्ञान होता है तब पाप-पुण्य-यम-नरक की सत्ता विलीन हो जाती है ॥ १३-१४ ॥

न सुखं नापि दुःखञ्च न रोगेभ्यो भयं तथा ।
न भयं नापि शोकञ्च सर्वं ब्रह्ममयात्मकम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या वैश्यजा शूद्रजान्त्यजा ।
तथैव तारिणी विद्या यथा विद्या तथा तथा ॥ १६ ॥

तब सुख-दुःख, रोगभय-शोकभय नहीं रह जाता; सब कुछ ब्रह्मात्मक हो जाता है। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हैं, वैसे ही वैश्यजा, शूद्रजा तथा अन्त्यजा भी हैं। अर्थात् ऐसा ऐक्य है। जैसे यह तारिणी विद्या है, उसी प्रकार अन्य विद्या भी है। अब सभी विद्यासमूह में भेददर्शन समाप्त हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

एवं ज्ञानं महेशानि ! यदा वै जाग्रते प्रिये ! ।
तदेव विद्या देवेशि ! विद्याऽविद्याविरोधिनी ॥ १७ ॥
जायते नात्र सन्देहो ब्रह्मानन्दमयो भवेत् ।
अद्वैतञ्च गुणातीतं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ १८ ॥

हे महेशानी ! हे प्रिये ! हे देवेशी ! जब यह उत्तम ज्ञान उत्पन्न होता है, तभी विद्या का उदय होता है। विद्या ही अविद्या की विरोधिनी है। इसमें कोई भी सन्देह उदित नहीं हो सकता। तब साधक की सत्ता ब्रह्मानन्दमय होजाती है। अद्वैत स्थिति गुणातीत तथा निर्गुण है। वह प्रकृति से भिन्न है ॥ १८ ॥

परमानन्देन संयुक्तो मुक्तिर्यास्यति निश्चिता ।
इति सत्यं पुनः सत्यं सत्यं वच्मि वरानने ॥ १९ ॥

परमानन्द प्राप्त होने पर मुक्ति मिलती है। हे वरानने ! मैं जो कह रहा हूँ, यह सत्य है, सत्य है, पुनः सत्य है ॥ १८ ॥

तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति नास्ति देवः सदाशिवात् ।
नास्ति भावस्तु मध्यस्थान्नास्ति नीलासमं पदम् ॥ २० ॥

ज्ञान से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है, सदाशिव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, मध्यस्थ (सुषुम्ना) से श्रेष्ठ कोई भाव नहीं है और नीलसरस्वती से श्रेष्ठ कोई पद नहीं है ॥ २० ॥

सोऽहं सोऽहं पुनः सोऽहं सोऽहमित्येव जायते ।
तदैव चिरकालेन सोऽहं ज्ञानं प्रजायते ॥ २१ ॥
नानात्वबुद्धिं त्यक्त्वा वै सात्त्विकीं परमात्मिकाम् ।
गृहीत्वा च वरारोहे जायते परमार्थवित् ॥ २२ ॥

जब सोऽहं सोऽहं सोऽहं का ज्ञान उदित होता है, हे वारारोहे ! तब नानात्व बुद्धि का परित्याग करके सात्त्विकी बुद्धि को ग्रहण करे। तभी परमार्थविद् हो सकना सम्भव है ॥ २१-२२ ॥

ज्ञानात् परतरं नास्ति नास्ति चैव वरानने ! ।
ज्ञानादेव च देवेशि ! मुच्यते भवबन्धनात् ॥ २३ ॥

हे वरानने ! ज्ञान से उत्तम अन्य कुछ भी नहीं है। इसी से व्यक्ति भवबन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥

कुलवारे कुलीनस्तु कुलधर्मं कुलव्रतम् ।
आश्रयेत् परमानन्दः परमानन्दमेव च ॥ २४ ॥
न कुलीने परा बुद्धिर्न कुलीने परा गतिः ।
न कुलीने परा मुक्तिर्न कुलीने परा क्रिया ॥ २५ ॥

परमानन्द हेतु कुलीनगण कुलवार के समय कुलधर्म तथा कुलव्रत का आश्रय लेकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। कुलीन की बुद्धि से श्रेष्ठ बुद्धि कुछ भी नहीं है। इससे परागति तथा श्रेष्ठ क्रिया भी कोई नहीं है ॥ २४-२५ ॥

एवं वदति यो जन्तुः स मुक्ति न च याति वै ।
इहैव स्वर्गो देवेशि ! इह कैलासमन्दिरम् ॥ २६ ॥
इहैव भुक्तिर्मुक्तिश्च मुक्तिरव्यभिचारिणी ।
भोगः स्वर्गश्च मोक्षश्च करस्थश्चैव शाङ्करि ! ।
शाक्तानां त्रिपुरेशानि ! सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २७ ॥

ऐसा जो व्यक्ति नहीं कहता उसे मुक्ति नहीं मिलती। हे देवेशी ! यहीं स्वर्ग है। यहीं कैलास मन्दिर भी है। यहीं भोग-मुक्ति-अव्यभिचारिणी मुक्ति भी है। हे शांकरी ! शाक्तों को भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष हस्तगत रहता है। हे त्रिपुरेशानी ! यह सत्य तथा निःसंदिग्ध है ॥ २६-२७ ॥

श्रीपार्वत्युवाच—

नीलकण्ठ ! महादेव ! महेश्वर ! जगद्गुरो ! ।
पृच्छामि परमं तत्त्वं ब्रूहि नाथ ! जगत्पते ! ॥ २८ ॥
कथं वा जायते भुक्तिर्मुक्तिर्भक्तिर्महेश्वरे ।
जीवः शिवत्वं लभते केन रूपेण शङ्कर ! ॥ २९ ॥

श्रीपार्वती कहती हैं—हे नीलकण्ठ ! महादेव ! महेश्वर ! जगद्गुरु ! हे नाथ ! हे जगत्पते ! मैं आपसे परमतत्त्व पूछती हूँ, कृपया उसे कहिए।

भोग तथा मोक्ष कैसे मिलता है ? महेश्वर की भक्ति कैसे मिलती है ? हे शंकर ! जीव कैसे शिवत्व को प्राप्त करता है ? ॥ २८-२९ ॥

श्रीशिव उवाच—

विश्वेश्वरि ! जगद्धात्रि ! महामाये ! महेश्वरि ! ।
गुह्याद् गुह्यतरं वाक्यं शृणुष्व नगनन्दिनि ! ॥ ३० ॥

शान्तं दान्तं कुलीनञ्च सर्वशास्त्रार्थकोविदम् ।
एवं गुरुं महेशानि ! आश्रयेद् भक्तिभावतः ।। ३१ ।।

श्रीशिव कहते हैं—हे विश्वेश्वरी ! जगद्धात्री ! महामाये ! महेश्वरी ! हे नगनदिनी ! मैं तुमसे गुह्य से गुह्यतर ज्ञान कहता हूँ, उसे सुनो ।

हे महेशानी ! शान्त, दान्त, कुलीन तथा सभी शास्त्रों के विद्वान् गुरु का भक्तिभाव से आश्रय लेना चाहिए ।। ३०-३१ ।।

ततः प्रथमतो लब्ध्वा गुरुं परमकारणम् ।
गृह्णीयात् परमं मन्त्रं देव्याश्च वरवर्णिनि ! ।। ३२ ।।
सेतुञ्च कुल्लुकां कृत्वा मन्त्रसङ्केतकं तथा ।
जपापराजिताद्रोणकरवीरैर्मनोहरैः ।। ३३ ।।
पूजयेद् रक्तकुसुमैः सुगन्धैश्चारुशोभनैः ।
नानापुष्पैश्च देवेशि ! पूजयेद् भक्तिभावतः ।। ३४ ।।

हे वरवर्णिनी ! अब प्रथमतः परमकारण गुरु को प्राप्त करके देवी के परम मन्त्र को ग्रहण करो । सेतु तथा कुल्लुका के अनन्तर मन्त्रसंकेत द्वारा मन्त्र को ग्रहण करे । मनोहर जपापुष्प, अपराजिता, द्रोण, करवीर के पुष्पों द्वारा तथा सुगन्धित लाल गुलाब आदि रक्तपुष्पों से पूजा करे । हे देवेशी ! नाना पुष्पों से भक्ति भाव युक्त पूजा करे ।। ३२-३४ ।।

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्नानाद्रव्यैर्मनोहरैः ।
गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च दीपैरम्बरभूषणैः ।। ३५ ।।

पाद्य-अर्घ्य-आचमनीयादि के द्वारा मनोहर नाना द्रव्यों से गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-वस्त्र और अलंकारों से भगवती की पूजा करे ।। ३५ ।।

नैवेद्यैर्विविधैर्द्रव्यैस्ताम्बूलैः सरसोत्कटैः ।
पुनराचमनीयैश्च पूजयेज्जगदम्बिकाम् ।। ३६ ।।
एवं पूजा विधातव्या यथाशक्त्या वरानने ! ।
पूजयित्वा तु प्रणमेत् पार्वतीं तन्त्रजैः स्तवैः ।। ३७ ।।

हे महेश्वरी ! गुरु के कथनानुसार पूजा करे । अन्तर्यागात्मिका पूजा ही आन्तर पूजा है । तब तक ज्ञानोत्पत्ति नहीं हो जाती, तब तक इस प्रकार विधि-विहित जप तथा तपस्यायुक्त पूजन करे । पूजा करके तन्त्रोक्त स्तवों के साथ जगदम्बिका को प्रणाम करे । नैवेद्य-विविध द्रव्य-सरस तथा ताम्बूल एवं पुनः आचमनीय से उनका पूजन करे ।। ३६-३७ ।।

स्तोत्रस्य कवचस्यापि पठनाज्जगदम्बिके ! ।
भुक्ति-मुक्तिप्रदा चण्डी भक्तिदा सर्वमङ्गला ।। ३८ ।।

बाह्यपूजा प्रकर्त्तव्या गुरुवाक्यानुसारत ।
अन्तर्यागात्मिका पूजा बाह्यपूजा महेश्वरि ! ॥ ३९ ॥

हे जगदम्बिके ! स्तोत्र तथा कवचपाठादि से सर्वमंगला देवी चण्डी भुक्ति, मुक्ति तथा भक्ति देती हैं ।

हे महेश्वरी ! बाह्यपूजा गुरु की आज्ञानुरूप करे । अन्तर्यागात्मिका पूजा ही आन्तर पूजा है ॥ ३८-३९ ॥

सर्वपूजा विधातव्या यावज्ज्ञानं न जायते ।
एवं विधिप्रमाणेन जपेन तपसापि वा ॥ ४० ॥
माहेशी सा प्रसन्नाभूत् स्तवेन कवचेन च ।
ततो देवी महेशानी सिद्धविद्या यदा भवेत् ॥ ४१ ॥

जब तक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक नियम से जप तथा तपस्या के साथ पूजा करे !

हे महेशानी ! जप-कवच से माहेश्वरी प्रसन्न होकर सिद्ध विद्यारूप हो जाती हैं ॥ ४०-४१ ॥

तदैव पूजया सिद्धिः क्रियया भक्तियुक्तया ।
एवं देव्यनुग्रहतो ज्ञानमुत्पद्यते खलु ॥ ४२ ॥
तदा कालात्यये चण्डि ! या भक्तिः सा च निष्फला ।
केवला प्रेयसी भक्तिर्महादेवस्य भाविनी ॥ ४३ ॥
य एवं भक्तिमास्थाय प्रकरोति क्रियां शिवे ! ।
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥ ४४ ॥

तभी भक्ति युक्त पूजा क्रिया द्वारा सिद्धि होती है । तब देवी के अनुग्रह से ज्ञान उत्पन्न होता है ।

हे चण्डी ! काल अतीत होने से उत्पन्न होनेवाली भक्ति निष्फल हो जाती है । केवल भाव से युक्त भक्ति ही महादेव की प्रेयसीरूपा है ।

हे शिवे ! इस प्रकार की भक्ति का अवलम्बन लेकर क्रिया करे और सिद्धियुक्त होकर पृथ्वी पर विचरण करे ॥ ४२-४४ ॥

नानातन्त्रप्रकटनान्मयोक्ता गिरिनन्दिनि ! ।
ऐक्यं ज्ञानं यदा देवि ! तदा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४५ ॥
स्थावरे जङ्गमे चैव यदा तुल्यमना भवेत् ।
किं न सिध्यति देवेशि ! परत्रेह च पार्वति ! ॥ ४६ ॥

हे गिरिनन्दिनी ! मैं नाना तन्त्रों में इस क्रिया का उपदेश देता हूँ । हे देवी ! जब ऐक्य ज्ञान उदित होता है, तभी सिद्धि मिलती है ।

तब स्थावर-जंगम का भेद नहीं रहता। हे पार्वती ! तब ऐसी कौन-सी इहलौकिक और पारलौकिक सिद्धि है जो न मिले ? ॥ ४५-४६ ॥

एवं भक्तिश्च भुक्तिश्च मुक्तिदा जगदम्बिके !।
तत्त्वज्ञानं तदैवास्ते ततो निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
एवं ते कथितं देवि ! सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
प्रगोप्तव्यं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! ॥ ४८ ॥
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यान्न प्रकाश्यं त्वया क्वचित् ॥४९॥

॥ इति श्रीनीलसरस्वतीतन्त्रे परमरहस्येऽभेदोपासनाकथनं नाम द्वाविंशः पटलः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

हे जगदम्बिके ! इस प्रकार से जब भोग तथा भक्ति होती है, तब जगदम्बिका मुक्तिप्रदा हो जाती हैं, तभी तत्त्वज्ञान होता है। तब निर्वाण मिलता है। हे देवी ! समस्त तन्त्रों में उत्तम तन्त्र का तुम्हें उपदेश किया। इसे अपनी योनि के समान ही गुप्त रखना ॥ ४७-४८ ॥

इसके प्रकाशन से सिद्धि नष्ट हो जाती है। अतः इसका प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४९ ॥

॥ द्वाविंश पटल समाप्त ॥

[redacted]